पुस्तक-विक्रेता
नंदकिशोर एंड ब्रदर्स
चौक, बनारस।

द्वितीय संस्करण : २०००
मकर-संक्रांति : २००७
मूल्य : ३।)

मुद्रक
रामेश्वर पाठक
तारा यन्त्रालय, बनारस।

प्रस्तावना

हिंदी-साहित्य का काल-विभाजन करते हुए इतिहासकारों ने रीतिकाल के भीतर कुछ ऐसे कवियों को फुटकल खाते में डाल दिया है जो रीतिकाल की अधिक व्यापक प्रवृत्ति शृंगार या प्रेम के उन्मत्त गायक थे। इनमें आलम, घनआनंद, ठाकुर और बोधा का नाम आता है। भक्तिकाल के बीतते न बीतते हिंदी में शृंगार की धारा वेग से प्रवाहित हुई। शृंगार की अभिव्यक्ति के लिए अधिकतर कवियों ने रीति को अर्थात् रस, नायक-नायिका, अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगों के भेदोपभेदों को आधार बनाया। पर ये वस्तुतः काव्य-पक्ष ही सामने करनेवाले थे, शास्त्र-पक्ष नहीं। बात यह थी कि संस्कृत में साहित्य का शास्त्र-पक्ष अपने समृद्ध रूप में इन्हें विवेचित उपलब्ध हो गया, अतः स्वतः छानबीन करने की इन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ी। हिंदी में काव्य-रचना की अभिरुचि रखनेवालों के लिए कविशिक्षा की पुस्तकें अपेक्षित थीं। कविशिक्षा या रीति की पुस्तकें सामने लानेवाले काव्यांगों को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बना बैठे, शास्त्र का विवेचन उनका साध्य नहीं रह गया। इसी से रीतिकाल के भीतर जिन जिनकी रचनाएँ समाविष्ट हैं उनमें आचार्य कहलाने योग्य कर्ता बहुत थोड़े हैं, ये अधिकतर दोहों में लक्षणों को पद्यबद्ध करके लक्ष्य-रूप में अपनी रचना रख दिया करते थे। फल यह हुआ कि इनकी रचना शास्त्र में गिनाई सामग्री से आगे नहीं बढ़ सकी। ये केवल 'शास्त्र-स्थिति-संपादन' ही करते रह गए, भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति पर से इनकी दृष्टि स्वतः हट गई।

इसी काल में कुछ कवि ऐसे भी दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने लक्षण-ग्रंथ तो नहीं लिखे, पर जिनकी रचना पूर्णतया रीतिबद्ध है। ऐसे कवि वस्तुतः लक्षणों को पद्यबद्ध करने का फालतू बखेड़ा अपने सिर नहीं ओढ़ना चाहते थे, पर रीति की सारी जानकारी का उपयोग अवश्य करना चाहते थे। ये चाहते थे कि लक्षण-रूप में प्रस्तुत रचना की अपेक्षा अपनी कृति में अधिक कसावट रखी जाय, उसमें चमत्कार लाने का थोड़ा खुला प्रयत्न किया जाय। बिहारी, रसनिधि आदि इसी प्रकार के कवि थे। ऐसा करने पर भी इन्हें रीतिबद्ध कवियों की मंडली

से एकदम पृथक् नहीं कर सकते। इसका हेतु यह है कि रीति या शास्त्र की जमीन पर ही इन्होंने पच्चीकारी की है, इसी से विना रीति या नायिकाभेद आदि की पक्की जानकारी के इनके वहुत से छंद बुझौवल से प्रतीत होंगे, अर्थात् इन्होंने वंधान रीति के वल पर ही वाँधा है, उसी में टेढ़े-सीधे मार्ग निकाले हैं। फिर भी रीति के भार से इनकी कविता लक्षण-ग्रंथ-प्रणेताओं की कृति की अपेक्षा कुछ कम दवी है। इन्होंने वंधन ढीला कर लिया है, इसी से इनमें कुछ ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जैसी शुद्ध शास्त्र-स्थिति-संपादन की इच्छा रखनेवालों में कदापि नहीं मिल सकतीं।

इतने से ही उन्हें संतोष नहीं हो सकता था जो हृदय के फैलाव के लिए और चौड़ी भूमि चाहते थे। अतः उसी काल में स्वच्छंद मनोवृत्तिवाले ऐसे कवियों का भी प्रादुर्भाव हुआ जो रीति का वंधन तोड़ डालना चाहते थे। ये शास्त्र में गिनाई हुई सूची तक ही रहनेवाले नहीं थे। ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग संघटित करने के अभिलाषुक थे। रीतिवद्ध होकर एक ओर काव्य-रचना अधिकतर वहिर्वृत्ति के निरूपण में व्यस्त थी, दूसरी ओर इनके हृदय का वेग अंतर्वृत्ति के निरूपण का अवकाश चाहता था। अतः इन्होंने रीति-पद्धति का अतिक्रमण किया। 'ठाकुर' कवि ने शास्त्र में गिनाई हुई सामग्री के भरोसे अपना पांडित्य दिखानेवालों को कविता के साथ खेल करनेवाले कहा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुवेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी वड़ी है कठिन वात,
याको नहीं भूलि कहूँ वाँधियत वानो है।
ढेल सो वनाय आय मेलत सभा के वीच,
लोगन कवित्त कीवो खेल करि जानो है॥

ऐसी रचनाएँ मिट्टी के ढेले की भाँति इन्हें तुच्छ तो जान ही पड़ती थीं, इनके हृदय पर चोट भी करती थीं। रीतिवद्ध रचना अधिकतर अपना शृंगार

 517 (12-1-71)

करने में ही लगी रह जाती थी, उसमें कला-पक्ष प्रधान हो गया था। कवि उनके बनाने में वैसे ही भिड़े रहते थे जैसे पच्चीकारी करनेवाले काच के टुकड़ों को ठीक ठीक बैठाने में परेशान रहते हैं। इसी से उनकी रचना बोझिल हो जाती थी। पर इन प्रेमोन्मत्त गायकों में हृदय का वेग ही कविता का रूप धारण कर लेता था, मरने-पचने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी या कम पड़ती थी। घनआनंद रीतिबद्ध कवियों से अपना पार्थक्य यों घोषित करते हैं—

तीछन ईछन-बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चटावत।
यों घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत॥

ये काव्यमूर्ति थे, इनकी कविता ने ही इनका निर्माण किया था, ये स्वयं कविता के निर्माण में हैरान नहीं रहते थे। इसी से इन कवियों की रचना में वाणी के ऐश्वर्य का बहुत बड़ा कोश मिलता है। वाणी के विस्तार की सीमा वस्तुतः ये ही जानते थे। भावों का कोश वाणी के प्रतीकों द्वारा उद्घाटित करने की शक्ति इन्हीं में थी। हृद्गत अनुभूतियों को ठीक ठीक व्यक्त करने के लिए भाषा की गति निरंतर बाधित होती रहती है। इन कवियों ने लाक्षणिक और व्यंग्यमूलक पद्धति पर अधिकाधिक चलकर यह बाधा दूर कर दी है। ये भाषा की गति तीव्र करनेवाले और पद-न्यास की सूक्ष्मता का मर्म समझनेवाले थे। घनआनंद ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है—

आँखिन मूँदिबो बात दिखावति सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सु बात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि-बीच बसे घनआनँद मौन बखान सु देखि लै।

वाणी के द्वारा 'अलेख' का भी 'लेख' हो सकता है और 'मौन' की भी 'पुकार' सुनी जा सकती है। घनआनंद ने इसी विरोधमूलक प्रणाली से या वक्रोक्ति-पद्धति पर हृदय की अनेक सूक्ष्म से सूक्ष्म अंतर्वृत्तियों का उद्घाटन किया है।

इन सब बातों पर विचार करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि

'रीतिकाल' का नाम 'शृंगारकाल' होना चाहिए। 'रीतिकाल' नाम रखने से उसके विभाजन का मार्ग ही नहीं मिल पाता, पर 'शृंगारकाल' नाम रखने से विभाजन सरलतापूर्वक हो जाता है। उसकी दो शाखाएँ स्पष्ट हो जायँगी—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध की भी दो उपशाखाएँ हो सकती हैं—लक्षणबद्ध और लक्ष्यमात्र। रीतिग्रंथ लिखनेवालों ने अधिकतर शृंगार के ही गीत गाए हैं। पिंगल आदि की पोथियों में भी शृंगार की रचनाएँ ही अधिकांश मिलती हैं। 'भूषण' ऐसे दो एक वीर कवियों को पृथक् करने की बात उठ सकती है, पर निवेदन है कि उनकी भी आरंभिक रचनाएँ शृंगार की ही मिलती हैं और पूर्णतया रीतिबद्ध।

जिस प्रकार रीतिबद्ध रचयिताओं की प्रेरक प्रवृत्तियाँ भक्तिकाल में मिलती हैं उसी प्रकार रीतिमुक्त कवियों की भी। श्रीकृष्ण की जिस स्वच्छंद लीला का आश्रय कृष्णभक्त कवियों ने लिया उसी से रीतिमुक्त कवियों को उत्तेजक शक्ति मिली। सूरदास आदि भक्तों ने कृष्ण और गोपियों के प्रेम का स्वरूप उन्मुक्त रखा है। इसलिए रीतिमुक्त गायकों के लिए वह आकर्षण का हेतु हुआ। रसखानि यद्यपि भक्तों की श्रेणी में बैठाए गए हैं तथापि वस्तुतः वे उन्मुक्त प्रेमोन्मत्त कवि थे। उन्होंने कृष्णभक्तों की गीत-परंपरा का त्याग करके और कवियों की परंपरागत कवित्त-सवैया-पद्धति का अवलंब लेकर स्पष्ट प्रस्थानभेद सूचित कर दिया है। इसलिए रसखानि प्रेमोमंग के ही कवि ठहरते हैं। उन्हें भक्तों की श्रेणी से खारिज करने की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रेमोन्माद के अभिव्यंजक इन कर्ताओं के लिए राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलाएँ काव्य-सामग्री का काम देती रही हैं। व्यक्तिबद्ध प्रेम की एकनिष्ठता के कारण जब इन्हें व्यक्ति-पक्ष त्यागना पड़ा है तब ये कृष्ण की क्रीड़ाशील प्रवृत्ति के उपासक बनकर उनके भक्त हो गए हैं। इसी लिए इनकी रचनाओं का आलोड़न करने पर इस तथ्य पर पहुँचना पड़ता है कि पहले तो ये रीतिबद्ध रचना करने में प्रवृत्त होते थे पर हृदय की दौड़ के लिए वहाँ खुला मैदान न पाकर रीतिमुक्त हो जाते थे। भारतीय काव्य-परंपरा में उन्मुक्त प्रेम के लौकिक आलंबन का विधान न पाकर ये श्रीकृष्ण का अलौकिक आलंबन ग्रहण करते थे। अतः अंत में इनकी मुक्तक रचना का भक्ति में

पर्यवसान हो जाता था। इसी से इस प्रकार के सभी कवि अंत में कृष्णलीला के गायक या भक्त हो जाते हैं। यों तो रीतिवद्ध कवि भी 'राधिका कन्हाई के सुमिरन' का वहाना करते थे, पर उनकी वृत्ति भक्ति में लीन नहीं हुई है। यही इन दोनों में पार्थक्य है। शुद्ध भक्तों से इनका पार्थक्य इनकी स्वच्छंद प्रवृत्ति द्वारा हो जाता है। रसखानि में वैसी कट्टरता नहीं, जैसी सूर आदि में थी।

भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण-काव्य की दो धाराएँ वह रही थीं। निर्गुण-काव्यधारा की सूफियोंवाली प्रेमप्रणाली और कवीरवाली ज्ञान-प्रणाली इतिहास में उल्लिखित है। कवीर जिस प्रकार की उपासना निर्गुण के सहारे चलाना चाहते थे वह एक ओर तो सूफियों से प्रभावित थी और दूसरी ओर भारतीय योगमार्ग से। स्वयं सूफी भी योगमार्ग से प्रभावित थे। प्रेम की पीर वाले सूफी कवियों से कवीर आदि निर्गुणमार्गियों का भेद इस वात में दिखाई देता है कि कवीर ने वैष्णव प्रपत्तिवाद से प्रभावित होकर सूफियों की भाँति ब्रह्म को केवल प्रिय-रूप में ही ग्रहण नहीं किया है, उस पर पालक, उत्पादक आदि का आरोप भी किया है, उसे स्वामी, पिता आदि भी निरूपित किया है, अर्थात् श्रद्धा का महत्वसूचक अंश अधिक स्वीकृत कर लिया है। फिर भी प्रधानतया उन पर सूफियों का ही प्रभाव पड़ा था। भारतीय उपासना-पद्धति के भीतर विदेशी रहस्यवाद का ग्रहण न तो जीवन के लिए उपयोगी था और न काव्य की परंपरा में ही स्वीकृत। इसीलिए सगुणमार्गी भक्तों को शास्त्रानुमोदित, वुद्धिपरिपुष्ट तथा सरल भक्तिमार्ग को राजमार्ग वनाने के लिए उनका विरोध करना पड़ा। सगुणमार्गियों की राम, कृष्ण आदि अवतारों की व्यक्तोपासना ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय काव्य में विदेशी रहस्यवाद की स्वीकृति अनावश्यक है। पर प्रेम-पीर की जो विवृति सूफी रहस्यदर्शियों में दिखाई पड़ती थी और फारसी-काव्य जो प्रेम-वैषम्य के गान सुना रहा था उन्हें देखने और सुनने के लिए भी वहुत से कवि लालायित थे। फारसी-काव्य की प्रेमपद्धति और सूफियों की विरह-पद्धति का प्रभाव इसी लिए भारतीय शैली के हिंदी-काव्य पर भी पड़ा। विहारी, घनआनंद आदि कवियों ने इसको ऐसे ढंग से सामने किया जिसमें भारतीयता उसको ढके हुए है। विहारी के विरह-वर्णन

में जो अनुमानाश्रित वस्तु-व्यंजनाएँ हैं या सौंदर्य आदि के तथ्य का बोध करानेवाली उनकी संभोग-पक्ष की उक्तियाँ हैं उनमें विदेशी प्रभाव की झलक भर मिलती है। घनआनंद ने जो प्रेममार्गियों का आधार लेकर कुछ रहस्यमयी उक्तियाँ कही हैं उनमें श्रीकृष्ण ही उनके लक्ष्म हैं। रहस्य की प्रवृत्ति इन कवियों में कभी कभी अवश्य जगती थी पर कबीर या जायसी की भाँति रहस्यदर्शिता इनका साध्य कभी नहीं बनी। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि इन्होंने विदेशी प्रवृत्ति को ग्रहण करने का ढंग बताया। नागरीदास आदि सखीभाव के उपासकों में सूफी-प्रभाव जो अपनी विशेष झलक मार रहा है उसका कारण यही है कि वे उसे छिपा या खपा नहीं सके।

रीतिमुक्त कवियों का रीतिबद्ध कवियों से पार्थक्य क्या भाव, क्या शैली, क्या भाषा सभी में दिखाई देता है। इनमें अंतर्वृत्ति-निरूपण की प्रधानता के साथ ही विरह की ओर अधिक झुकाव भी है। विरह इन कवियों में अनेक अंतर्दशाओं तथा भावना-भेदों का निरूपक बनकर आया है। घनआनंद ने अनेक स्थलों पर कहा है कि संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता—

यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु वियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है।

यदि संयोग-पक्ष पर दृष्टि डालते हैं तो वहाँ भी वर्ण्य की मुद्राओं के वर्णन के स्थान पर ये मुद्राओं या हाव-भावों के हृदय पर पड़े प्रभाव का ही उल्लेख अधिक करते पाए जाते हैं। खुले मैदान में आ जाने के कारण ही इन कवियों ने होली, अखती (अक्षयतृतीया), गनगौर आदि भारतीय त्योहारों में अपनी वृत्ति विशेष लीन की है। ये केवल 'गुलाल की गरद' और 'केसर की कीच' में ही नहीं पड़े रहे। घनआनंद की रचना में तो होली-दीवाली के ही वर्णन मिलते हैं, पर ठाकुर की कृति में उमंग और उत्साह के बीच बुंदेलखंड में मनाए जानेवाले अन्य त्योहारों का भी बड़ा ही चटकीला वर्णन है।

एक बात और। बोधा और कहीं कहीं आलम को छोड़कर इन कवियों ने संयोग-पक्ष में 'सुरतांत', 'विपरीत रति' आदि के कुरुचिपूर्ण वर्णनों में अपनी प्रतिभा का अपव्यय नहीं किया और न वियोग-पक्ष में बाजारू रंग-ढंग ही पकड़ा। इनमें स्वच्छंदतामूलक प्रवृत्ति (रोमांटिक स्पिरिट) प्रेम की प्रकृत भूमि पर आरूढ़ होने के लिए जगी थी, वासना के गड्ढे में गिरने के लिए नहीं।

इस दृष्टि से भारतीय काव्य की आचारनिष्ठता की सुरक्षा करने में इन्होंने रीति-बद्ध कवियों की अपेक्षा अधिक और दृढ़तापूर्वक योग दिया है। बोधा और आलम के ग्रंथों में वैसी रचनाएँ उनकी आरंभिक कृतियों के रूप में ही जान पड़ती हैं, जब वे अपने को रीति से मुक्त नहीं कर सके थे।

जब शैली की ओर आते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि की लड़ी बाँधनेवालों की अपेक्षा इनकी व्यंजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। घनआनंद ने तो ऐसे ऐसे पथों से भावना को ले जाने का साहस किया है जिनपर पुराने कवि तो गएही नहीं, नए कवि भी जाने का साहस कम करते हैं—

(१) मो से अनपहचान को पहचाने हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

इनकी 'पुकार मौन में' है तो उधर 'नेत्रों में कृपा के कान' लगे हुए हैं।

(२) लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की॥

'रंग से बना' चित्र प्रवाह में न तो स्थिर रह सकता है और न उसका रंग ही धुले बिना बच सकता है, पर यहाँ नेत्रों के प्रवाह में ही प्रिय का चित्र बना हुआ है। ऐसी विलक्षण स्थिति का कारण प्रिय का सौंदर्य है अथवा प्रेमी का मन, कुछ कहा नहीं जा सकता। बाह्यार्थ-वैशिष्ट्य (आब्जेक्टिविटी) इसका हेतु है अथवा स्वात्मवैशिष्ट्य (सब्जेक्टिविटी), कौन जाने!

इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं, हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। वस्तुतः ये सुंदरता के भेदों—रमणीयता की विविध स्थितियों—से पूर्णतया अभिज्ञ थे। 'जग की कविताई' से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनआनंद ने 'विरोधाभास' का सहारा बहुत लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नहीं पड़ने पाया है—

देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की,
भसमी त्रिथा पै नित लंघन करति हैं।

आँखें स्वभाव से ही निपेटनी (भुक्खड़) हैं, उस पर 'भस्मी व्यथा' (भस्मक रोग) उत्पन्न हो गई है, जिसमें जो खाया जाता है वह भी भस्म हो जाता है ; जब खाते रहने पर भी, अधिक मात्रा में खा लेने पर भी, पेट नहीं भरता तब भी इन्हें लंघन करना पड़ रहा है। श्लिष्ट 'भसमी बिथा' में घनआनंद ने जो आयुर्वेद की जानकारी का पता दिया है उसकी 'वाहवाही' का फालतू प्रयास यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी 'भसमी बिथा' अपने दूसरे अर्थ को व्यक्त करने में असमर्थ नहीं है। 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनआनंद की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनंद की कृति से पृथक् किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। इस 'अन्वय-व्यतिरेक' से इनकी कृतियों के छाँटने में पूरी सहायता मिल सकती है। 'विरोध' वस्तुतः आर्थ और शाब्द दोनों प्रकार का होता है। अर्थगत विरोध तो इनमें है ही पर विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शाब्द 'विरोध' भी कहीं कहीं दिखाई पड़ता है, पर केशवदासजी के 'विरोध' की भाँति उसका विनियोग पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए नहीं है। 'विरोध' की ओर यदि ऐसे स्थलों पर ध्यान न भी जाय तो भी सामान्य अर्थ में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे, 'दईमारी हारीं हम आप हैा निरदई'। यहाँ 'निरदई' का अर्थ 'निर्दय' तो है ही साथ ही 'दईमारी' के साहचर्य में 'निर + दई' भी है। पर 'निर + दई' पर दृष्टि न भी पड़े तो भी अर्थ में कोई व्याघात नहीं पड़ता।

भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों में से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। घनआनंद और ठाकुर ने ब्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दों का मनमाना और निरर्थ प्रयोग करनेवाले में कहाँ। लोकोक्तियों का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है, हिंदी के दूसरे कवि ने नहीं। घनआनंद की रचना में तो भाषा स्थान स्थान पर अर्थ की संपत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है। वाक्यध्वनि, पदध्वनि तो दूर रहे, इन्होंने पदांशध्वनि

से भी जगह जगह काम लिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेरो मनोरथहू बहिये अरु है मो मनोरथ पूरनकारी।

यहाँ 'मनोरथ' का श्लेष-बल से 'मन का रथ' अर्थ व्यक्त करके कवि ने केवल 'हू' से बहुत बड़ी व्यंजना की है। 'हू' का अर्थ है कि "हे कृष्ण, जिस प्रकार आपने अर्जुन का रथ वहन किया था उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी वहन कीजिए, क्योंकि आप 'जनार्दन' ठहरे।" इन्होंने शब्द भी गढ़े हैं—जैसे, 'दिनदानी' के ढर्रे पर 'दिनदीन'।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनआनंदजी व्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'व्रजभाषा-प्रवीण' और 'भाषा-प्रवीण' दोनों ही थे।

* * *

आनंद, आनंदघन और घनआनंद ये तीन नाम बहुत दिनों तक एक ही कवि के समझे जाते थे। हिंदी में संगीत के सबसे बड़े संग्रह-ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में 'आनंद' और 'आनंदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ९२, संख्या ३४७) में अनुमान लगाया है कि आनंद और आनंदघन संभवतः एक ही हैं। पर नागरीप्रचारिणी सभा (काशी) की खोज के वार्षिक विवरणों में आनंद और आनंदघन का पार्थक्य माना गया है। बहुत दिनों तक तो इसका पता ही न था कि 'आनंद' कौन हैं, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' में उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमें इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ-कुल आनंद कवि वासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो विचार॥
रितु बसंत संवत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥

—(खोज, १९२६–१० एफ्)।

अथवा

रितु बसंत संवत्त सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥

—(खोज, १९२३–१० बी)।

इस प्रकार 'आनंद' विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण में वर्तमान थे। इधर 'साहित्य-भूषण' के निर्माता श्रीमहादेवप्रसाद ने, जिनके आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने आनंदघन का जीवनवृत्त दिया है, आनंदघन (या घन-आनंद) को कायस्थ-कुल का तो अवश्य बतलाया है पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले का मुंशी भी कहते हैं। साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि अंत में ये वृंदावन चले गए थे और नादिरशाह ने जब मथुरा पर अधिकार किया तो ये मारे गए (दि मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान, पृष्ठ ९२, संख्या ३४७)। मुहम्मदशाह का राज्यकाल सं० १७७६ से १८०५ तक था और भारत पर नादिरशाह का आक्रमण सं० १७९६ में हुआ। इस प्रकार इनका काव्य-काल विक्रम की अट्ठारहवीं शती का चतुर्थ चरण ठहरता है। इससे दोनो के समयों में सौ-सवा सौ वर्षों का अंतर है। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में 'आनंदघन कवि दिल्लीवाले' का समय सं० १७१५ दिया है (सप्तम संस्करण, पृष्ठ ३८०)। 'सरोज' का यह समय कवि का काव्य-काल ही है, जन्मकाल नहीं, जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १३, अंक २; अप्रैल, १९४३ में मेरा 'शिवसिंह सरोज के सन्-संवत्' शीर्षक लेख)। इस प्रकार भी दोनों के समय में ४० वर्षों का अंतर पड़ता है। दोनों की रचनाओं में तो जमीन-आसमान का नहीं, आकाश-पाताल का अंतर है। इसलिए 'आनंद' और 'आनंदघन' पृथक् पृथक् कवि हैं।

'आनंदघन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्रबंधु-विनोद' में उक्त 'दिल्लीवाले आनंदघन' के अतिरिक्त १४४।१ संख्या पर एक दूसरे 'आनंदघन' का विवरण भी इस प्रकार दिया है—"आनंदघन, ग्रंथ—आनंदघन-बहत्तरी-स्तवावली, रचना-काल—१७०५, विवरण—यशोविजय के समसामयिक थे।" किंतु श्रीक्षितिश-मोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवंबर, १९३८) में 'जैनमर्मी आनंदघन' शीर्षक

विस्तृत लेख लिखकर वृंदावन के 'आनंदघन' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के एक होने की संभावना प्रकट की है। 'सरोज' में भी एक कवि 'आनंदघन' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय सं० १६१७ दिया गया है (पृष्ठ ४११)। इन 'घनआनंद' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के अभेद की भी संभावना श्रीज्ञानवती त्रिवेदी लिखित 'घनआनंद' नामक समीक्षा-पुस्तक में की गई है (पृष्ठ ११)। इसलिए विस्तार से विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है। 'सरोज' में 'दिल्लीवाले आनंदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए हैं (पृष्ठ ११-१२); एक है 'आपु ही ते' प्रतीकवाला सवैया (देखिए आगे) और दूसरा यह है—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहैं।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहैं।
साँची हौं भापति मोहिं कका की सौं प्रीतम की गति तेरि हू ह्वैहैं।
मो सों कहा अठिलात अजासुत कैहौं ककाजी सों तोहूँ सिखैहैं॥

यह सवैया न तो 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से अब तक और कहीं मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है। हाँ, गुरुजनों से 'केशव-पुत्रवधू' के संबंध में जो कथा सुनी थी वही इस सवैये में वर्णित है। कहते हैं कि जब प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढ़कर उनके आत्मज विषय-वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' की रचना ('प्रबोधचंद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) करनी पड़ी। इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो गया। वे दर्शन के ग्रंथ काँख में दबाए घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक्त होने के कारण घर में बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थी कवयित्री। अजासुत ने प्रकृत्या उसे आते जाते देख जब अपनी 'बोली-बानी' में कंठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढ़ी जिसमें कहा गया था कि ऐ बकरे मैं काकाजी से कहकर तुझे भी अध्यात्म-विद्या की शिक्षा दिलाऊँगी, जिससे तुझे भी वैराग्य हो जाय, तेरी भी वही गति हो जो मेरे पतिदेव की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य-धर्म में संलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३२५ संख्या पर 'केशव-पुत्रवधू' का उल्लेख है—"रचना-काल १६६० के पूर्व, विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सारसंग्रह' का विवरण भूमिका में यों दिया है—"संवत् १८०० का प्रवीण कवि द्वारा संग्रहीत सारसंग्रह, पंडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।" 'विनोद' में 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नहीं है। पर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय के हस्तलेख-संग्रह (सं० ८५९) के १२५ वें पन्ने पर यही सवैया केशव-पुत्रवधू के नाम पर दिया गया है। केवल एक ही उदाहरण है। अतः यह 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना नहीं है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। अब 'सरोज' (पृष्ठ ८२) में 'घनआनंद के नाम पर उदाहृत रचना देखिए—

गाइहौं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहौं।
पाइहौं पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहीं हरि को चित लाइहौं।
लाइहौं आछे द्विजातिन को अरु गोधन-दान करौं चरचाइहौं।
चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं॥

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमें 'घनआनंद' नाम है अवश्य, पर 'आनंदघन' और 'घनआनंद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। ब्रज के भक्त कवियों ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये में 'घनआनंद' का अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पंचदेवोपासना करने का फल प्रिय का संयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वंदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कंठ लगाने को मिलेगा। इससे यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नहीं है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनेवाले किसी कविंद की कृति जान पड़ती है, सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण

तक पहुँचते पहुँचते बेढंगा हो गया है। 'चाई' के बदले 'चाइहैं' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनंद' की कृति नहीं ठहरती। कहीं 'घनआनंद' विशेषण न हो। जो कुछ भी हो इस संबंध में सवैया है संदिग्ध ही।

अब जैन 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनंदघन' (महात्मा लाभानंदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समयसुंदर (सं० १६७२), जिनराज सूरि (सं० १६७८), सकलचंद्र (सं० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) के जिन-स्तवनादि ग्रंथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव-संग्रह' में प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख)। इससे 'चौबीसी' का समय सं० १६७८ के अनंतर ही ठहरता है। इनकी प्रशस्ति लिखनेवाले श्रीयशोविजय ने सं० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवासी हुए। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृंदावनवासी आनंदघनजी को 'छप्पनभोगचंद्रिका' में कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का समसामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है—

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन वच सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों संत-सभा मधि।
३—आनँदघन को संग करत तन मन कों वारयौ।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनँदजी एक साथ विराजते हैं।"--(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७२-)। इससे भी पता चलता है कि आनंदघनजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसीसे उतारे प्रतिचित्र का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर खाना बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्री आनंदघनजी का है, जिसे

श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेवशरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।''

'नागरीदास' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के सत्संग की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता-काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास', संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, सं० १९९९, पृष्ठ ३८०)। इससे वृंदावन-वासी आनंदघनजी का समय अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में भी सौ वर्षों का अंतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नहीं है।

घनआनँद मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। इस बखेड़े को छोड़िए कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे या दरबार के 'मीर मुंशी'। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियों ने बादशाह से एक दिन कह दिया कि मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था, बादशाह ने इनका गाना सुनने की हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत में उन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यों न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय, जिस पर ये आसक्त हैं तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनंतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्होंने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया। फलस्वरूप उसने इन्हें देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अंत में ये वृंदावन चले गए और वहाँ निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी

रचना में बराबर करते रहे। अंत में कहा जाता है कि मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह के हमले में ये मारे गए।

इतिहास में मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नहीं है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। सबसे पहले नागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह संकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। मेरे शिष्य स्वर्गीय विद्याधर पाठक ने बड़े परिश्रम से इस भ्रांति का निराकरण करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उसके अनंतर श्रीज्ञानवती त्रिवेदी ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है। सं० १८४९ के लिखे कृष्णभक्ति-विषयक एक पदसंग्रह में इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीकामवन के मंदिर मलेछनि करि जो उतपात भयौ ताकौ हेत जो रसिकनि के विचार में आयौ सो लिख्यौ है।' उत्पात का कारण पूजा में त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिंहजू देव की 'रामरसिकावली' में दी हुई घनआनंद की कथा से यह 'वार्ता' कुछ मिलती है। श्रीवृन्दावनदासजी ने इसका संकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह-उत्कंठा-बेली' में इस प्रकार किया है—

"जमन कछू संका दई व्रजजन भए उदास।
ता समयें चलि तहाँ तें कियौ कृस्नगढ़ बास॥"—

(खोज १९१७—३४ एफ्)।

अब इधर जो नवीन सामग्री प्राप्त हुई है उससे इसी की पुष्टि होती जाती है कि घनआनंदजी का निधन मथुरा में ही हुआ और ये नादिरशाह के आक्रमण में न मारे जाकर अहमदशाह के आक्रमण में ही मारे गए। अब्दाली ने एक बार सन् १७५७ (सं० १८१३) और दूसरी बार सन् १७६१ (सं० १८१७) में मथुरा पर आक्रमण किया था। घनआनंदजी का निधन दूसरी बार के आक्रमण में हुआ था।

नादिरशाह के आक्रमण के अनंतर तो ये जीवित थे। यह इन्हीं के कथन द्वारा सिद्ध है। इधर आनंदघनजी के ग्रंथों के जो बृहत् संग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें एक 'मुरलिका-मोद' भी है। इसके अंत में ये स्वयं लिखते हैं—

गोपमास श्रीकृष्ण-पक्ष सुचि।
संवत्सर अठानवे अति रुचि।

यह 'संवत्सर अठानवे' १७९८ है। नादिरशाह का भारत पर आक्रमण सं० १७९६ में हुआ और दिल्ली तक ही परिमित रहा। संवत् १७९८ में आनंदघनजी ग्रंथ की रचना कर रहे हैं अर्थात् उसके दो वर्षों के अनंतर भी ये जीवित हैं। इस प्रकार अब यह निश्चित हो गया कि ये सं० १७९६ में नहीं मारे गए। इनकी मृत्यु या हत्या नादिरशाही में कदापि नहीं हुई। पर ये अब्दाली के दोनों आक्रमणों में से पहले में मारे गए या दूसरे में इसका निश्चय कर लेना चाहिए। सं० १८१३ में आनंदघनजी कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंह नागरीदास के साथ दिखाई देते हैं। "जब वृंदावन से महाराज नागरीदासजी और घनानंद कृष्णगढ़ आए थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंद के दर्शनों को गए थे। वहाँ श्रीगोविंददेव के सान्निध्य में आनंद घनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर के महाराज जी दर्शनों को आए थे सो जयपुर महाराज ने उनके कवित्तों की बड़ी प्रशंसा की। तब आनंदघन जी ने कहा कि तुम प्रशंसा करनेवाले कौन? हमारे कीर्तनों की प्रशंसा करें तो श्रीगोवर्धनजी करें। यह कहकर वहाँ से विदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में आगे नहीं चलेंगे पीछे ही जायँगे सो पीछे ही मथुरा चले गए और यह भी सुना जाता है कि मथुरा में कत्लेआम करनेवालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े-थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गए त्यों-त्यों यह ब्रजरज में लोटते रहे, ऐसे देह त्याग किया।"—(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७३)।

ब्रज से नागरीदास और घनआनंद के प्रस्थान का संवत् 'नागर-समुच्चय' में कवीश्वर जयलाल ने यह दिया है—

अठारह से ऊपरै संवत तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तें कियो पयान॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या को संवत् १८१३ समाप्त हो जाता है और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् १८१४ का आरंभ होता है। अब्दाली का सन् १७५७ में कत्लेआम १ मार्च से ६ मार्च तक हुआ था। 'इंडियन एफिमरीज' के अनुसार

ह समय फाल्गुन शुक्ल दशमी से चैत्र कृष्ण प्रतिपदा तक पड़ता है। इसलिए घनआनंदजी इस आक्रमण में नहीं मारे गए। अब्दाली का हमला सं० १८१३ में ही हुआ था, सं० १८१४ में नहीं इसका प्रमाण 'खोज' के एक विवरण में मिलता है।

चाचा हितवृंदावनदासजी की 'हरिकलावेलि' के विवरण में लिखा है—"काबुल वा कंधार का रहनेवाला एक कलंदरशाह मुसलमानों की एक फौज लेकर पहली बार सं० १८१३ में और दूसरी बार संवत् १८१७ में ब्रज पर चढ़ आया था।"—(त्रैवार्षिक खोज-विवरण १९१२-१४, १९६ के)

इस 'हरिकलावेलि' के आरंभ में ही लिखा है—

ठारह से तेरहाँ बरष हरि यह करी।
जमन बिगोयो देस बिपति गाढ़ी परी।
तब मन चिंता बाढ़ी साधु पतन करे।
हरिहीं मनहु सिष्टि-संघार-काल आयुध धरे॥ १ ॥
दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
अहो नाथ तुम जन हते, भए कौन बिधि पोच॥ २ ॥
बार बार सोचत यही गए प्रान बौराइ।
संत करे बध जमन नै यह दुख सह्यो न जाइ॥ ३ ॥
सहर फरूखाबाद जहँ गए सुरधुनी पास।
चैत्रसुदी एकादसी तहाँ भयौ इक रास॥ ४ ॥
तीन पहर रजनी गई भै कबि कीयो गान।
तहाँ एक कौतुक भयौ जाकौ करौं बखान॥ ५ ॥
आनंदघन कौ ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन।
सुनत महा बिहबल भयौ मन नहिं पायौ चैन॥ ६ ॥
ऐसेहू हरि-संत-जन मारे जमननि आइ।
यह अति देखि हियो भयो लीनौ सोच दबाइ॥ ७ ॥

आनंदघनजी का ख्याल किसी 'इक' ने गाया। सुनकर वृंदावनदासजी विह्वल हो गए, उनके चित्त में स्थिरता नहीं रही। ऐसे ख्याल के निर्माता आनंदघनजी के समान हरि-संत-जनों को यवनों ने मार डाला। पर कब?

क्या संवत् १८१३ में ? न संवत् १८१७ में। यह तो लेखक आरंभ में ही कहता है कि इस या इन आक्रमणों में ऐसे-ऐसे संत मार डाले गए। लेखक ने आगे चलकर सं० १८१७ में दूसरे आक्रमण का उल्लेख किया है। सं० १८१३ में तो वह फरुखाबाद में गंगा के किनारे था। सं० १८१७ में तो उसने आनंदघनजी के शव को प्रत्यक्ष, अपनी आँखों, देखा था। महात्मा आनंदघनजी की 'व्रजरज' में मिलने की इच्छा थी। उनकी यह साध पूरी हुई। उनके शव पर आँसू बहाता हुआ कवि संवत् १८१७ को आषाढ़ वदी रविवार को कहता है—

विरह सौं तायौ तन निवाह्यौ वन साँचौ पन,
धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।
एहो व्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुमहूँ कौं,
कहा नीकी प्रभु यह जग में विस्तरी है।
गाढ़ौ वृज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।
वृंदावन हित रूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
ए पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है॥ १७७॥

हरि तो 'धूल ही उड़ाते रहे' पर भक्त की निष्ठा ही सत्य निकली कि शरीर व्रजरज में ही मिला। खंड-खंड कण-कण होकर।

मुहम्मदशाह रँगीले और उसके अमीर-उमरावों ने पतन की किस सीमा तक मुगल वंश को पहुँचा दिया था। इसका भी स्पष्ट उल्लेख है—

नीत पातसाहैऊ क्यों सूबनि मनसूब चूक्यौ
बहुत दिन निजाम चूक्यौं छाबिल दरेरो किये।
वेस्या मद पान करि छकि गए अमीर जेते
रजतम की भार काढ़ी वृड़े को बिलोकिये।
दिल्ली भई बिल्ली कटैला कुत्ता देखि डरी
भूल्यौ मुहमदसाह पहिले अब शाह ढोकिये।
बादर हिमायुँ कौ चलाऊ अब वंश भयौ
ताको यह फैल्यौ सोक परजा करन ढोकिये॥

आनंदघनजी की हत्या का प्रत्यक्षदर्शी यह महात्मा जो कुछ कह रहा है उसे अब सत्य मानकर हिंदीवालों को अपनी 'नादिरशाही' त्याग देनी चाहिए। 'हरिकलावेलि' का निर्माण काल यह है—

ठारह सै सत्रहों वर्ष गत जानियै।
साढ़ वदि हरिवासर वेल बखानियै॥

* * * *

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। आनंदघनग्रंथावली में 'आनंदघन' के नाम पर जो रचनाएँ दी गई हैं उनमें 'व्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरबी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पंजाबी का ही है। 'आनंदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दोहे व्रजभाषा में भी रखे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पंजाबी में हैं और रागकल्पद्रुम में संगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या तुक जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम के संग्रह में 'घनआनंद' का यह सवैया—

आपुही तें मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु विसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौं कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहिय प्रीति के भाउ मैं।
मोहन मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ वसि एक ही गाउँ मैं॥

किसी 'सुजान' के नाम पर चढ़ा हुआ है। शृंगार-संग्रह में इसे घनआनंद के नाम पर ही दिया गया है। सुजान की अन्य दो रचनाएँ भी वहाँ से नीचे उद्धृत की जाती हैं—

कवित्त

पहिलें तौ नैनन सौं नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनौ चित्त चाय चाय।
अब क्यौं कहत गुर लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम कासौं कहौं जाय जाय।
ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' तो सौं,
तेरे बिन देखें आंखें रहैं झर लाय लाय।

दूर जौ बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय ॥

सवैया

वेद हू चारि की बात कौं बाँचि पुरान अठारह अंग मैं धारै।
चित्र हू आप लिखै समझै कवितान की रीति मैं वार तैं पारै।
राग कौं आदि जिती चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के लारै।
हीनता होय जौ हिम्मत की तौ प्रवीनता लै कहा कूप मैं डारै ॥

—सुधासर, पन्ना २३४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय बँधाई थी जब 'घनआनंद' शाही दरबार में गाना गाते सकुचा रहे थे ? सुजान ही जानें। 'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' के चार पद हैं (प्रथम भाग, पृष्ठ १०७, २५०, २६४; द्वितीय, २२४) जिनमें से दो में तो 'प्रभु सुजान' छाप है, एक में 'महाराज बहादुर' से मुश्किल आसान करने की आरजू है और एक यह है—

खिलतमणि अल्ला नबीयमणि महम्मद, दोउ जगमणि;
चब दिश मासूम पीरनमणि मुरतजा अली कीन।
वासरमणि दिनकर, रजनीमणि चंद्र, तारनमणि ध्रुव,
मलकनमणि जबरइल, यह सब जगत में लीनो बीन।
पातालमणि शेष, शेषमणि अवनी, अवनिमणि नाभ,
नाभमणि अरस, अरसमणि कुरस, लोहमणि कलमा,
तुरंगनमणि बुराक, गजनमणि एरावत, राजनमणि
इंद्र, गिरनमणि सुमेर, चंचलमणि मीन।
कितावमणि कुरान, दीनमणि कलमा, अवदनमणि
आदम कामनमणि हवा रागनमणि भैरो भाषामणि
ब्रज की, जोतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजक
शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनी।

—राग-कल्पद्रुम प्रथम भाग, पृष्ठ २६४।

जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मदशाह के दरबार में कोई 'सुजान' (वेश्या) इसे पद या गा रही है। तो क्या 'सुजान' 'अवनी नवनीतकोम-

लांगी' थी ? होली में 'कन्हैया' बनने का हौसला पूरा करनेवाले सदारँगीले ने 'यवनी वेश्याओं' के नाम भी तो देशी रखे थे।

'सुजान' कोई 'तिया' थी इसका पता प्रस्तुत पुस्तक का छंद ४५ देगा। अब देखिए मुहम्मदशाह के साथ भी 'सुजान' कहाँ है—

किरपा करो रे मो मन सइयाँ तन मन धन
नोछावर करहूँ परहूँ पइयाँ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब कहि भाग हमारे जागे
लेहु बलैया सुरजन सइयाँ॥

—राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ १७९।

'राग-कल्पद्रुम' में यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर पद कह रहा है कि रचना उसके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द 'मुहम्मद सा' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कहि' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना।

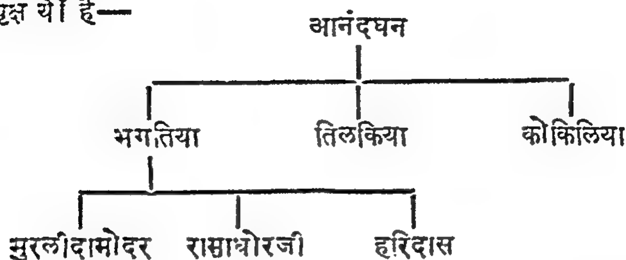
* * * *

जैन और वृंदावनवासी आनंदघन के अतिरिक्त एक तीसरे आनंदघन भी हैं। ये तीसरे आनंदघन नंदगाँव के थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन-वृत्तों से प्रकट है कि वे सं० १५६३ में नंदगाँव गए थे। उस समय उन्होंने नंदगाँव के मंदिर में भगवद्दर्शन किए थे। उस मंदिर में श्रीनंदबाबा, श्री-यशोदा, श्रीबलराम और श्रीकृष्ण के विग्रह थे। इन विग्रहों की स्थापना श्रीआनंदघनजी ने की थी। ये विग्रह श्रीनंदीश्वर पर्वत से प्रकट हुए कहे जाते हैं और प्रकट करनेवाले श्रीआनंदघनजी ही थे। आनंदघनजी श्रीचैतन्यदेवजी से मिले थे अर्थात् उस समय वर्तमान थे। इस प्रकार नंदगाँववासी आनंदघनजी का स्थिति-काल विक्रम की सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध ठहरता है। ये ब्राह्मण-कुलोद्भव शुद्ध भक्त थे। इनके रचे दो-चार पद हैं जो नंदगाँव के मंदिरों में समय समय पर गाए जाते हैं।

इस प्रकार तीनों आनंदघनों का उपस्थिति-काल निम्नलिखित हुआ—

नंदगाँववासी आनंदघन	सोलहवीं शती का उत्तरार्ध
जैन आनंदघन	सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध
वृंदावनवासी आनंदघन	अठारहवीं शती का उत्तरार्ध

नंदगाँव के आनंदघन 'खरोट' गाँव के हैं। यह गाँव 'जोसीकलाँ' (मथुरा) के निकट है और आनंदघनजी के कुलवाले अब भी वहाँ रहते हैं। नंदगाँव के मंदिर के अधिकारी इन्हीं के वंशज हैं। आनंदघनजी के वंशजों का वृक्ष यों है—



नंदबाबा की सेवा का भार भगतिया के उक्त तीनों वंशजों पर है। तिलकिया के वंशज मनसादेवी के मंदिर के अधिकारी हैं। कोकिलिया के वंशज श्रीयशोदानंदन की सेवा में रहते हैं। उल्लिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में जो कवित्त-सवैये और पद आदि रचनाएँ प्राप्त हैं वे वृंदावनवासी आनंदघन की हैं। ये अपनी छाप आनंदघन और घनआनंद दोनों रखते थे। कदाचित् इनका नाम घनानंद था। इससे यह सिद्ध है कि जैन आनंदघन की रचनाओं को छोड़कर हिंदी में इस नाम से प्रचलित रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं। अतः उनका विचार इसी दृष्टि से होना चाहिए।

* * * *

अब घनआनंद की कृतियों का विचार कीजिए। 'घनआनंद-आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' में संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनंद-कवित्त—(००–७९)।

२ आनंदघन के कवित्त—(६–१२५, २६–१२ ए)

३ कवित्त—(२९–११६ टी)

४ स्फुट कवित्त—(३२–७ सी)

५ आनंदघनजू के कवित्त (४१–१० ख)

६ सुजानहित—(१२–४ वी)

७ सुजानहित-प्रबंध—(२९–११६ वी)

८ कृपाकंद-निबंध—(२–६६)

९ वियोग-वेलि—(१७-८ वी, २९–११६ वी)

१० इश्कलता—(१२–४९, ३२–७ ए)

११ जमुनाजस—(४१-१० क)

१२ आनंदघनजू की पदावली—(२६–११ बी, दि० ३१–६)

१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए ; २९–११६ ए)

१४ सुजानविनोद—(२३–१४)

१५ कवित्त-संग्रह—(३२–७ बी)

१६ रसकेलिवल्ली—(००–७९)

१७ वृंदावन-सत—(३२–७ डी) ।

इनमें से 'वृंदावन-सत' तो श्रीहरिदासजी की शिष्य-परंपरा में माधव-मुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधोमुदित प्रसंस हंस जिन रति-रस गायौ।
तिनको हौं निज अंस रहसि रस तिन तें पायौ॥

इनकी छाप थी 'भगवंत', पर 'आनंदघन' पद ने जैसे औरों को धोखा दिया वैसे ही 'खोज' के साहित्यान्वेषक को भी। निम्नलिखित दोहे में उसने 'आनंदघन' को पकड़ा, 'भगवंत' को भूल ही गया, उनकी विनती पर भी ध्यान न दिया—

यह विनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक दै चित्त।
अपनो मोको जानि कै दया करहुगे नित्त॥
वृंदाबन आनंदघन, अति रस सौं रसवंत।
....जिय डरत हौं, यह विनती 'भगवंत'॥

रचना संवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग पचास वर्ष पहले की है—

'संवत दस सै सात अरु सात बरप है जानि।'

'रसकेलिवल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है। 'कवित्त-संग्रह' और 'सुजानविनोद' भी परकालीन नूतन संग्रह हैं। इनमें कुछ छंद नए भी मिलते हैं

जो 'घनआनंद-कवित्त' में नहीं हैं। संख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनआनंद-कवित्त' ही हैं, इनका संग्रह 'व्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होंने संग्रह के आदि और अंत में 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनंद' के ही संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में 'रागमाला' के कर्ता व्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होंने राग-रागिनियों के स्वरूप का बोध दोहों में कराया है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैं, इनका कविताकाल सं० १७८० (जन्म-काल नहीं, जैसा 'मिश्रबंधु-विनोद, में माना गया है) है। यदि ये वे ही व्रजनाथ हों तो 'घनआनंद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनंद-कवित्त', जो कवि के ५०० छंदों का संकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है। इस संग्रह में कुल ५०५ छंद हैं। बीच में दो सोरठे और तीन दोहे भी हैं जिनकी संख्या हस्तलेख में पृथक् नहीं गिनी गई है। प्राचीन काल में मनहरण, घनाक्षरी, सवैया-झूलना सबकी संज्ञा कवित्त थी। तुलसीदासजी की कवितावली में भी कवित्त शब्द का ऐसा ही अर्थ किया गया है। इस संग्रह में कवित्त शब्द इसी अर्थ का बोधक है। आरंभ में २ तथा अंत में ६ कुल ८ छंद व्रजनाथ के हैं और घनआनंद की प्रशंसा में लिखे गए हैं।

संख्या ५ का ग्रंथ 'सुजानहित' ही है, जो म्युनिसिपिल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, कवि के ५०० छंदों का नूतन संग्रह ही है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते हैं। एक प्रकार के हस्तलेखों में ४४८ छंद हैं, दोहों-सोरठों की गणना नहीं की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छंद होते हैं। दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छंदसंख्या मिलती है और दोहों की गिनती कर लेने से ५०५ छंद हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखों की परंपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पड़ी है। 'घनआनंद-कवित्त' और 'सुजान-हित' में बहुत थोड़े छंदों का अंतर है। एक तो 'घनआनंद-कवित्त' में 'कृपाकंदनिबंध के बहुत से छंद हैं, दूसरे दानलीला का बड़ा प्रसंग भी उसमें जुड़ा हुआ है। दोनों का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कवित्त' की कोई अस्त-व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजान-

हित' संकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया हुआ संग्रह जान पड़ता है। इसके संग्रहकर्ता कौन थे? पता नहीं। पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के संप्रदाय के हो सकते हैं। राधावल्लभी या हितहरिवंश के संप्रदाय के भक्तों और उनकी रचनाओं के नामों के आदि-अंत में 'हित' शब्द जोड़ने का चलन है—हितगुलाब, हितध्रुवदास, हित-शृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि।

'कृपाकंद-निबंध' की पहले केवल एक ही प्रति मिली थी। छतरपुरवाले बृहत् ग्रंथ में भी इसका उल्लेख है। 'ब्रजमाधुरसार' का 'कृपाकांड' यही है। रोमी अक्षरों की कृपा से 'कृपाकांड' का कांड उपस्थित हुआ है। यह व्यवस्थित ग्रंथ है और 'कृपा के कंद' (बादल—कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के', छंद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगवेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका नाम भी छतरपुरवाले ग्रंथ में है। पर कुछ लोगों का यह समझना भ्रम है कि रचना खड़ी बोली की है। भाषा इसकी ब्रज ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैं। दोनों एक ही हैं। यह भी संकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नहीं रखे गए हैं, अंत में कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदों को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कहीं छोटे कहीं बड़े हैं। कहीं कहीं पद अधूरे ही हैं। 'ब्रजमाधुरीसार' में जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ हैं और 'खोज' के विवरण-पत्रों का मिलान करने से एक संख्या का अंतर पड़ता है। दूसरी प्रति नहीं मिली, अतः उसका पता नहीं चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति मिलती है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन में भी पहले थी, पर संप्रति उसका पता नहीं चला। दोनों प्रतियों में कोई अंतर नहीं है।

इनके अतिरिक्त अनेक कवित्त-संग्रहों और पद-संग्रहों में भी 'घनआनंद'

छाप के छंद और 'आनंदघन' छाप के पद मिलते हैं। 'खोज' के अतिरिक्त मिश्रबंधुविनोद में छतरपुर राजपुस्तकालय के बृहत् ग्रंथ का विवरण यों दिया गया है—"इनका ५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रंथ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—प्रियाप्रसाद, ब्रजव्योहार, वियोगबेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुल-विनोद, ब्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, ब्रजवर्णन, रसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद।" (—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७४)

'घनआनंद और आनंदघन' नामक ग्रंथ का प्रकाशन होने के अनंतर 'निंबार्क-माधुरी' के संपादक श्रीविहारीशरणजी ने मुझे घनआनंद या आनंदघन के एक हस्तलेख का पता दिया और मैं वृंदावन पहुँचा। हस्तलेख की प्रतिलिपि करने पर निम्नलिखित ग्रंथों का पता चला—

१	प्रेमसरोवर	१५	दानघटा *
२	ब्रज-विलास	१६	इश्कलता *
३	सरसवसंत †	१७	भावनाप्रकाश †
४	अनुभवचंद्रिका †	१८	कृष्णकौमुदी †
५	रंगबधाई †	१९	धामचमत्कार †
६	प्रेमपद्धति	२०	प्रियाप्रसाद †
७	कृपाकंदनिबंध * †	२१	वृंदावनमुद्रा †
८	वृषभानुपुर-सुषमा	२२	ब्रजस्वरूप
९	गोकुलगीत	२३	गोकुलचरित्र
१०	नाममाधुरी †	२४	प्रेमपहेली
११	गिरिपूजन	२५	रसना-यश
१२	यमुना-यश *	२६	छंदाष्टक
१३	विचारसार	२७	त्रिभंगी छंद
१४	प्रीतिपावस *	२८	गोकुल-विनोद †

२९ व्रजप्रसाद †
३० मुरलिकामोद
३१ वियोगवेलि * †
३२ प्रेमपत्रिका * †
३३ मनोरथमंजरी
३४ पद * †

उक्त सूची में जिनपर 'तारा' (*) का चिह्न लगा है वे ग्रंथ 'घनआनंद और आनंदघन' नामक संग्रह में मैंने प्रकाशित कर दिए हैं। जिनपर कटार (†) का चिह्न है वे ग्रंथ छतरपुरवाले संग्रह में भी उल्लिखित हैं। शेष पंद्रह ग्रंथ इसमें अधिक हैं। इसमें छतरपुर-संग्रह के चार ग्रंथ नहीं हैं। इस संग्रह के प्राप्त हो जाने के अनंतर मेरे मित्र श्री० केसरीनारायणजी शुक्ल को लंदन-संग्रहालय के हस्तलेख-विभाग में दूसरा संग्रह मिला जिसमें निम्नलिखित ग्रंथों के नाम हैं—

१ प्रियाप्रसाद प्रबंध * †
२ व्रजव्योहार *
३ वियोगवेली * †
४ कृपाकंदनिबंध * †
५ गिरिगाथा *
६ भावनाप्रकाश * †
७ गोकुलविनोद * †
८ व्रजप्रसाद * †
९ धामचमत्कार * †
१० कृष्णकौमुदी * †
११ नाममाधुरी * †
१२ वृंदावनमुद्रा * †
१३ पदावली * †
१४ कवित्त-संग्रह
१५ प्रेम-पत्रिका * †
१६ रसवसंत * †
१७ अनुभवचंद्रिका * †
१८ रंगवधाई * †
१९ परमहंस-वंशावली *
२० मुरलिकामोद †
२१ गोकुलगीत †
२२ व्रजविलास प्रबंध †
२३ व्रजस्वरूप †

जिनपर तारा (*) लगा है वे छतरपुरवाले संग्रह में उल्लिखित हैं और जिनपर कटार (†) का चिह्न है वे वृंदावनवाले संग्रह में हैं। सब मिलाकर घनआनंदजी की निम्नलिखित कृतियाँ अद्यावधि हिंदी में उपलब्ध हो सकी हैं—

१ सुजानहित
२ कृपाकंदनिबंध
३ वियोगीवेलि
४ इश्कलता

५	यमुना-यश	२३	प्रियाप्रसाद
६	प्रीतिपावस	२४	वृंदावनमुद्रा
७	प्रेमपत्रिका	२५	व्रजस्वरूप
८	प्रेमसरोवर	२६	गोकुलचरित्र
९	व्रजविलास	२७	प्रेमपहेली
१०	रसवसंत	२८	रसनायश
११	अनुभवचंद्रिका	२९	गोकुलविनोद
१२	रंगवधाई	३०	व्रजप्रसाद
१३	प्रेमपद्धति	३१	मुरलिकामोद
१४	वृषभानुपुर-सुषमा	३२	मनोरथमंजरी
१५	गोकुलगीत	३३	व्रजव्यवहार
१६	नाममाधुरी	३४	गिरिगाथा
१७	गिरिपूजन	३५	व्रजवर्णन
१८	विचारसार	३६	छंदाष्टक
१९	दानघटा	३७	त्रिभंगी छंद
२०	भावनाप्रकाश	३८	कवित्त-संग्रह
२१	कृष्णकौमुदी	३९	स्फुट
२२	धामचमत्कार	४०	पदावली

४१ परमहंस-वंशावली

'व्रजवर्णन' का उल्लेख केवल छतरपुरवाले हस्तलेख में है। अभी तक वह प्राप्त नहीं है। यदि 'व्रजवर्णन' 'व्रज़स्वरूप' ही हो तो घनआनंद के सभी ग्रंथ प्राप्त हो गए। छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त-संग्रह, स्फुट वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृतियाँ नहीं हैं। ये उनकी फुटकल रचनाओं के छोटे छोटे संग्रह हैं। 'दानघटा' वही है जो 'घनआनंद-कवित्त' में संख्या ४०२ से ४१४ तक संगृहीत है। परमहंस-वंशावली में 'घनआनंद' ने अपनी गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। हिंदी की इन कृतियों के अतिरिक्त बिहार उड़ीसा रिसर्च जरनल के आधार पर घनआनंद की एक फारसी मसनवी का भी पता चलता है, पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है।

परमहंस-वंशावली के प्राप्त हो जाने से 'घनआनंद' के संप्रदाय के संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता। जैसा कहा जाता है कि 'नामूला तु जनश्रुतिः' जनता में प्रचलित अनुश्रुति निराधार नहीं होती। पहले से ही प्रसिद्ध है कि घनआनंद ने निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षा ली थी। इस परमहंस-वंशावली से यही प्रमाणित हो जाता है। इसमें गुरु-परंपरा का उल्लेख इस क्रम से है—नारायण → सनकादि → निंबादित्य → श्रीनिवासाचार्य → विश्वाचार्य → पुरुषोत्तमाचार्य → विलासाचार्य → स्वरूपाचार्य → माधवाचार्य → बलभद्राचार्य → पद्मांचार्य → श्यामाचार्य → गोपालाचार्य → कृपाचार्य → श्रीदेवाचार्य → सुंदरभट्ट → पद्मनाभभट्ट → उपेंद्रभट्ट → रामचंद्रभट्ट → वामनभट्ट → कृष्णभट्ट → पद्माकरभट्ट → श्रवणभट्ट → भूरिभट्ट → माधवभट्ट → श्यामभट्ट → गोपालभट्ट → बलभद्रभट्ट → गोपीनाथभट्ट → केशवभट्ट → मंगलभट्ट (गांगलभट्ट ?) → श्री केशव (काश्मीरी) → श्रीभट्ट → हरिव्यास → परमानिधि (परशुराम ?) → हरिवंश → नारायणदेव → वृंदावन (देव)।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इनका जन्म कब हुआ या ये वृंदावन कब पहुँचे इसका संकेत कुछ भी नहीं मिलता। इतिहास-ग्रंथों में इनका जन्म-संवत् अनुमान के सहारे १७४६ माना गया है। परमहंस-वंश के निंबार्क-संप्रदायाचार्य श्रीवृंदावनदेव का समय सं० १७५९ से १८०० तक है। उनसे दीक्षा लेना अधिक से अधिक १७५९ ही तक संभव हो सकता है। यदि उक्त अनुमित जन्मकाल ठीक माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि इनकी वय दीक्षा के समय १३ वर्ष की थी, जो इनके जीवन-वृत्त को देखते असंभव है। वृंदावन पहुँचने के समय इनकी वय २५-३० अवश्य माननी पड़ेगी। अतः इनका जन्म-संवत् १७३० के आसपास संभाव्य है।

अपने गुरुदेव की प्रशस्ति इन्होंने यों लिखी है—

श्रीनारायनदेव कौं तिनकौं कृपा-प्रसाद।
अति उदार विद्या विपुल पूरन प्रेम सवाद ॥ ४० ॥
सदा कृस्न-गुन-कथन-रत मतमंडन जयरूप।
विमुखनि खंडन बचन-बर-रचना-तुंड अनूप ॥ ४१ ॥

दीन-सरनदायक कलनहरन अखिल दुख-दोष।
अब तिन पाट प्रसिद्ध जस-करन जीव-परितोष॥ ४२॥
विद्यानिधि बहु विधि निपुन कृपा-अवधि रसकंद।
वचन-रचन हरिचरितमन ससि तें अमल अमंद॥ ४३॥
जगवोहित मोहित प्रगट हरि-विनोद निजधाम।
अवनीमनि श्रीयुत सदा वृंदावन अभिराम॥ ४४॥
बिसे बीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस हैं बीस।
सदा बसौ नीकें लसौ कृपा-ईस मो सीस॥ ४५॥
परमहंस-वंसावली रची सची इहिं भाय।
कंठ धारिहैं गुरमुखी सुखदाई समुदाय॥ ४६॥
कासीवासी सेषगन निगमागमनि प्रवीन।
निंबादित्य अनुगम सबै परम पुनीत कुलीन॥ ४७॥
तिन करि यह निश्चय करी परंपरा की रीति।
स्रुति औ सुमृति पुरान की कथा पुरातन नीति॥ ४८॥

इससे यह भी पता चलता है कि किन्हीं शेष से इन्हें परंपरा की रीति का ज्ञान हुआ। जिज्ञासा होती है कि ये शेष कौन थे। मंडन कवि कृत 'जयशाह-सुजस-प्रकाश' की भूमिका में उसके संपादक विद्याभूषण श्रीव्रजवल्लभशरणजी लिखते हैं—"उस समय जयपुर के श्रीनिंबार्कीय मठ-मंदिरों का प्रबंध श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी महाराज के शिष्य प्रकांड विद्वान् जयरामजी शेष के निरीक्षण में रहा।" 'उस समय' का तात्पर्य है श्री वृंदावनदेवाचार्य के अनंतर अर्थात् सं० १८०० के पश्चात् से १८६० तक। वहीं वे लिखते हैं—"उनके पश्चात् १८६० सावन सुदी १३ तक महाराजा प्रतापसिंहजी ने राज्य किया। उस ६० वर्ष के समय में श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी के पश्चात् १८१४ तक श्रीगोविंददेवाचार्यजी और १८४१ तक श्रीगोविंद-शरणदेवाचार्यजी महाराज आचार्य पीठासीन हुए।" श्रीगोविंददेवाचार्यजी के समय सं० १८०० से १८१४ तक श्रीजयरामजी शेष और श्रीव्रजानंदजी

भी मठ-मंदिरों का प्रबंध देखते थे। घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इसलिए श्रीगोविंददेवजी के समय में वे वर्तमान थे। 'भोजनादि धुन' में इनके नाम से एक पद मिलता है जिसमें श्रीगोविंददेवजी का नाम भी इन्होंने लिया है—

भजि भजि भजि भजि श्रीहरिव्यास।
जौ चाहौ हरिपद की आस॥
हंसरूप नारायन स्वामी। सनकादिक नारद निहकामी।
निंबादित्य निवासाचारज। अखिल विस्व के कारज सारज।
पुरुषोत्तम बिलास निजरूप। आचारजवर परम अनूप।
श्रीमाधव बलभद्र भजौ मन। पद्म स्याम गोपाल प्रेमघन।
कृपाचार्य श्रीदेवाचारज। चरन सरन सुंदरभट आरज।
पद्मनाभ उपइंद्र रामचँद। बामन कृष्णभट्ट आनँदकँद।
पदमाकर श्रवनेस भूरिभट। तिनको सुजस सकल जग परगट।
माधव स्याम भट्ट गोपाल। श्रीबलभद्र जु दीनदयाल।
गोपिनाथ केसव भट मंगल। सुमिरत भागै सकल अमंगल।
कासमीरि केसव दिगजित गुर। तिनकी कथा सकल जग परचुर।
जय जय जय श्रीभट सुखसागर। श्रीहरिव्यास त्रिलोक उजागर।
परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिवंस हंस ईस्वर बिभु।
श्रीनारायनदेव आप हरि। उचरत नाम पाप भाजै जरि।
श्रीवृंदावनदेव सनातन। चातक-रसिकन को आनँदघन।
जो यह भोजनादि धुनि गावै। श्रीगोविंददेव-पद पावै॥

श्रीवृंदावनदेवजी को 'चातक-रसिकों का आनंदघन' गुरु-पद के कारण कहते हैं। साथ ही अपने समय के पीठाधीश श्रीगोविंददेव का भी नाम लेते हैं। श्रीगोविंदशरणदेवजी के समय में यह पद नहीं लिखा गया। अन्यथा उनका नाम भी इसमें संनिविष्ट होता। ऊपर श्रीजयराम शेष के साथ व्रजानंदजी का नाम भी आया है। घनआनंदजी के इस संग्रह के कर्ता 'व्रजनाथ' यही व्रजानंदजी तो नहीं हैं?

इन्होंने निंबार्क-संप्रदाय के अनुकूल 'बधाई' का पद भी लिखा है—

चिरजीवौ हंस गोपाल रसिकवर।
जुग जुग भक्ति प्रचार करैं प्रभु धरि अनेक अवतार विमल वर।
अटल राज भुवमंडल पोपैं सनकादिक गुरु नंद-कुँवरवर।
भवसागर तारन दृढ़ नौका आनँदघन पावै चरन-कमल वर।

निंबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक श्रीहंस भगवान् माने जाते हैं। इसी से इस संप्रदाय के आचार्य 'परमहंस-वंश' के कहे जाते हैं।

* * * * *

प्रस्तुत संस्करण में श्रीघनआनंद या आनंदघनजी का चित्र भी दिया जाता है। यह चित्र कृष्णगढ़ से प्राप्त हुआ है और मुझे निंबार्क-संप्रदाय के वृंदावननिवासी ब्रह्मचारी श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदांताचार्य से मिला है। इस चित्र पर यह छप्पय भी अंकित है—

"सकल-गुन-सुजान स्वामीजी श्रीआनंदघनजी।
वृंदावन मैं अटल ह्वै वास कियौ आनंदघन।
रचैं कटीली काव्य-स्तुति कछु परत न गाई।
अनुपम अक्षर जटित चोज चेटक सरसाई।
श्रवन परत हिय द्रवै छकनि-झूलै सब झूलैं।
मानौं मोहन मंत्र महा सुधि की सुधि भूलैं।
गान-कला मैं अति कुसल सुनत बढ़ै आल्हाद मन।"
[वृंदावन मैं अटल ह्वै वास कियौ आनंदघन॥]

× × × ×

घनआनंद-कवित्त के संबंध में पहले ही कहा जा चुका है कि यह 'ब्रजनाथ' नामक किसी महाशय का किया हुआ संग्रह है और घनआनंद के कवित्तों का सबसे प्राचीन संग्रह है। इस ग्रंथ का नाम 'सुजान-सागर' भ्रांति से चल पड़ा है। इसका आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्रजी के 'सुजान-शतक' की भूमिका से होता है—"इनकी कविता इनके सच्चे प्रेम की परीक्षा देने के हेत रसिक जनों के सामने निवेदित है जो 'सुजान-सागर' ग्रंथ से चुनी गई है।" मिश्रबंधुविनोद में 'खोज' के आधार पर घनआनंद के ग्रंथों का विवरण देते हुए लिखा है—"इन्होंने 'सुजान-सागर', कोकसार, घनआनंद-



घनआनन्द

कवित्त, रसकेलिवल्ली, वियोगवेलि और कृपाकांडनिबंध नामक ग्रंथ बनाए, जो खोज (१९०० तथा १९०३ ई०) में मिले हैं।" शुक्लजी के इतिहास में उल्लिखित है—"घनआनंदजी के इतने ग्रंथों का पता लगता है—'सुजान-सागर', 'विरहलीला', 'कोकसार', 'रसकेलिवल्ली' और 'कृपाकांड'।" भारतेंदु हरिश्चंद्रजी ने 'सुजान-शतक' नाम से इनकी रचना के लगभग १०० छंद प्रकाशित कराए थे। ऊपर बतलाया गया है कि इनके कवित्तों के दूसरे संग्रह 'सुजान-हित' और 'सुजान-विनोद' नाम से भी आगे चलकर हुए थे।

व्रजनाथ के संगृहीत 'घनआनंद-कवित्त' को आधुनिक मुद्रणालय तक सबसे पहले स्वर्गीय बा० जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' ने पहुँचाया और 'सुजान-सागर' नाम से हरिप्रकाश यंत्रालय द्वारा प्रकाशित कराया। आगे चलकर वही अमीर-सिंह द्वारा संपादित होकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा की मनोरंजन-पुस्तक-माला से 'रसखान और घनानंद' ग्रंथ में छपा। हरिप्रकाश यंत्रालय से तथा पीछे सभा से जो अंश प्रकाशित हुआ वह खंडित है। 'घनआनंद-कवित्त' के दो हस्तलेख 'सभा' के 'रत्नाकर-संग्रह' में हैं। एक प्रति अंत में खंडित है। रत्नाकरजी के 'सुजान-सागर' में उतने ही छंद हैं जितने इस खंडित प्रति में। दूसरी प्रति बीच में खंडित है पर अंत में पूर्ण है। यह प्रति रत्नाकरजी को कदाचित् बाद में मिली। यह हस्तलेख वही जान पड़ता है जिसका उल्लेख १९०० की खोज में हुआ है। यह पं० नवनीतजी चतुर्वेदी की प्रति है। रत्नाकरजी ने भी अपने ग्रंथ में चतुर्वेदीजी का उल्लेख किया है। कहा है कि अगस्त की भाँति ये 'सागर' को पिए बैठे थे।

मैंने 'व्रजनाथ' का ही नाम स्वीकृत किया है और उनकी पद्धति ज्यों की त्यों रहने दी है। 'व्रजनाथ' को 'अति कष्ट' से 'लाज, बड़ाई औ सुभाय कों खोय कै' यह संग्रह करना पड़ा है। प्रस्तुत संस्करण स्वर्गीय श्रीनवनीत-जी चतुर्वेदी की उक्त प्रति के आधार पर प्रस्तुत हुआ है। इसमें लिपिकाल नहीं दिया है, पर है यह प्राचीन। जहाँ कहीं प्रतिलिपिकार की भ्रांति जान पड़ी सुजानहित, कृपाकंदनिबंध आदि से मिलाकर ठीक कर दी गई हैं। पर मूल पाठ चतुर्वेदीजी की ही प्रति का सर्वत्र स्वीकृत किया गया है, क्योंकि वह प्रति बहुत ही शुद्ध, स्पष्ट और व्याकरणसंमत लिखी हुई है। इस प्रकार बहुत

सूक्ष्मता से एक एक अक्षर पर ध्यान देकर चलने के कारण 'सुजान-सागर' मे लगे हुए प्रश्नचिह्न हट गए हैं। 'सुजान-सागर' से इसमें ३१ छंद अधिक हैं, जिनमें ब्रजनाथकृत प्रशस्ति भी संमिलित है। कविता को समझाने के लिए टिप्पणियों की योजना कुछ विस्तार से की गई है, जिनमें घनआनंद की गूढ़ रचना को खोलने का अल्प प्रयास मात्र है। मेरा विश्वास है कि घनआनंद की रचना समझने में इस ग्रंथ से कुछ सहायता अवश्य मिलेगी। अंत में मार्मिक मधुव्रतों को यह सूचना देते हर्ष होता है कि नवीन उपलब्ध सामग्री के आधार पर घनआनंद-ग्रंथावली भी नए रूप में शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।

× × × ×

एक युग (बारह वर्ष) से लगातार घनआनंदजी की कृतियों और जीवनवृत्त की खोज में लगे रहने और उनके लिए आँखों की वृत्ति यह करके कि

'आँखैं जौं न देखैं तौ कहा हैं कछू देखति ये'

अब उनके पर्याप्त ग्रंथों के देखने और आलोड़न करने का अवसर हाथ आया, बहुत कुछ का निश्चय भी हो सका। आँखों की ज्योति तो मंद पड़ती जा रही है, पर नेत्रों का फल मिल गया—

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते'

वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, काशी
मकर-संक्रांति, २००७ वि०

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

घनआनंद-कवित्त

घनआनंद-कवित्त

(उपक्रम—कवि-प्रशस्ति)

सवैया

नेही महा, ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद को जानै ।
जोग-वियोग की रीति मैं कोविद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै ।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं-मिलैं प्रीतम सांति न मानै ।
भाषा-प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै ॥१॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी ।
सुनि कै सब के मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि-चकी ।
जग की कविताई के धोखैं रहै ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी ।
समुझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ॥२॥

---

[१] घनआनंद के काव्य की यह प्रशस्ति संग्रहकर्ता ब्रजनाथ ने की है। भावना० = वृत्तियों के भेद का स्वरूप ठीक ठीक ग्रहण कर सके। चाह = प्रेम। बिछुरैं = प्रिय के बिछुड़ने और (बिछुड़ने के अनंतर) मिलने पर जो शांत न रहे; उसके पाने और भेंटने के लिए विह्वल हो उठे। भाषा० = भाषा की सामान्य गति-विधि से पूर्ण परिचित। सुछंद = स्वच्छंद (व्यावहारिक बंधन से मुक्त)। कवित्त = कविता। बखानै = अर्थ का तत्त्व बतला सकता है।

[२] अति ऊँचो = उत्तम कोटि का। छकी = परिपूर्ण। लालच = लालसा। बौरे = अनभिज्ञ। बुद्धि-चकी = चकित बुद्धि से, आश्चर्यचकित होकर। जग की कविताई = अन्य लोगों की (रीतिबद्ध) सामान्य कविता। जाति जकी = चकपकाती है। हिय-आँखिन = हृदय की आँखों से। तकी = देखी हो, अनुभव की हो।

(मूल ग्रंथ)

कवित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी
        लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो वदन, रुचिर भाल,
        रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियैं मोती-माल होति,
        पिय सौं लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि, जगमगति छबीली बाल
        अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं ॥१॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन मैं छबि-फूलन की बरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल-कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै ॥२॥

---

[१] लपेटी = लिपटी हुई, युक्त। भेद-भाय = रहस्यपूर्ण भाव, गूढ़ भाव। वदन = मुख। दसन० = दाँत की चमक फैलकर हृदय पर मोती की माला जान पड़ती है। लड़कि = लचक के साथ। निधि = खजाना या समुद्र। बाल = बाला, प्रेमिका। अनंग० = कामजन्य छटा से मिलकर। मुरि० = मुड़ने में, घूम जाने में।

[२] छके = (प्रेम के मद से) मस्त। काननि० = कानों को छूकर, कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल। कपोल = कपोल पर। कलोल० = हिलती है। कल० = सुंदर गर्दन पर। जलजावलि० = मोतियों की दो लर की माला। धर = धरा पर, पृथ्वी पर।

कवित्त

छवि को सदन, मोदमंडित वदन-चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेख करे, मटकीली भाँति सौं ही
मुरली अधर धरेँ लटकत आयहौ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ॥ ३ ॥

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन, हियरा तेँ न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छवि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करती है॥ ४ ॥

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसेँ करि जिय की जरनि सो जताइयै।

[३] मोद० = प्रसन्नतायुक्त, प्रफुल्लतापूर्ण। चटकीलो = भड़कीला। मटकीली० = चटक-मटक के ढंग से ही। लटकत = मस्ती से झूमते हुए, बल खाते हुए। ढुराय = हिलाते हुए, इधर-उधर मटकाते हुए। नेह० = प्रेमयुक्त। लड़काय = ललक के साथ। आनि = आकर।

[४] लड़कीली = ललकवाली। अरति० = अड़ती है, जम जाती है। गति लैन = (मस्ती से) चलना। बैन = वेणु, बाँसुरी। चिताई = चैतन्य की हुई, जगाई हुई। चाहिबे की = देखने की। छैलताई = रँगीलापन। सुधि = स्मृति। बेसुध = बेहोशी, विस्मृति।

महा निरदई, दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
वेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि धौं लगाइयै ॥ ५ ॥

सवैया

भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥६॥

कवित्त

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।

---

[५] निपट = अत्यंत। कैसें = किस प्रकार। जताइयै = बतलाऊँ। दई = हे दैव। वेदन = वेदना, पीड़ा। बढ़वारि = बढ़ती, अधिकता। दुराइयै = छिपाऊँ। दुख० = दुःख को ठीक ठीक कहने के लिए यदि कहीं जीभ होती तो भी कोई बात थी (वेदना के आधिक्य से जिह्वा अपना कर्म करने में असमर्थ है)। कैं = यदि कहीं। ऐपै = इतने पर भी। भाग = भाग्य। काहि = किसे। धौं = न जाने।

[६] न हारति = थकती नहीं। तारनि० = तारों को देखना। तारनि सों = पुतलियों से, आँखों से। इकतार = लगातार। ताकिबो न टारति = ताकना नहीं छोड़ती, ताकती ही रहती है। भावतो = भानेवाला, प्रिय। आँसुनि = आँसू से अवसर को गारती है। आँसुओं के द्वारा अवसर ही चू जाता है, आँसुओं के प्रवाह के कारण देखने का अवसर ही नहीं मिलता। सौंहन = सामने। जोहन = देखने की। आरति = (आर्ति) लालसा।

मीठे-मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलैं तौ तब,
अब जिय जारत, कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं, यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपायहै ।सु कैसें कल पायहै ॥ ७ ॥

सवैया

हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-समानै।
नीर-सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़, मीत के पानि परे कौं प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥८॥

[७] मिटाय० = पहचान मिटा दी, भूल गए। जक = रटन। निपट = अत्यंत। सूल-सेलनि = वेदना की कसक, पीड़ा का अनुभव। क्यौं हूँ = किसी प्रकार भी। न भुलाय = भूलती नहीं। धौं = तो। कै = कि, या। प्रगट = प्रसिद्ध। काहू = किसी को। कलपायहै = तरसाएगा, कष्ट देगा। सु = सो, वह। कल = चैन, सुख।

[८] हीन० = जल से हीन होने पर, जल से वियुक्त होकर। मीन० = मछली अधीन या विवश हो जाती है, व्याकुल होती है। कहा = क्या। कछु = थोड़ा भी। हीन…समानै = जल से वियुक्त होने पर विवश हुआ मीन क्या मेरी व्याकुलता की समानता कर सकती है। नीर-सनेही = प्रिय जल को। लाय = लगाकर। निरास० = आशा का त्याग कर, भरोसा छोड़कर। कायर = डरपोक, प्रेम में उत्साह बनाए न रखनेवाला (मीन)। जड़ = अचेतन। मीत = मित्र, प्रिय। पानि = हाथ में। प्रमानै = प्रमाणित करता है। जड़… प्रमानै = अपने प्रिय अचेतन जल के हाथ में पड़ने को प्रमाणित करता है, जड़ जल के वश में पड़ने से प्रेमी के प्रति उसकी उदासीनता के कारण तड़पता हुआ मर जाता है। जु = जो। जीव की जीवनि = प्राणों के लिए भी प्राण, अत्यंत प्रिय। जान = सुजान, प्रिय। इस सवैये में कवि का लक्ष्य यह है कि मीन का प्रिय जड़ है और स्वतः मीन में विरह का कष्ट सहन करने का साहस नहीं है, इसलिए यदि मेरे प्रेम की तुलना उससे की जाय तो ठीक नहीं। मेरा प्रिय चेतन है और साहसपूर्वक मर्मांतक क्लेश सह रहा हूँ। जड़ न सही

मीत सुजान अनीति करौ जिन, हा हा न हूजियै मोहि अमोही।
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर, फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई ! कित प्यासनि मारत मोही ॥९॥

पहिले घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी।
अब लाय बियोग की लाय, बलाय बढ़ाय, बिसास-दगानि दगी।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी, न कहूँ लगैं, कौन घरी सु लगी।
मति दौरि थकी, न लहै ठिक ठौर, अमोही के मोह-मिठास-ठगी ॥१०॥

क्यौं हँसि हेरि हर्यौ हियरा, अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि, चैननि मैन-निसैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी, इते पै न जानियै कौनैं पढ़ाई ॥११॥

चेतन तो प्रभावित किया जा सकता है, विरही के कष्ट का वह तो अनुभव कर ही सकता है, फिर भी वह ऐसा नहीं करता यही विलक्षणता है।

[९] जिन = मत। मोहि = मोहित करके। कौं = के लिए। दृग = (मेरे) नेत्रों में। रूप = छवि, शोभा। दोही = दुहाई। फिरी दृग० = मेरे नेत्रों में आपके रूप की दुहाई फिरी हुई है, मेरे नेत्रों में आपका रूप छाया है। एक = केवल। बिसास = विश्वास। टेक = सहारा, आसरा। लगि = आशा से लगकर, आशा लगाए हुए। रहे बसि = बसे हुए हैं। बटोही = पथिक, यात्री। घन-आनँद = आनंद के बादल; अत्यंत आनंददायक (प्रिय के लिए विशेषण)। जीवनमूल = जल के भांडार, प्राण के तत्त्व।

[१०] घनआनँद = आनंद के बादल। लाय = लगाकर। लाय = आग। बलाय = बला, विपत्ति, कष्ट। बिसास = विश्वासघात। दगा = धोखा, कपट। दगी = (सकर्मक) दागी, जलाई। कुबानि = कुटेव। न कहूँ० = कहीं लगतीं नहीं, आँखों को कुछ देखना सुहाता नहीं। घरी सु लगी = (कैसी) घड़ी लगी है, कैसा समय आ पड़ा है। दौरि = दौड़कर, विचार करते करते। ठिक ठौर = ठीक ठिकाना। मोह-मिठास = मोह की मिठास द्वारा। ठगी = ठगी हुई।

[११] हित = प्रेम। चाह = उत्कंठा, लालसा। काहे कौं = किस लिए।

कवित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान, कहौ
कैसेँ रहैँ प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौँ तरसायहौ।
चातिक है रावरो, अनोखो मोह-आवरो
सुजान-रूप-बावरो, वदन दरसायहौ।
विरह नसाय, दया हिय मैँ बसाय, आय
हाय! कब आनँद को घन बरसायहौ॥ १२॥

सवैया

तब तौ छवि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुख-दोष-भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे॥१३॥

सुधासने = अर्थात् अत्यंत मीठे। चैननि = आनंदपूर्वक। मैन = (मदन) काम। निसैन = सीढ़ी। मैन० = काम की सीढ़ियाँ पर किस लिए आनंदपूर्वक चढ़ाया। काम क्यों उत्पन्न किया। सालति = कसकती, पीड़ा करती है। कढ़ै० = निकालने से नहीं निकलती। पाटी पढ़ाई = पाठ पढ़ाया। इते पै = इतने पर। न जानियै = नहीं जान पड़ता। कौनैं = किसने।

[१२] हित = प्रेम। निधान = आधार, पात्र। अनखि = रूठकर। अरसायहौ = (मिलने में) आलस्य करोगे। आनि = आकर। याहि = इस प्रेमी को। कौ लौँ = कब तक। रावरो = आपका। मोह-आवरो = मोह से व्याकुल। रूप० = रूप पर पागल। वदन = मुँह। दरसायहौ = दिखाओगे। नसाय = नष्ट करके, दूर करके। दया बसाय = (हृदय में) दया बसाकर, दया करके।

[१३] छवि पीवत = शोभा पीते हुए, रूप निरखते हुए। जीवत हे = जीते थे। हित-पोष = (तब) प्रेम के पोष (पोषण)। तोष = छकने की तुष्टि, अघाने का संतोष। बिललात = (अब वे ही प्राण) व्याकुल होते हैं। दोष = कष्ट, क्लेश। साज = विधान। समाज = समूह। टरे = हट गए, दूर

पहिलैं अपनाय सुजान सनेह सौं, क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मझार, दई! गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआँनद आपने चातिक कौं, गुन-बाँधि लै, मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं बिस घोरियै जू ॥१४॥

बावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यौ, सुजान! सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै, घनआँनद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥१५॥

कवित्त

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ, कीनौ खेल सो यहै।
निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप-ओर
लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै।

हो गए। हार = माला। हे = थे। अब आनि कै० = अब प्रिय के और मेरे बीच पहाड़ आकर पड़ गए हैं, प्रिय मुझसे बहुत दूर हो गया है।

[१४] तेह० = रोष करके। नेह तोड़ना = प्रेम करना छोड़ देना। निरधार = निराधार, निरवलंब। धार-मझार = धारा के बीच में (डूबते हुए को)। बोरियै = डुबाइए। गुन = गुण, विशेषता; रस्सी। बाँधि लै = बाँध लेकर, बाँधकर। मोह न० = प्यार का त्याग न कीजिए। रस = आनंद; (अमृतवत्) मीठा पेय। प्याय = पिलाकर। बिसास = विश्वास। यौं = इस प्रकार (आप विष घोल रहे हैं)। बिसास मैं० = कहाँ विश्वास में आपकी भाँति विष घोला जाता है? विश्वास का नाश किया जाता है? विष घोलना = नष्ट कर देना, अग्राह्य बना देना।

[१५] नयो नयो० = मिलाइए 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः'। अघानि = तृप्ति। आनि तिहारियै = आपकी शपथ है। हुतौ = था। सु = सो, वह। वार्‌यौ = निछावर कर दिया। सोच = चिंता। सहारियै = सहारा दीजिए, अपने ऊपर लीजिए, सम्हारिए। रोकी रहै न = मेरे रोके नहीं रुकती। बावरी० = पगली रीझ के हाथों हार माननी पड़ती है, अपनी इस रीझ के कारण ही तो विवश हूँ।

अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं
हाथ साथ लाग्यौ, पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौं उड्यौ रहै ॥१६॥

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे द्रग-चातिग-प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौ, इन थ्यावस हो न, सु क्यौं करियै अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं ॥१७॥

[१६] आस ही० = आशारूपी आकाश में। अवधि० = अवधिरूपी डोर। चोप = चाव। कीनौ० = आपने तो यह गुड्डी का खेल सा कर रखा है। निपट = अत्यंत। ऐँचत न = खींचते नहीं। आप० = अपनी ओर। लाड़िले = प्रिय। दुहेली = दुःख की। हाथ० = हाथ से लगी रहने पर भी दूर रहती है (गुड्डी); आपके हाथ में पड़ा रहने पर भी आपसे दूर रहता है (जीव)। बिरह० = बिरहरूपी वायु के झोंकों से अधीर होकर। नेह० = आँसू से भींगा रहने पर। तऊ = तो भी। गुड़ी लौं = गुड्डी की भाँति। इस कवित्त में 'चित्त या जीव उड़ना' मुहावरे को लेकर रूपक बाँधा गया है। कई मुहावरे यहाँ से वहाँ तक फँसे पड़े हैं—गुण (डोर) बढ़ाना, चोप चढ़ाना, खेल करना, हाथ लगा होना, समीप (पास) न लहना ('पाना)। इसी प्रकार कई स्पष्ट अलंकार भी उलझे हुए हैं—'हाथ⋯लहै'—विरोधाभास, 'नीर⋯रहै'—तीसरी विभावना। पूरे छंद में उपमामिश्रित सावयव रूपक।

[१७] घनआनँद = आनंद के बादल ('सुजान' का विशेषण)। जीवनमूल = जल धारण करनेवाले (बादल); प्राणों के मूल (सुजान)। कौंधा = बिजली की चमक ; (प्रिय की) झलक। न जानियै० = न जाने कहाँ घिरे हुए हैं (बादल); न जाने किसके यहाँ बसे हुए हैं (प्रिय)। द्रग = नेत्र-रूपी चातक के प्राण। तपे = विरह से तपकर (नेत्र); प्यास से व्याकुल होकर (चातक)। पावस = (प्रावृष्) वर्षा। थ्यावस = स्थिरता, धैर्य, शांति। हो = था। सु क्यौं करि० = उस वर्षा को ये अब किस प्रकार प्राप्त करें ? बदरा =

कवित्त

जेतो घट सोधौँ पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौँ
को धौँ जीव जारै अटपटी गति दाह की।
धूम कोँ न धरै, गात सीरो परै ज्यौँ ज्यौँ जरै
ढरै नैन-नीर, वीर! हरै मति आह की।
जतन बुझै हैँ सब जाकी झर आगेँ, अब,
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की।
जब तेँ निहारे घनआनँद सुजान प्यारे
तब तेँ अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥१८॥

बादल। ऋतु = वर्षा। घिरि कै = छाकर। उघरी = खुली हुई। बिन पावस… बरसैँ = बिना वर्षा के इन नेत्ररूपी चातकोँ को शांति नहीँ मिलती थी ('आनंदघन सुजान' के दूर छाए रहने से), उस वर्षा का पाना कठिन हो गया है। इसी लिए ये आँखेँ उनके मार्ग को देखती हुई खुली रहकर वर्षा किया करती हैँ। बादल तो समय आने पर वर्षा मेँ ही छाकर बरसते हैँ (ये नित्य ही बरस रही हैँ)। 'घिरि कै' और 'उघरी' मेँ विरोधाभास और पूरे पद्य मेँ श्लिष्ट रूपक है।

[१८] इस कवित्त मेँ प्रेम की आग सामान्य आग से विलक्षण (अनोखी) बतलाई गई है। जेतो = जितना ही। घट = शरीर। सोधौँ = खोजती हूँ। आहि = है। सो धौँ = न जाने वह (कहाँ है)। को धौँ = (जब उसका पता नहीँ चलता तो फिर) मेरे प्राणोँ को कौन जला रहा है? अटपटी = विलक्षण, विचित्र। गति० = इस आग के जलने की दशा। धूम० = यह आग धुआँ नहीँ धारण करती, इसमेँ धुआँ नहीँ निकलता। सीरो = ठंढा। गात० = शरीर ज्योँ ज्योँ जलता है त्योँ त्योँ (गरम होने के बदले उलटे) ठंढा पड़ता है। ढरै = गिरता है, टपकता है। बीर = हे सखी। हरै० = 'आह' करने की बुद्धि को भी यह हर लेती है, आह करने की भी इच्छा नहीँ रह जाती। जतन० = इसकी ज्वाला मेँ तो इसे बुझाने के सब यत्न भी बुझ गए हैँ, कोई उपाय नहीँ चलता। झर = ज्वाला। आगेँ = सामने अर्थात् बीच, मेँ। उमाह = उमंग। कबहूँ० = इसकी उमंग से भरी भभक कभी दबती ही नहीँ, इसकी ज्वाला निरंतर प्रचंड होती जाती है। पूरे छंद मेँ व्यतिरेक अलंकार द्वारा प्रेम

आँखैं जौ न देखैं, तौ कहा हैं कछु देखति ये
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखें लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ ते
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।
हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे
चातिक बिचारे सोँ न चूकनि परेखियै ॥१९॥
जहाँ तेँ पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे
वारे ये बिचारे प्रान पैँड़ पैँड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हा हा नेकु फैँट छोरि बैठौ
मोहिँ वा बिसासी को है ब्यौरौ बूझिबो घनौ।
हाय निरदई कोँ हमारी सुधि कैसेँ आई
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।

की आग को सामान्य आग से बढ़ी चढ़ी कहा गया है। 'आनंदघन' को देखकर 'आग लगने' में विरोध है।

[१९] आँखैं० = यदि आखें आप (प्रिय) को नहीं देखतीं तो फिर ये और देखती ही क्या हैं? आपको न देखकर इन आँखों को कोई दूसरा पदार्थ देखना नहीं रुचता। दुखहाइनि = दुखिया। जान = सुजान, प्रिय। रूप० = रूप के उजालेवाले, अत्यंत रूपवान्। बिना मिलन० = बिना आपके मिलन के इन्हें किस गिनती में गिना जाय, आपके बिना ये आँखें किसी गिनती में नहीं, आँखें आँखें रह ही नहीं जातीं, उनका होना न होना एक सा है, आपको देखने से ही आँखें आखें कहलाने योग्य हैं। नीर-न्यारे = जल से वियुक्त। अधीन = विवश। गति = दशा। मति = बुद्धि अर्थात् कार्य। पेखियै = देखाई देती है। ढरारे = ढलनेवाले, द्रवीभूत होनेवाले, बरसनेवाले। रस = प्रेम, जल। चूकनि = चूक में डालकर, भूलकर। न परेखियै = परीक्षा मत लीजिए [अथवा चातक० = चातक बेचारे की भूलों का बुरा मत मानिए। (परेखना = बुरा मानना)]।

झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२०॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥२१॥
पहचानै हरि कौन, मो से अनपहचान कौं।
त्यौं पुकार मधि-मौन, कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं ॥२२॥

[२०] प्रिय के यहाँ से कोई पत्र लेकर आया है, उसी से प्रेमिका कह रही है। जहाँ तें = प्रिय जहाँ जहाँ से गए वहाँ वहाँ मेरे नेत्रों पर पैर रखकर ही गए। मेरे नेत्र निरंतर उनका जाना एकटक देखते रहे। वारे = निछावर हुए। पैंड = डग, कदम। वारे ये० = मानों ये बेचारे मेरे प्राण कदम कदम पर निछावर हो गए, उनकी चाल पर ये लोटपोट होते रहे। आतुर० = हड़बड़ी मत करो। नेकु० = थोड़ा फेंट छोड़कर आराम से बैठिए तो। बिसासी = विश्वास-घाती। ब्यौरो = हाल-चाल। मोहिं० = मुझे तो उस विश्वासघाती का बहुत सा हाल पूछना है। हाय० = उस निष्ठुर को मेरा स्मरण आया तो कैसे। दीन० = मुझे विरह से दुखी समझकर कहो। झूठ की० = वह तो झूठ की सचाई से छका (भरापूरा) है, यदि उसमें किसी बात की सचाई है तो झूठ की ही। त्यौं = इसी प्रकार। हित० = प्रेम के कच्चेपन से पका हुआ है, यदि किसी बात में पक्का है तो प्रेम की कचाई में ही। गुन = (विपरीत लक्षणा से) अवगुण। 'झूठ······पाक्यो' में विरोधाभास है।

[२१] रस = प्रेम, जल। कौन हित = यह कैसा प्रेम है ? [अथवा किस लिए]। पपीहा० = नेत्ररूपी चातक। बरसना = जल बरसना; प्रेम करना।

[२२] हरि = हे ईश्वर। अनपहचान = अपरिचित। पुकार० = मौन में ही पुकार है। कृपा-कान० = जैसे नेत्रों में कृपारूपी कान लगे हैं। त्यौं पुकार··· ज्यौं = जिस प्रकार आपके नेत्रों के बीच कृपारूपी कान छिपे पड़े हैं, आप देखकर ही सुन लेते हैं, समझ लेते हैं, कृपा करते हैं उसी प्रकार मेरे मौन में ही पुकार छिपी हुई है। मेरी मौन चेष्टा में व्यक्त होनेवाली पुकार को आपकी कृपा के कान सुन लेते हैं, जो आपके नेत्रों में ही लगे हैं। आप मेरी दशा

कवित्त

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं।
दुख-दव हिय जारि, अंतर उदेग-आँच
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचायहौं।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसैं घनआनँद गही है टेक मन माहिँ
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं ॥२३॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहिँ थ्यावस।

(मौन पुकार) नेत्रों से देखकर ही समझ लेते और कृपा करते हैं। 'त्यौं... ज्यौं' में विरोधाभास है।

[२३] किसी अत्यंत निर्दय के हृदय में भी दया उत्पन्न हो सकती है यदि उसका कोई, जिससे वह उदास है, उसकी आँखों के सामने ही डूब मरने का उपक्रम करे। आसा-गुन = आशारूपी रस्सी। आसा० = आशा की रस्सी में अपने को बाँधकर, आशा लगाए रहकर। सिल = पत्थर। भरोसो० = भरोसा-रूपी पत्थर छाती पर रखकर, (हृदय कठोर करके), उसका भरोसा किए रह-कर। पूरे = पूर्ण। पन-सिंधु = प्रेम की प्रतिज्ञा के समुद्र में। न सकायहौं = शंकित न होऊँगी, डरूँगी नहीं। दुःख-दव = दुःख की दावाग्नि से। उदेग = उद्वेग, व्याकुलता। अंतर० = भीतर होनेवाले उद्वेग की आँच में। रोम रोम = रोआँ रोआँ, सारा शरीर। त्रासनि = पीड़ाओं से। निरंतर = लगातार। तचायहौं = तपाऊँगी। भाँति = प्रकार। जानि = जानकर, जानते-बूझते हुए। साहस सहारि = साहसपूर्वक सँभलकर। सिर० = सिर पर आरे की भाँति (उन दशाओं को) चलवाऊँगी। उन दुस्सह दशाओं को अत्यंत कष्ट होते हुए भी सहूँगी। ऐसैं = इस प्रकार (से)। इस कवित्त में प्रेमी बतलाना चाहता है कि प्रेम में शारीरिक अथवा मानसिक यंत्रणा का भय बिलकुल नहीं रहता।

नैनउ धारि दियेँ* बरसैँ घनआनँद छाई अनोखियै पावस।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैँ सदाई अमावस ॥२४॥

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेँचि करी अधबीच ही लौँड़ी।
फैलि गई, घर-बाहिर बात सु नीकैँ भई इन काज कनौँड़ी।
क्यौँ करि थाह लहैं घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औँड़ी।
हाय दई! न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौँड़ी ॥२५॥

दोहा

जानराय! जानत सबै, अंतरगत की बात।
क्यौँ अजान लौँ करत फिरि, मो घायल पर घात ॥२६॥

सवैया

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।

---

[२४] अंतर० = हृदय के भीतर की तपन से। उसास० = उच्छ्वास (तक) अत्यंत तप उठती है। उसीजै = उबल जाता है। उदेग० = उद्वेग (व्याकुलता) की औँस (भाप) से। ज्यौ = जी, जीव। कदुलाय = (गरमी से) व्याकुल होता है, शिथिल पड़ जाता है। मसोसनि = मसोसने की उमस से। क्यौँ हूँ = किसी प्रकार भी। कहूँ = कहीँ भी। सु = सो, वह। थ्यावस = स्थिरता, शांति। धरै० = स्थिरता नहीँ धारण करता, स्थिर या शांत नहीँ होता। नैन० = नेत्र भी आँसू की धारा बरसते हैँ। जीवनिमूरति = जीवन का दान देनेवाली मूर्ति। जान = सुजान; प्रिय। आनन = मुख (चंद्रवत्)। सदाई = सदा, सब तिथियोँ मेँ, निरंतर। अमावस = अमावास्या, घोर अंधकार।

[२५] रूप = सौंदर्य; रूपा, द्रव्य। नैननि० = नेत्ररूपी दलालोँ ने। अधबीच ही = पूरा सौदा पटने के पहले ही। नीकैँ = भली भाँति। इन काज = इन नेत्रोँ के कारण, इनके पीछे। कनौँड़ी = बदनाम। तट ही = किनारे पर ही। औँड़ी = गहरी। बिसासी = विश्वासघाती। डौँड़ी = डुग्गी। हाय दई० = मेरे प्रेम करने की डुग्गी तो सारे संसार मेँ पिट रही है, पर वह विश्वासघाती फिर भी कुछ नहीँ सुनता।

* पाठांतर—नैन उघारि हिये।

कैसो सँजोग वियोग धौं आहि ! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे ।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक ह्वै आप तें न्यारे ॥२७॥
खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है ।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै, तैं न* दाह दग्यौ है ।
जानि परै नहिं जान ! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है ।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है ॥२८॥

कवित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं ।
जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन
व्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं ।

---

[२६] जानराय = सुजानों में श्रेष्ठ । अंतरगत की = हृदय की ।

[२७] और = अन्य, प्रेमी । त्यागे = छोड़े हुए । सुखारे = सुखी (हो) । कैसो० = संयोग और वियोग कैसा है (इसे आप क्या जानें) । धौं = न जाने । आहि = है (अवधी) । मो० = मेरी दशा तब कहाँ समझ में आए । जब होहु० = यदि कहीं घड़ी भर के लिए भी आप अपने आपसे अलग हों, अपने को भूलें (तो) ।

[२८] इसमें प्रेम होने और प्रेत लगने की दशा का एकीकरण दिखाया गया है । जो स्थिति प्रेमावेश में होती है वही भूतावेश में भी, अर्थात् इस पद्य में प्रेमोन्माद का वर्णन है । सोय० = स्मृति सो गई, स्मृति जाती रही । उनमाद जग्यो० = उन्माद छाया है । चकि = चकपका उठती है, चकित होकर इधर उधर देखती रहती है । चलि० = चलकर तेरे निकट अपनी बात सुनाती है । तैं न = उसकी जलन का भी तेरे ऊपर प्रभाव नहीं पड़ता । ताहि = उसे, प्रेमिका को । कहा कछु, = क्या कुछ, न जाने क्या हो गया है । आहि = है । खगना = समाना, घुसना । कहा० = न जाने उसे क्या हो गया, क्या लग गया है । पचियै = परेशान होती हूँ । हेत = प्रेम । हेत पग्यो० = वह प्रेम (रस) में पगी हुई है, प्रेममग्न है अथवा उसे प्रेत लगा हुआ है ।

* तन

अतन-जतन तें अनखि अरसानी वीर !
प्यारी पीर-भीर क्यौंहूँ धीर न धरति हैं ।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की
भसमी विथा पै नित लंघन करति हैं ॥ २९ ॥

विकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है ।
सौरभ समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं विराग-मुरझनि है ।
सखी जहाँ जाल प्यारी रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौं परै विपाद-गुरझनि है ।

---

[२९] घेर = घिराव, रोग का आक्रमण । उवरानी ही = ऊबी हुई, उचटी हुई, आँसू वहाती हुई । आरति-राती = दुःख में रँगी हुई, दुःखित । साध = प्रवल इच्छा (देखने की साध) । रूप के अधार = रूप के अवलंब, अत्यंत रूपवान् । खरी = अत्यंत । अतन = काम । अतन-जतन तें = कामोपचार से, [अथवा नेत्रोपचार से] । अनखि = चिढ़कर, रूठकर । अरसानी = उदास हो गई हैं, यत्नों से मुँह मोड़ लिया है । वीर = हे सखी । पीर-भीर = पीड़ा की भीड़, वेदना की राशि । असाध = असाध्य, जो (रोग) अच्छा किया ही न जा सके । निपेटनि = (नि + पेटनि) अत्यंत पेटू, अत्यधिक खानेवाली । भसमी विथा = भस्म कर देनेवाली व्याकुलता; भस्मक रोग की व्यथा । भस्मक रोग = 'भावप्रकाश' में इस रोग का लक्षण यह वतलाया गया है कि इसके उत्पन्न होने से भोजन शीघ्र पच जाता है । इसलिए भूख वरावर वनी रहती है, पेट भरता ही नहीं । देखियै दसा० = आँखें एक तो स्वभावतः पेटू हैं, अधिक खाने वाली हैं, थोड़े में उनकी तृप्ति नहीं होती, उस पर उन्हें भस्मक रोग हो गया है, जो खाती हैं वह भस्म होता जाता है । परंतु अव उन्हें नित्य लंघन करना पड़ रहा है । आँखों को प्रिय के दर्शन से तृप्ति नहीं, चाहे जितना देखें इनकी भूख बुझती ही नहीं और इस पर उनके दर्शन ही नहीं हो रहे हैं । ये जिएँ कैसे । 'भसमी विथा···करति हैं' में विरोध है।

हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सोँ,
क्योँ हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥ ३० ॥

तब ह्वै सहाय हाय कैसेँ धौँ सुहाई ऐसी
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
सौँचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौँपि
अंतर मैँ विषम विषाद-बेलि बै चले।
क्योँ धौँ ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई
हेली मनभावन अकेली मोँहि कै चले ॥ ३१ ॥

---

[३०] विकच = खिला हुआ। नलिन = कमल। उरझनि० = उलझन पड़ गई, पेँचीली स्थिति हो गई है। सौरभ० = सुगंधित वायु। बहकि = बहककर, सुध-बुध खोकर। दहकि जाय = जल उठती है। राग-भरे = प्रेमयुक्त। विराग० = विराग के कारण हृदय मुरझा जाता है। कमल आदि को देखकर उनसे विराग होता है और हृदय मेँ मुरझाहट आ जाती है (संयोग मेँ 'कमल, सौरभ समीर' आदि प्रेम के उद्दीपक हैँ, वियोग मेँ इनसे क्लेश उद्दीप्त होता है)। रूप = सौंदर्य; रूपा, चाँदी। गुन = गुण; बत्ती। ज्यौ = जीव, मन (मेँ)। गुरझनि = गाँठ। जहाँ० = जहाँ प्रिय के रूप-गुण का प्रकाश नहीँ मिलता (जहाँ वह दिखाई नहीँ पड़ता) वहाँ मेरे हृदय मेँ दुख की गाँठ पड़ जाती है (दुख जम जाता है)। अटपटी = विलक्षण। निपट = अत्यंत। चटपटी० = अति प्रबल वेग से। सूझै० = सुलझाव का कोई उपाय नहीँ दिखाई पड़ता।

[३१] ह्वै = होकर, हुए। सहाय = सहायक, प्रेम मेँ साथ देनेवाले। सुहाई = (अब) ऐसी बातेँ कैसे अच्छी लगीँ? सौँचे० = अपने प्रेम के रंग से युक्त मेरे अंगोँ को काम के हवाले करके। अंतर = हृदय। बै = बोकर। निगोड़े = स्त्रियोँ की गाली; (नि + गोड़) जिन्हेँ पैर न हो। गौहन = साथ। बिजै = हृदय पर विजय प्राप्त करके, हृदय को वश मेँ करके। पीर-भीर = पीड़ा की भीड़,

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निवरैं न मैन-आरतैं ।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-भोयो बिषम बियोग-सर मारतैं ।
दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं यौंऽब द्वार तैं ।
जीवन-अधार घनआनँद उदार महा,
कैसें अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ॥३२॥
चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैं बिष सम अमी है ।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचारनि ही जोति-जाल तमी है ।

वेदना की राशि । हेली = खेल करनेवाले, खिलाड़ी, क्रीड़ाशील [अथवा हे अली, हे सखी] । मनभावन = मन को भानेवाले, प्रिय ।

[३२] रोम रोम० = यदि प्रत्येक रोम जीभ होकर वाणी का गुण पा ले, रोएँ रोएँ में बोलने की शक्ति आ जाय । तऊ = तो भी । निवरैं न = चुक नहीं सकतीं । मैन-आरतैं = काम की लालसा । दिनदीन = दिनदिन दीन, सदा दीन । बिष-भोयो = विष में भींगा या बुझा हुआ । मारतैं = मारते हुए । दरस० = दर्शनरूपी सुरस (मीठे जल) की प्यास के कारण, उसे बुझाने के विचार से । भाँवरे० = चक्कर काटता रहता हूँ । फेरियै० = इस प्रकार निराश करके मुझे अपने द्वार से क्यौं लौटाते हैं ? तैं = तू ने । विशेप— 'दिनदानी' की पद्धति पर 'दिनदीन' बनाया गया है ।

[३३] चुहल = विनोदी । चहुँ ओर = सर्वत्र । सूरे० = प्रतिज्ञा पूर्ण करने में जो पूरे वीर हैं । अमी = अमृत । जिन्हैं० = जिन्हें स्वाती का जल छोड़कर अमृत भी विष के समान है । भान० = भानु के उदित होने से । कंज = कमल । ता बिन = सूर्य के बिना । बिचारनि ही = उन बेचारों को । जोति-जाल = ज्योति का समूह । तमी = तमिस्रा, रात्रि । रमी = छाई हुई, बसी हुई । कहा० =

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोहि तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिँ,
कहा कछू चंदहिँ चकोरन की कमी है ॥ ३३ ॥

सवैया

जीवन हौ जिय की सब जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौँज सु नैसिक ही हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तैँ क्यौँ अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीत सु दीठि छिपैयै ।३४।

कवित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।
कहा कहौँ कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सुकस्यौ न उकस्यौ बनाव लखि जूरे को।
जाही जाही अंग पर्यौ ताही गरि गरि मर्यौ,
हर्यौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को।

चंद्रमा को चकोरोँ की क्या कमी? प्रिय के प्रेमी बहुत हैँ, पर प्रेमियोँ के लिए प्रिय तो एक ही है।

[३४] जीवन० = प्राणोँ के लिए भी प्राण, अत्यंत प्रिय। जतैयै = बतलाऊँ। सौँज = सामग्री। नैसिक = थोड़ा, जरा। पैयै = पाती हूँ। अरसैयै = आलस्य करते हो। हाय अनीत = यह कितना अन्याय है। सु = सो, वह। दीठि० = अब आँखेँ चुराते हो।

[३५] चोप = लालसा। चाह = इच्छा। चाव = उमंग। चाहत ही = (मुखचंद्र को) देखते ही। सुषमा० = सौंदर्यरूपी प्रकाश। सुधाधर = चंद्र। पूरे = पूर्ण। विधि = प्रकार की। बँधनि० = बंधान मैँ बँधा। सुकस्यौ = भली भाँति कस गया। न उकस्यौ = उकस न सका, निकल न सका। पर्यौ = गिरा, देखने मैँ लगा। गरि० = गल-गलकर चुक गया या गड़ा ही रह गया। बल हर्यौ = बल हर गया। बापुरे = बेचारे। अनंग० = काम की सेना से चूर चूर

अब बिन देखैं जान प्यारे यौं अनंदघन,
मेरो मन भँवै भट्ट ! पात है बघूरे को ॥ ३५ ॥

दोहा

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही ! जोहि ।
सो ही मोही सौं कठिन, क्यौं करि सोहो तोहि ॥ ३६ ॥

कवित्त

विष लै बिसारयौ तन, कै बिसासी आपचारयौ*,
जान्यौ हुतौ मन ! तैं सनेह कछु खेल सो ।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीके आहि, असह-उदेग-दुख सेल सो ।

किए गए (मन) का । भँवै = घूमता है । भट्ट = हे सखी । पात = पत्ता । बघूरा = बवंडर । पात है० = बवंडर में पड़े हुए पत्ते की भाँति उड़ा ही रहता है, स्थिर नहीं हो पाता ।

[३६] मोही = मोहित किया । मोह = प्रेम । जनाय कै = प्रकट करके । अहे = हे । जोहिं = (मेरी ओर प्रेमपूर्वक) देखकर । सो = वह (प्रेम प्रकट करनेवाला) । ही = हृदय । मोही० = मुझसे कठोर हो गया है । सोही = शोभा देती है । क्यौं करि० = यह (कठोरता) तुझे कैसे फबती है । इसमें यमक का चमत्कार दिखाया गया है—'मोही' और 'सोही' में ।

[३७] बिसारयो = भूल गए । विष० = विरह का विष प्राप्त करके तन की सुध-बुध भूल गए [अथवा बिसारयो = शरीर को विषाक्त कर दिया] । बिसासी = विश्वासघाती । कै = करके । आपचारयौ = मनमानी, स्वेच्छाचार । हुतौ = था । जान्यौ० = हे मन, तुमने प्रेम को क्या कोई खेल समझ रखा था ? ताकी = उस (विरह की आग) की । पजरिबो = जलना । नीके आहि = अच्छा हुआ, अच्छा मिला (व्यंग्य) । उदेग = उद्वेग । सेल = बाधा । असह० = असह्य उद्वेग का दुख बरछे के समान कष्ट देनेवाला है । पखेरू = पक्षी । औचक = अचानक । डेल० = ढेले के समान (जिसकी चोट

* आपचाह्यौ ।

गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
परयौ आय औचक वियोग वैरी डेल सो।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरैं रंक! मानि लीनौ मेल सो॥ ३७॥
सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह-गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसदिन डाँवाँडोल है।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह,
चाह के प्रवाह घेरयौ दारुन कलोल है।
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनंदघन,
तिनकी धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै।
आगें न विचारयौ अब पाछैं पछिताएँ कहा,
मान मेरे जियरा घनी को कैसो मोल है॥ ३८॥

खाकर सुखरूपी पक्षी उड़ गए)। रुचि = इच्छा। रुचि ही० = मनमानी करनेवालों के सम्राट् या शिरोमणि [अथवा रुचि = शोभा। रुचि ही = सौंदर्य के सम्राट्]। होत० = केवल उनके देखने से क्या होता है। रंक = दरिद्र। मेल = प्रेम। मानि० = तुम (उस देखने को ही) प्रेम करना समझ बैठे।

[३८] सुरझ = सुलझाव, सुलझने का उपाय। उरझि० = प्रेम की उलझन में पड़ जाने पर। गुरझनि = गाँठ। मुरझि = बेहोश होकर, शिथिल होकर। डाँवाँडोल = अस्थिर, चंचल। आह० = आह की गहराई की तो थाह ही नहीं मिलती, बहुत गहरी आहें भरनी पड़ती हैं। दैया = हे दैव। कठिन० = निर्वाह कर ले जाना कठिन जान पड़ता है [अथवा आह की = हियाव की, अपने मान की। आह की न० = प्रेम-नदी की थाह अपने मान की नहीं, उसे थहाना कठिन है, वह अथाह है। कठिन० = उसके पार जाना कठिन है]। चाह = प्रेम। कलोल = उछाल, तरंग। चाह के० = प्रेम के प्रवाह न उसके दारुण कल्लोल ने घेर लिया है, प्रेम की उत्ताल तरंगों में पड़ा हूँ। निधरक = निःशंक, बेखटके। गूढ़ गति = रहस्यभरी चाल, उनका भेद-भाव। मूढ़मति = मंदबुद्धि। तिनकी० = उनकी रहस्यमय गति का पता मुझ जैसे मंद या साधारण बुद्धिवाले को नहीं चल सकता। आगें = पहले (प्रेम करने

अंतर उद्वेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोइबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोइबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है ॥३९॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।

के पूर्व)। मान = समझ। जियरा = जी, मन। बनी = वणिक या वाणिज्य। मान मेरे० = हे मन, अब समझो कि (इस) वाणिज्य में कैसा मूल्य चुकाना पड़ा, सब कुछ देने पर भी सौदा नहीं मिला। (बनी को कैसो मोल है—मुहावरा)।

[३९] अंतर = हृदय में उद्वेग की जलन है। अटपटी = विलक्षण। भीजनि० = भींगना और जलना दोनों। खोया० = अपने आपमें खोकर, अपने आपमें लीन होते चले जाकर। चेटक = जादू, भ्रम। लहनि = लाभ। चेटक० = जादू का सा लाभ है, जादू करनेवाले जैसे नकली रुपए पैसे दिखाते हैं पर वह केवल दृष्टिभ्रम होता है वैसे ही मैं अपने आपमें खोकर केवल भ्रम ही प्राप्त करता हूँ [अथवा चेटक = क्रीत दास। चेटक० = क्रीत दास का सा लाभ है, अपने को खोकर दासता का लाभ होता है, अपनी सुध-बुध भूलकर उनकी दासता पाता हूँ]। पै = फिर भी, इतने पर भी। जान० = ऐसी दशा होने पर भ. प्रिय प्राणों में बसे हुए हैं। मूक० = गूँगे का सा कहना है, जैसे कहा वैसे न कहा अर्थात् विरह की विषम दशा पूर्णतया व्यक्त की ही नहीं जा सकती। जीवन० = इसमें प्राण के बिना ही जीना और मृत्यु के बिना ही मरण आ बना है। हाय० = न जाने प्रेमी के रहने का ढंग कैसा विलक्षण बनाया गया है (जिसमें बिना प्राण के जीना पड़ता है और बिना मृत्यु के मरना पड़ता है)।

है विपरीति महा घनआनँद अंबर तेँ धर कौँ झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीँ सु नई अगिलाई ॥४०॥

कवित्त

नैनन मैँ लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोटपोट है।
रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा,
घूमै मति गति-आसैँ, प्यास की न टोट है।

---

[४०] वियोग मेँ संयोग-काल की उद्दीपक प्रकृति दुःखोद्बोधक हो जाती है। यहाँ चाँदनी से प्रेमी को जो व्यथा हो रही है वह उसी का वर्णन कर रहा है। नेहनिधान = प्रेम के आधार। सीँचति ही = सीँचती थी। हियरा० = हृदय शीतल करती थी। सीँचति० = अपनी शीतलता से सीँचकर हृदय ठंढा करती थी। सोई० = यह चाँदनी वही है या बदल गई है। दई० = हे दैव, इसे देखते ही बुद्धि खो जाती है। विपरीति = उलटी बात। अंबर = आकाश। धर = पृथ्वी। झर = ज्वाला। है विपरीति० = सबसे विलक्षण बात तो यह है कि आकाश से पृथ्वी की ओर ज्वाला आ रही है (ज्वाला नीचे से ऊपर की ओर जाती है, पर यह ऊपर से नीचे की ओर फैलती है)। अनंग = काम की आँच से, कामवेदना से। जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी। नई अगिलाई = नए प्रकार का अग्निदाह।

[४१] इसमेँ कटाक्ष-पात की बाण-निपात से विलक्षणता दिखाई गई है। नैनन० = कटाक्ष के बाण लगते तो हैं नेत्रोँ मेँ पर जाकर कसकते हैँ कलेजे मेँ (असंगति)। या बस० = (बाणोँ का प्रहार तो धीर सह लेते हैं पर) कटाक्ष की चोट से धीर लोग भी लोटपोट हो जाते हैँ (सामान्य व्यक्तियोँ की तो चर्चा ही व्यर्थ है)। रोम० = (बाणोँ से पीड़ा वहीँ होती है जहाँ वे धँसते हैं, पर कटाक्ष की) पीड़ा रोएँ रोएँ मेँ समा जाती है और सारा शरीर अत्यंत व्याकुल हो जाता है। घूमै० = बुद्धि गति (मार्ग पाने) की आशा मेँ चक्कर खाने लगती है। टोट० = कमी। प्यास की० = (बाण की चोट मेँ प्यास पानी पाकर कम पड़ जाती है) पर इसके प्रहार से तो प्यास की कमी होती ही नहीँ।

चलत सजीवन-सुजान-दृग-हाथन तैं,
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है।
जब जब आवै तब तब अति मन भावै
अहा कहा विषम कटाछ-सर-चोट है ॥४१॥
पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब
आवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।

सजीवन = जलानेवाले। दृग-हाथन० = नेत्ररूपी हाथों से। चलत० = ये सुजान प्रिय के दृगरूपी हाथों द्वारा छोड़े जाते हैं। अनियारी = तीखी, चुभनेवाली। रुचि = कांति, शोभा। रखवारी० = रक्षा करनेवाली आड़, ढाल या कवच। कांति की ओट लेकर ये वाण चलाए जाते हैं। जब जब० = (अन्य वाण अपनी ओर आते अच्छे नहीं लगते पर ये) जब जब आते हैं तब तब मन को अत्यंत प्रिय लगते हैं। अहा = आश्चर्यव्यंजक शब्द। कहा = क्या ही। विषम = विलक्षण। कटाछ० = कटाक्षरूपी वाणों का प्रहार।

[४२] पाती-मधि = पत्र में। छाती-छत = छाती में लगे हुए घाव। छत = (क्षत) घाव। लिखि० = न तो स्वयं लिखे जा सकते हैं और न दूसरे से ही लिखाए जा सकते हैं (असंख्य और अकथनीय हैं)। काती = छुरी। बिरह घाती = इस घातक विरह ने। बहकि = लिखना छोड़कर। तहीं = त्यों ही। पाँगुरी = पंगु। किलकि = चिल्लाकर। आँगुरी० = यदि पत्र लिखने का उपक्रम किया जाता है तो (विरह-दशा के ताप से) उँगली लिखना छोड़कर कहाँ की कहाँ जा पड़ती है और चिल्लाकर लँगड़ी हो जाती है, चलती ही नहीं। ताती = तप्त, गरम। राती = लाल; अनुरागमय। दसा = दशा, अवस्था (विरह की); बत्ती। ताती राती० = (क्योंकि) संतप्त विरह-दशा के समूह को ज्वाला का समूह ही समझना चाहिए (जो उँगलियों को जलाने लगता है)। जौऽब = जो + अब। तौऽब = तो + अब। जौऽब० = पत्र लिखने में तो ऐसी दुर्दशा है।

नेह-भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं ॥ ४२ ॥

सवैया

कंत रमैं उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुख-रासि निरंतर।
दंत रहैं गहें आँगुरी, ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनँद रैनि-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन-राति, बखाने तें जाय परै दिन-राति को अंतर ॥४३॥

यदि यह कहो कि (पत्र मत लिखो) संदेश ही भेज दो, तो सुननेवाला संदेश सुनते समय यदि अपने कानों को आँखों की भाँति बना ले तब कहीं सुन सकता है। नेह = प्रेम; चिकना, तेल। बातैं = (वार्ता, संदेश की) वचन; बत्तियाँ। रसना = जीभ। उर-आँच = उर में छिपी हुई विरह की आँच। जागैं = जल उठती हैं। नेह-भीजी० = (संदेश सुननेवाले की तो वह दशा है, अब सुनानेवाले की भी दशा सुनिए) स्नेह से भीगी हुई बातें (वचन और बत्तियाँ) ज्यों ही जिह्वा पर लाई जाती हैं हृदय के भीतर से विरहाग्नि की ऐसी लपट उनमें लगती है कि वे (बातें) मसालों की भाँति जल उठती हैं (कहें भी तो कैसे कहें)।

[४३] कंत = कांत, प्रिय। कंत रमैं० = यदि यह कहा जाय कि प्रिय तो हृदय के भीतर ही बसा है फिर भी तू सतत सुख की राशि क्यों नहीं पाती (तो उसका उत्तर यह है कि)। दंत० = दाँतों तले उँगली दबाए रहते हैं। ते = वे (लोग)। जु = जो (लोग)। तेह = आँच। तचे = पके। परतंतर = परतंत्र (होकर)। दंत...परतंतर = वे लोग भी जो प्रेम की वश्यता स्वीकार करके वियोग की आँच में पक चुके हैं (मेरी भीषण विरह-ज्वाला देखकर आश्चर्य के मारे) दाँतों तले उँगली दबाते हैं। रैनि-दिना = रात-दिन। सुतंतर = स्वतंत्र, स्वच्छंद मनोवृत्तिवाले ('जान' का विशेषण)। जानैं - जैसा दुःख मैं दिनरात सहती रहती हूँ उसे वे दिन और रात ही समझ सकते हैं (और कोई नहीं)। जाय परै = जा पड़ता है, हो जाता है। बखानें तें = यदि उस दुःख को कहती हूँ तो दिन और रात का सा अंतर पड़ जाता है। उसके अनुभव की स्थिति और कथित स्थिति में बहुत अंतर पड़ जाता है। विरह-वेदना अनुभवगम्य ही है, वह कही नहीं जा सकती।

चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद स्वाति पपीहा कौं धावै।
त्यौं त्रसरैनि के ऐन वसै रवि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसौं तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि! नेह निवाहिबो यौं छवि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुवेर सु रंकहि लै निज अंक वसावै॥४४॥

ज्यौं वुधि सौं सुघराई रचै कोऊ, सारदा कौं कविताई सिखावै।
मूरतिवंत महालछमी-उर पोत-हरा रचि लै पहिरावै।
रागवधू- चित-चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिँ गावै।
त्यौं ही सुजान तियै घनआनँद मो-जिय-वौरई-रीति रिझावै॥४५॥

---

[४४] चाह करै = प्रेम करे, प्रेम करने के लिए उसके पास आए। पपीहा कौं = पपीहे के लिए, पपीहे के पास दौड़े। त्रसरैनि = त्रसरेणु, छेद में से होकर आती धूप में चमकनेवाला कण (सबसे छोटे को परमाणु कहते हैं। उससे बड़े को अणु। अणु से बड़े को त्रसरेणु कहते हैं। पुराणों में सूर्य की एक पत्नी का नाम त्रसरेणु भी कहा गया है)। ऐन = अयन, घर। मीन पै = मछली के पास। दीन ह्वै = विनम्र बनकर, प्रेम की कोमलता से युक्त होकर। नेह० = प्रेम का निवाहना, प्रेम करना। यौं छवि० = ऐसी शोभा पा सकता है, ऐसी ही विलक्षणता से उसकी उपमा दी जा सकती है। अपनी रुचि० = अपनी इच्छा से, अपने आप। रुचि० = अनुरक्त होकर। सु = वह (कुवेर)। रंक = दरिद्र। अंक वसावै = गोद में विठा ले।

[४५] वुद्धि = वुद्धि से, वुद्धि की अधिष्ठात्री देवी से। सुघराई = चतुरता। सुघराई रचै = चतुरता की वातें वघारे। सारदा = शारदा, सरस्वती। कविताई = कविता करना। मूरतिवंत = मूर्तिमती। उर = अर्थात् गले में। पोत = काँच की गुरियाँ। हरा = हार, माला। रागवधू = रागिनी। हित = लिए। सोधि = शोध करके, विचारपूर्वक। सुधारि कै = ठीक करके, वनाकर, भली भाँति। तान = आलाप। तियै = स्त्री को, प्रेमिका को। मो जिय = मेरे मन की। वौरई० = पागलपने की रीति। त्यौं ही० = उसी प्रकार सुजान को मेरे मन की पागलपने की रीति रिझा लेना चाहती है। मैं अपने पगलेपन से ऐसी सुजान (सज्ञान) को वश में करना चाहता हूँ।

कवित्त

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै विचारि पचि हारि रहै,
कहै कैसें अकह, उदेग रूँधि कै मरौं।
हाय कौन वेदनि विरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी विधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचंभे सौं जरौं भरौं ॥४६॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं विरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रीझि भिजाय कै हाय इतै पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनँद धीर धरैं बिन पाँख निगोड़ी मरैं अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥४७॥

[४६] आरति = दुःख। जारति = जलाती है। उजारति = उजाड़े डालती है। मारति० = मरोड़कर जी को मारे डालती है। कहा = क्या। रसना = जीभ। पचि = परेशान होकर। हारि० = थक जाती है, हार मान बैठती है। कैसें = किस प्रकार से। अकह = अकथ्य, न कही जा सकने योग्य। उदेग = उद्वेग, घबराहट। रूँधि कै० = (उद्वेग से) घिरकर भीतर ही भीतर मरी जाती हूँ। वेदनि = वेदना, पीड़ा। विरंचि = ब्रह्मा। मेरे० = मेरे हिस्से में डाली। निघटि० = चुक क्यों नहीं जाती। ऐसी० = इस प्रकार (अत्यधिक) मैं गल रही हूँ। निघटि...गरौं = इस प्रकार (कष्ट सहकर) गलती जा रही हूँ, क्यों नहीं एकबारगी ही चुक जाती। सीरी = ठंढी। भरौं = दिन काट रही हूँ। सीरी...भरौं = सोच के मारे ठंढी पड़कर। अचंभे० = आश्चर्य से जलती हूँ। भरौं० = इस प्रकार मैं दुःख की विषमता में पड़ी हुई दिन काट रही हूँ।

[४७] सकेलि = एकत्र करके। धौं = न जाने। आन = अन्य, विलक्षण, बुरी। घरी = घड़ी। विरंचि = ब्रह्मा। रूप० = छवि का लोभ करनेवाली।

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत।
देखैं कहा ? सपनो हूँ न देखत, नैन यौं रैनि-दिना झर लावत।
जौ कहूँ जान लखैं घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन वियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैं आगेई देखन धावत ॥४८॥

कवित्त

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिंधे,
इते हू पै बिषम बिषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तैं हटैं न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरे भए हैं दबि कूबरे।

रीझ० = प्रेम में भिंगोकर। इते पै = इतने पर, इसके अनंतर। सुजान० = सुजान की आँखों से जा मिलीं। पाँख = पक्ष, डैने। निगोड़ी = (गाली) दुष्ट, अभागी। प्यास० = प्यास से भरी हुई भी (आँसू) बरसती हैं (विरोध)। तरसैं = कलपती हैं। दुखहाई = दुःख की मारी।

[४८] साधनि ही० = देखने की उत्कट इच्छा से मरती ही रहती हूँ। भरियैं = दिन काटती हूँ। बाधनि० = बाधाओं के। गुन = सामान। अपराधनि० = अपराधों की सी बाधाओं का जाल फैलाते हुए अर्थात् सामने आने पर ये आँसू अपराध ही बनकर उनको देखने में बाधा डालते हैं। देखैं कहा = (उनके बिना) प्रत्यक्ष तो देखूँ ही क्या, उनका स्वप्न भी नहीं देखती, स्वप्न देखने में भी आँसू बाधा देते हैं। रैनि-दिना = रात-दिन। झर = झड़ी (आँसू की)। तौ तन० = (यदि प्रिय कहीं जाते दिखाई पड़ते हैं) तो शरीर बेचारा उनसे भेंटने का थोड़ा भी अवसर नहीं पाता (आँसू ही पहले दौड़ पड़ते हैं)। वियोग = विरह का दुःख। कौन० = न जाने कितने अधिक वियोग के दुःख से ये आँसू भरे रहते हैं। सँयोग० = उनके संयोग में (मिलने पर) आँखों से भी पहले ही दौड़ पड़ते हैं (न इनके मारे दृष्टि से उन्हें देख पाती हूँ और न शरीर ही उन्हें भेंट पाता है, इस प्रकार संयोग में भी वियोग ही बना रहता है)।

[४९] ससकत = सिसकते हैं, वेदना से कराहते हैं। नैन० = नेत्ररूपी बाणों से विद्ध (प्रेमी)। जुर = ज्वर। इते हू० = इतने पर भी विषम विपाद का ज्वर लू की भाँति जलता रहता है। सूरे० = प्रतिज्ञा पूर्ण करने में वीर।

संकट-समूह में विचारे घिरे घुटैं सदा,
जानी न परत जान! कैसैं प्रान ऊबरे।
नेही दुखियानि की यहै गति अनंदघन,
चिंता-मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे ॥ ४९ ॥

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे! भलैं ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरैं अनंदघन,
कितहू उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥ ५० ॥

हेत-खेत = प्रेमरूपी क्षेत्र (रणक्षेत्र)। हटैं न = टलते नहीं। कहूँ = कभी। बापुरे = बेचारे। दवि = (प्रेम के बोझ से) दबकर। कूबरे = कुबड़े हो गए। कमर टूट गई है, अंग-भंग हो गया है। घुटैं = दम घुटता रहता है। कैसैं = किस प्रकार। ऊबरे = बच जाते हैं। गति = दशा। न्याय० = (प्रेमियों का) दुबला रहना ठीक ही है।

[५०] तित = वहाँ। हित-फंदनि = प्रेम के फंदों में। गसत० = डालते हो। सुखनि० = जहाँ आप नित्य नए नए प्रेम के फंदों में लोगों को फँसाते रहते हैं वहाँ तो आप अनेक प्रकार के सुखों का साज सजकर सदा आनंद ही आनंद मनाया करते हैं। दुःख-तम० = दुःखरूपी अंधकार का समूह चकोरों के पास भेज दिया है। सुधाधर = चंद्रमा (के समान)। भलैं ही = भली भाँति, क्या ही अच्छे। जीव···घन = हे आनंदघन, आपकी चाल का ध्यान करके हृदय सोच के मारे सूख जाता है। उघरि = उचटकर। घुरि कै = घुलकर। रसत० = रस बरसाते हो। कितहू० = कहीं तो (आप) उचटकर और कहीं घुल-घुलकर रस बरसाया करते हैं। उजरनि० = हमारी आँखों में तो उजड़न बसी हुई है (हमारी आँखें उदास, मलिन रहती हैं)। सुबस = भली भाँति बसा हुआ। भावते = (भानेवाले) प्रिय। सुबस···बसत हौ =

तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझेँ सैननि ही उत्तर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसेँ राखियै कलंकी मुख,
अनलेखेँ कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी वैसि,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदायँ आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै॥ ५१॥

सवैया

अकुलानि के पानि परयौ दिनराति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिकु क्यौं ठहरै।

जहाँ आप जा बसे हैं वहाँ सुदेश (सुंदर बस्ती) भली भाँति बसा हुआ है। 'उजरनि बसी है' में विरोध है।

[५१] तपति० = साँसें (विरह-ताप) से तप्त हो रही हैं। औधि० = अवधि की आशा में कब तक प्राणों को घेरे रहूँ, कब तक धैर्य धारण करूँ। रूँधना = पेड़ों को रक्षा के लिए काँटेदार झाड़ी से घेरना। दैया = खेदव्यंजक अव्यय। बात० = (किसी के पूछने पर कि तुम्हारी यह क्या दशा है) मैं संकेतों से कब तक लोगों को उत्तर देती रहूँ। उचारियै = कहूँ। उड़ि० = रंग उड़ने लगा है, विवर्ण हो गई हूँ। कैसेँ = किस प्रकार से। राखियै = बचाऊँ, छिपाऊँ। अनलेखेँ = बेहिसाब (बहुत दिनों तक)। अनलेखेँ० = (अपना कलंकी मुख) कब तक इस प्रकार घूँघट में छिपाए रखूँ। छार = राख, भस्म। वैसि = वयस्, उम्र। जरि बरि० = चाहे यौवन की ऐसी उम्र जल-बलकर भस्म ही क्यों न हो जाय। चित-चढ़ी० = चित्त में बसी हुई आपकी मूर्ति कैसे हटाऊँ। कुदायँ = कुदाँव में, बुरे अवसर पर। रावरी० = यदि आपका वश चले तो। बसाय = मुझे एक बार बसाकर अब (इस प्रकार) उजाड़िए मत।

[५२] पानि० = हाथों में पड़ा हुआ। अकुलानि० = व्याकुलता के हाथों में पड़ा हुआ, व्याकुलता के कारण। ज्यौ = जी, मन। छिनकौ = क्षण भर के लिए भी। कहूँ = कहीं भी। न बहरै० = बहलता नहीं। फिरबोई० = फिरता

भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी! बिरहा-विष की लहरै ॥५२॥

कवित्त

राति-द्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या वियोग बजमारे की।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछु न बसाति यौं उपाय-बल-हारे की।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की।
हेत-खेत धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो, तब,
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ॥ ५३ ॥

ही रहता है, चंचल ही बना रहता है। चेटक = उपकार से दबा, कनौड़ा। चाक० = कुम्हार के चाक की तरह। धीरज को० = धैर्य की स्थिरता कैसे ठहरे, स्थिर होकर धैर्य कैसे टिके। ठिक ठेहरना = ठिकाने लगना, स्थिर होना। भए० = प्रेम की गहरी नदी में पड़कर सारे उपाय कागद की नाव की तरह गल गए (उपाय व्यर्थ हुए)। सजीवन = जिलानेवाले। हरै० = दूर करे। बिरहा० = विरहरूपी विष की लहरें (घातक प्रभाव)।

[५३] द्यौस = दिवस, दिन। कटक = सेना। गति = दशा, चाल। बजमारा = (स्त्रियों की गाली) वज्र का मारा हुआ, नष्ट। राति⋯बजमारे की = इस वज्रमारे वियोग की गति क्या बतलाऊँ, यह तो रातदिन सेना सजाए हुए मुझे दुःख में जलाता ही रहता है। औचक = अचानक। अकेलो० = अकेला करके। लियो घेरि० = इसने बेचारे प्राण को सबसे पृथक् करके अचानक आक्रमण द्वारा घेर लिया। न बसाति = वश नहीं चलता। यौं = इस प्रकार। उपाय० = उपाय और बल से हारे हुए (प्राण की), जिसका कोई उपाय और बल काम न आता हो। लागौ० = यदि आप इसकी गुहार न लगेंगे, इसकी पुकार सुनकर इसे बचाने को दौड़ न पड़ेंगे। जुहार० = सहायता के लिए चिल्ला-कर। जूझिहै = कट मरेगा। निकसि = निकलकर, मैदान में निकल आकर। टेक० = प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की टेक का निर्वाह करते हुए। हेत० = (जब)

जान प्यारी ! हौँ तौ अपराधनि सौँ पूरन हौँ,
कहा कहौँ ऐसी गति, आवत गरौ रुक्यौ ।
साध मारै सुधा तौ सुभाय के मिठासै, ताकी,
आसा लै दहति, भै चरन-कंज सौँ दुक्यौ ।
इते पै जौ रोप कै रसीली हियौ पोढ़्यौ करौँ,
तौ न कहूँ गौर* जी कौ, वेहू झगरौ चुक्यौ ।
ऐसैँ सोच-आँचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हा हा जात ज्यौं फुक्यौ ।५४।

सुधा तेँ स्रवत विष, फूल मैँ जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है ।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपदि विपति पारै, बड़ी विपरीति है ।

प्रेम के क्षेत्र की धूल मेँ अपने को चूर चूर करके मिल जायगा । तिहारे की =' आपके (किए) की ।

[५४] पूरन हौँ = पूर्ण हूँ । आवत० = कहते हुए गला भी रुक जाता है । सुभाय० = स्वाभाविक, सहज । साध० = आपकी साध की स्वाभाविक मिठास-रूपी सुधा ही मारे डाल रही है । आशा० = यदि इस प्रकार मारने के संताप के भय से आपके चरण-कमलोँ मेँ (शीतलता प्राप्त करने के लिए) जा छिपूँ तो उसकी आशा ही जलाए डालती है । रोप = जोश, हिम्मत । पोढ़्यौ = दृढ़ । इते पै० = इतने पर भी यदि हिम्मत करके हृदय को कठोर करूँ (आपके चरणोँ की आशा छोड़ूँ) । तौ न० = तो हृदय के लिए कोई दूसरा आश्रय ही नहीँ है । अतः आश्रय का झगड़ा भी मिटा । ऐसैँ० = इस प्रकार सोच की आँच मेँ । लपट० = भीतर ही भीतर हृदय फुँका जा रहा है, बाहर लपट भी नहीँ निकल पाती ।

[५५] स्रवत = टपकता है । जमत = निकलते हैँ । सूल = काँटे । तम० = अंधकार करता है । जल० = जल से अंग जलता है । सुरभंग = स्वर-भंग । राग० = राग गाने से गला बिगड़ता है । पारै = डालती है । गहै० =

* ठौर ।

महागुन गहै दोषै, औषद हू रोग पोषै,
ऐसे जान ! रस माँहि बिरस अनीति है।
दिनन को फेर मोहिं, तुम मन फेरि डारयौ
अहो घनआनँद ! न जानौं कैसी बीतिहै ॥ ५५ ॥
गरल गुमान की गरावनि दसा को पान
करि करि, द्यौस-रैनि प्रान घट घोटिबो।
हेत-खेत-धूरि चूरि चूरि साँस, पाँव राखि,
बिष-समुदेग-बान-आगैं उर ओटिबो।
जान प्यारे जौ न मन आनैं तौ अनंदघन
भूलि तू न सुमिरि परेखैं चख चोटिबो।

दोष को ग्रहण करता है। पोषै० = पुष्ट करती, बढ़ाती है। ऐसें = ठीक इसी प्रकार (से)। रस० = आपके रस में विसरता की अनीति भी है, प्रेम से आपका उदासीन होना भी ऐसी ही उलटी बात है। दिननि० = मेरे तो दिनों का फेर है ही। तुम० = आपने भी अपना मन मेरी ओर से फेर लिया है। न जानौं० = आप यह नहीं सोचते हैं कि इससे मुझपर क्या बीतेगी।

[५६] गुमान = अभिमान। गरावनि = गलानेवाली। गरल० = गुमान को गला देनेवाली दशा के विष को पी पीकर (विरह की दुःख-दशा वह विष है जो सारा गुमान गला देता है। ऐसे दुःख को भी सहता हूँ)। प्राण० = प्राण शरीर में ही घुटते रहते हैं, दम घुटता रहता है। हेत० = प्रेम के क्षेत्र की धूल में। चूरि० = अपनी साँसों को चूर चूर करके (और धूल में मिलाकर)। पाँव० = पैर जमाकर, डटकर। समुदेग = समुद्वेग, व्याकुलता। बिष = व्याकुलता के विषैले बाण। आगैं = सामने। ओटिबो = सहने के लिए आगे करना। उर० = छाती पर रोकना, सहना। न मन० = मन में नहीं ले आते। तेरी ओर नहीं झुकते। भूलि = भूलकर भी। न सुमिरि = स्मरण न कर। परेखैं = पछतावे को। चख चोटिबो = कटाक्ष से घायल होना। भूलि तू० = तू उनके कटाक्ष से घायल होने के पछतावे का स्मरण भूलकर भी मत कर। तिन्हैं० = उनकी छाती तो इस प्रकार (लोगों को अपने कटाक्ष से घायल करने में ही) ठंढी पड़ती है। ताती = तप्त, संताप देनेवाली। तोहि० = तुझे इससे

तिन्हैं यौं सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटैं आयौ है अँगारनि पै लोटिबो ॥५६॥

विकल विषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनि हूँ लहकि बहकि यौं जरयौ करै।
जीवन-अधार-पन-पूरित पुकारनि सौं
आरत पपीहा निति कूकनि करयौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडरयौ सो बन-बीथिनि ररयौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जान प्यारी! तेरे
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै ॥ ५७ ॥

सवैया

सोएँ न सोयबो, जागें न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।
देखत फूल पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।

संताप होता है। बाँटैं = हिस्से में। तेरे० = तेरे हिस्से में अंगारों पर लोटना ही आया है। तुझे कष्ट सहना ही बदा है।

[५७] विरह-निवेदन। सखी या दूती का वचन नायिका से। विकल० = विषाद में भरकर व्याकुल हुए उस विरही की ओर देखकर (उसके विषाद की ज्वाला से संतप्त होकर)। दामिनि० = बिजली। लहकि = चमककर। बहकि = (व्याकुलता के कारण) इधर उधर होकर। दामिनि हूँ० = बिजली भी उस विरही के विषाद की ज्वाला से जलकर चमका करती है। जीवन० = प्रिय। जीवन-अधार० = प्रिय के लिए प्रेम की प्रतिज्ञा से पूर्ण उसकी पुकारों को ही (ग्रहण करके)। आरत = आर्त, दुखी (होकर)। कूक = पुकार, चिल्लाहट। अथिर = अस्थिर, चंचल। अथिर० = व्याकुलता से उसकी अस्थिर दशा देखकर ही। बिडरयौ० = नष्ट होकर, दुःख का मारा होकर। बीथिन = गलियों में, मार्ग में। ररयौ० = रटता रहता है, हू हू शब्द करता रहता है। बूँदैं = ये बूँदें नहीं हैं। मेरे जान = मेरे विचार से।

[५८] सोएँ न० = सोने पर न तो सोते बनता है और न जागने पर जागते ही। लाग = लगन (प्रेम)। फूल = प्रफुल्लता, प्रसन्नता।

चेटक जान-सजीवनि-मूरति रूप-अनूप महारस-पागी।
कौन वियोग-दसा घनआनँद, मो मति-संग रहै अति खागी ॥५८॥

मरियौ विसराम गनै वह तौ यह वापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै, चितवै, वरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी वावरी ह्वै थरसै।
विछुरे मिलें मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौं परसै॥५९

देखत० = प्रिय को जब तक देखती रहती हूँ तब तक इन्हें आनंद मिलता है। सूल = काँटा, खिन्नता। पै भूल० = जब इन्हें (ये आँखें) नहीं देखतीं तो चित्त में नित्य ही भूल का विचार करके खिन्नता छाई रहती है। चेटक = जादू-भरी, मायाविनी। जान० = प्रिय की जीवनदायिनी मूर्ति। महा० = अत्यंत रस में पगी हुई, रसीली। कौन = कैसी, विलक्षण। खागी = खगी हुई, मिली हुई। मो मति० = कैसा विलक्षण वियोग है कि मेरी मति में वह (प्रिय की मूर्ति) मिली रहती है (बराबर उसी का ध्यान बना रहता है)-फिर भी वियोग का दुःख सहना पड़ता है।

[५९] वियोगी मीन और पतंग से अपनी विरह-दशा को अधिक कष्टदायक दिखा रहा है। विसराम = विश्राम, शांति (कष्टों का अंत)। वह = मीन। यह = मेरा मन। वापुरो = वेचारा। मीन० = प्रिय द्वारा त्यक्त, वियुक्त। तरसै = कलपता है। वह = पतंग। रूप० = (दीप के) सौंदर्य की शोभा। न सहारि० = सह नहीं सकता (मर जाता है)। यह = मेरा मन। तेज० = प्रिय की अंगदीप्ति से (उसे देखकर) तपता रहता है, टकटकी लगाकर देखता है और आँखों से आँसू भी वरसाता है ('तपना' और 'आँसू वरसाना'—विरोध)। आवरी = व्याकुल। वावरी = पगली। थरसै = त्रस्त होती है। विछुरें = वियुक्त होने पर (मीन)। मिलें = मिलने पर (पतंग)। मो जिय० = मेरे मन की दशा को छू भी नहीं सकती (वियोग में मछली की और संयोग में पतंग की जो दशाएँ होती हैं वे मेरी दोनों दशाओं के लेशमात्र को भी नहीं पहुँचतीं)। इसमें यथासंख्य अलंकार है। मीन और पतंग के संबंध की बातें क्रम से रखी गई हैं।

कवित्त

तेरे देखिबे कों सब ही त्यौं अनदेखी करी,
तू हू जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही सौं लगाव मोही,
सोही!कहि कैसें ऐसी निठुराई अति रे।
विष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान!
जीवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यौं,
हति कै हितूनि, कहौ काहू पाई पति रे? ॥६०॥
लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तो सौं,
जगी है बिकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़यौ सो डोलै हियरा धकयौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।

[६०] सब ही० = सबकी ओर देखना त्याग दिया। गति = दशा। सुनि = सुनो। मोही = मुझमें अर्थात् मेरा। लगाव = मेरा प्रेम। सोही० = कहो यह निष्ठुरता कैसे शोभा देती है। विष सी० = विष की कथाओं (लोगों द्वारा लगाए हुए अपवादों) को अमृत समझकर पी लिया (उन्हें सहा)। जीवन-निधान = प्राणों के अवलंब। ह्वै बिसासी = विश्वासघाती होकर। मारि० = मुझे मार मत डालो। भजै = चाहे, प्रेम करे। हति कै० = प्रेमियों को मारकर। पति = प्रतिष्ठा। कहौ० = कहो क्या किसी ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है? (नहीं)।

[६१] लगनि = प्रीति। सुरति = (स्मृति) ध्यान। पगी है० = तुम्हीं में स्मृति भी पगी है, तुम्हारा ही ध्यान करती हूँ। जगी० = व्याकुलता प्रचंड हो गई है। जियरा० = जी उड़ा उड़ा रहता है। हियरा० = छाती धड़कती रहती है। पियराई० = शरीर में (विरह से) पीलापन छाया है। सियराई० = ठंढी आग में जल रही हूँ, मंद मंद सुलगती हुई आग में जलती हूँ [मिलाइए—शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का—'प्रसाद'] ऊनो० = जीना व्यर्थ जान पड़ता है। दूनो० = जो दुःख सहती हूँ वह एक एक क्षण में

ऊनो भयौ जीवो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोइबो लहा लहौं ॥ ६१ ॥

कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।
क्यौं करि वितैयै, कैसैं कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तैं चूकियै।
वनी है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित लूकियै ॥ ६२ ॥

दूना होता जाता है। तेरे० = तेरे जी में तो (मेरी दशा का) कोई लेखा (विचार) ही नहीं है। परेखो = सोच, पछतावा। मोहिं० = मुझे यही भारी पछतावा (परेखा) मारे डाल रहा है। जान = सुजान। घनआनँद = घने आनंद-वाले। लहा = लाभ। लहौं = पाती हूँ। जान० = आनंददायक सुजान से मुझे खोने का ही लाभ मिलता है। उनके प्रेम में पड़कर सब कुछ खोती ही रहती हूँ।

[६२] सरन = शरण में जाऊँ। आपु त्यौं० = अपने समान किसी को पाती ही नहीं [अथवा मेरी दशा पर ध्यान देनेवाला कोई दिखाई ही नहीं देता]। सूनो० = सारा संसार सूना सा दिखाई देता है। दैया० = हाय कहाँ जाकर पुकार करूँ। सोचनि० = सोचों में गड़ी जा रही हूँ। मति० = बुद्धि के खोजने में मैं स्वयं खो जाती हूँ। ताप तैयै० = ताप से तपती रहती हूँ और शरीर सूखता जा रहा है। क्यौं करि० = कैसे दिन बिताऊँ। कैसैं० = किस प्रकार और न जाने कहाँ जाकर अपने मन को हलका करूँ। बिना जान० = बिना प्रिय को देखे मरते भी नहीं बनता। वनी है० = बड़ी कठिन स्थिति आ गई है। मोहिं = मेरे ऊपर। लूकियै = छिपाऊँ। मीचौ मरि० = मृत्यु भी मर गई है इसलिए अपने को छिपाने का आसरा-भरोसा भी जाता रहा। मृत्यु में मैं अपने को छिपा लेती, पर वह भी नहीं रही।

अधिक वधिक ते सुजान ! रीति रावरी है,
कपट-चुगो दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरहि न जियै, महा विषम दया-छुरी।
हौँ न जानौँ, कौन धौँ, है या मैँ सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौँ परति प्यारे अंतर-कथा दुरी।
कैसेँ आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक-निकाई घनआनँद नई जुरी ॥ ६३ ॥
मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
मीन-जल-कथा है कि या हू तेँ विसेखियै।

[६३] अधिक = बढ़कर। वधिक = बहेलिया, चिड़ीमार। रावरी = आपकी। चुगो = चारा। निपट = अत्यंत। फिरि० = इसके अनंतर अत्यंत बुरा (व्यवहार) करते हो। गुणनि = गुणों से; रस्सी या जाल से। निपाँख = पंख-हीन; पक्षरहित। गुननि० = अपने गुणरूपी जाल में पकड़कर फिर पक्ष से हीन करके छोड़ देते हो। बहेलिया या तो पकड़कर मार डालता है या पक्षहीन करके पास रख लेता है। आप न मारते ही हैं न पकड़कर पास ही रखते हैं। असहाय और बेकार करके छोड़ देते हैं। मरहि० = इसलिए (प्राणरूपी पक्षी न तो मरता ही है न जीता ही)। महा० = आपकी दया की छुरी बड़ी ही विषम (भयंकर और विलक्षण) है। आपने न मारकर जो दया दिखलाई वह मारने से भी अधिक कष्टकर है। हौँ = मैँ। कौन धौँ = कौन सी। हौँ न० = मुझे यही नहीं जान पड़ता कि इसमें आपके किस स्वार्थ की सिद्धि होती है ? लखी० = कैसे लक्षित हो सकती है। अंतर = हृदय में छिपी हुई गुप्त बात। आसा० = आशारूपी वृक्ष पर प्राणरूपी पक्षी कैसे बसा रह सकता है। बनक = रूप की सजावट; बन की वस्तु। बनक० = नई नई सुंदरता (पक्षियों के फँसाने का नया नया चारा) जुटाकर आपकी फँसाने की आदत है (अतः यह आशा कैसे करूँ कि जिस दशा में पड़ी हूँ इसमें पड़ी रह सकूँगी)।

[६४] तनकौ० = थोड़ी भी उमंग नहीं दिखाते। मीन० = मछली और जल की सी बात है (मछली जल के वियोग में मरती रहती है, पर जल

ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा ढरै,
भरौं हौं, न मरौं जान! हियेँ अवरेखियै।
पलकौ बिछोह-आगै, कलपौ अलप लागै,
बिलपौं सदाई, नेकु तलफनि देखियै।
सूनो जग हेरौं रे अमोही! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखैं लेखियै॥ ६४॥
मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
बैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते पै वसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तैं जु नयौ ना।

टस से मस भी नहीँ होता)। बिसेखियै = बढ़कर। ता = उस (जल)। सो = वह (मीन)। छूटि० = कष्टों से छूट जाता है। जड़० = वह जड़ जल उस (मीन) पर द्रवीभूत ही कब होता है। भरौं हौं = मैं दिन काटती हूँ। हियेँ० = अपने हृदय में विचार कीजिए। पल० = आपके क्षणभर के वियोग के सामने एक कल्प भी छोटा जान पड़ता है। बिलपौं = मैं निरंतर विलाप किया करती हूँ। नेकु० = जरा मेरी तड़पन तो देखिए। सूनो० = आपके बिना सारा संसार सूना दिखाई देता है। कहि० = कहो किसे पुकारूँ? ऐसी० = ऐसी रहन किस गिनती में गिनी जाय (ऐसा जीना व्यर्थ है)।

[६५] मुरझाने = शिथिल हो गए। रह्यौ० = शरीर की स्वाभाविक कांति कुछ भी नहीँ रह गई। सु = सो, वह। पीर पारै = पीड़ा देता है। जरि० = अभी तक काम भस्म हुआ कहाँ (शिव ने उसे भस्म किया, पर वह भस्म हुआ नहीँ, अब तक कष्ट दे रहा है)। इते० = इतने पर भी। कहूँ०—कहीँ किसी के सामने झुका नहीँ (भस्म होना तो दूर की बात है)। तीखे = चोखे। नए = नवीन। नीके = अच्छे (अच्छी मार करनेवाले)। जी के० = प्राणों के ग्राहक, प्राण ले लेनेवाले। सरनि० = बाण ले लेकर। बेधै० = यह कपूत (अपने पिता) मन को ही बेधा करता है (काम 'मनोज' कहलाता है, मन उसका पिता है)। पिता० = पिता की ममता भी इसमें नहीं। मोहमयौ = मोहयुक्त, ममता से

दीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
बेधै मन कौं कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन-गवन-संग प्राननि पठायहौं तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥ ६५ ॥

सवैया

निस-द्यौस खरी उर-माँझ अरी, छवि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि वाहनि की।
चट दै कटि पै वढ़ि* प्रान गए गति सौं मति मैं अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहिं कराहनि की ॥६६॥

युक्त। पवन० = उनकी ओर जानेवाली वायु के साथ अपने प्राणों को भी भेज दूँगी ('प्राण' का अर्थ 'वायु' भी है)। जान० = यदि घना आनंद देनेवाले प्रिय (सुजान) नहीं आए।

[६६] निस० = रात-दिन, निरंतर। खरी = उत्तम ('छवि' का विशेषण)। उर० = हृदय में अड़ी हुई है। रंग-भरी = दीप्ति से युक्त। मुरि० = (जाते समय) मुड़कर देखने की छवि। निस-द्यौस० = उन्होंने जाते समय जो मुड़कर मेरी ओर देखा उस मुद्रा की आनंददायिनी और उत्तम छटा हृदय में निरंतर समाई रहती है। तकि० = देखकर मुड़ना। त्यौं = वैसे ही। चख = नेत्र। ढोर रहे = पीछे हो लिए, साथ लगे। ढरि गौ = ढल गया। ढोरनि = ढर्रे पर। वाहनि = (नाली के) प्रवाह के (ढंग से)। तकि......वाहनि की = (जैसे उनके मुड़कर देखने की छटा हृदय में छाई है) वैसे ही देखकर जब वे मुड़े तो नेत्र उनके पीछे लगे (उन नेत्रों के रास्ते) हृदय उसी प्रकार (उनमें) ढलकर जा मिला जैसे नाली से पानी ढलकर निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच जाता है। चट = शीघ्रता। वढ़ि = प्रवाह में चढ़े, धारा में धँसे। दै० = कमर को शीघ्रता देकर, कमर को शीघ्रता से मोड़कर। गए = निकल गए। गति सौं = मुद्रा से। मति = मति में डूबने की। गति सौं० = मन में डूबने (कमर को फुरती से घुमाकर कूदने) की मुद्रा से प्राण निकल गए। जक = रट।

* वट।

किहि नेह विरोध बढ़्यौ सब सोँ, उर आवत कौन के लाज गई।
जिहि के भरि भार पहार दबै, जग-माँझ भई तिन तेँ हरई।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैं, मन-मानिक ही अनखानि ठई।
घनआनँद जान अजौँ नहिँ जानत, कैसे अनैसे हैँ हाय दई ॥६७॥
इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसेँ उराहनो दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैँ चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ॥६८॥
बधिकौ सुधि लेत, सुन्यौ, हति कै गति रावरी क्यौँहूँ न बूझि परै।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै।

घनआनँद० = घना आनंद देनेवाली नायिका को जब से इस मुद्रा में देखा है तभी से मैं कराह रहा हूँ।

[६७] किहि० = किसके प्रेम के कारण। उर० = हृदय में आने के कारण। जिहि० = जिसके भार (बोझ, गुरुत्व) से भरकर (युक्त होकर) पहाड़ भी दब जाते हैं। जिनकी महत्ता का विचार करके दुःखों या अपवादों (के पहाड़ों) को मैं कुछ नहीं गिनती। हरई = लघुता, हलकापन। जग० = संसार में उन्हीं के कारण मैं हलकी हो गई। काहि = किससे। जु = जो, कि। मन० = मनरूपी माणिक। अनखानि० = (मन) रूठ गया, चिढ़ाने की ठान ठान ली; अन + खानि, (माणिक) खान से पृथक् या बाहर हो गया। अजौँ = अब भी, इतने पर भी। नहिँ० = मेरी व्यथा नहीं समझते, मेरी ओर प्रवृत्त नहीं होते। अनैसे = अनिष्ट, बुरे, विलक्षण।

[६८] इत० = मेरे बाँटे तो आपकी सुध पड़ी है। रावरे० = आपके हिस्से में मेरा भूलना पड़ा है। कैसेँ० = उलाहना दूँ भी तो कैसे दूँ (जिसके बाँटे जो पड़ा वह उससे काम ले रहा है)। सीस० = (जो बाँटे पड़ा उसे) शिरोधार्य किया। मन० = जो मन में भाए, रुचे। तिहारियै० = मैं जीती हूँ तो बस आपकी चर्चा करके ही जीती हूँ। चाड़ = प्रबल इच्छा, उत्कंठा। नित० = आपको तो मेरी उत्कंठा है नहीं, पर मैं आपकी निरंतर मंगल-कामना करती हूँ।

घनआनँद यौँ अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै।
दिन-रैन सुजान-वियोग के वान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥६९॥

कवित्त

एरे वीर पौन! तेरो सवै ओर गौन, वीरी*
तो सौं और कौन, मनैं ढरकौंहीं वानि दै।
जगत के प्रान, ओछे वड़े सों समान घन-
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोहीं प्यारे,
अव ह्वै अमोही वैठे, पीठि पहचानि दै।
विरह-विथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हाहा! नेकु आनि दै ॥७०॥

[६९] वधिकौ० = सुना है वधिक भी मारकर मरे की सुध लेता है, पर आपकी चाल तो किसी प्रकार भी समझ में नहीँ आती। आवरी = व्याकुल। मति० = बुद्धि व्याकुल और बावली होकर स्तब्ध हो जाती है, उसे किसी प्रकार भी कोई उपाय नहीँ सूझता। मन० = मन मुरझा जाता है। यौँ अपनाय० = आपने जो इस प्रकार अपनाकर त्याग दिया, इसी सोच में मन शिथिल पड़ता जाता है। न जूझि० = जूझ नहीँ पड़ता, मर नहीँ जाता। दिन-रैन० = मेरा जी सुजान के वियोग-वाण सहता है, पर यह पापी मर नहीँ मिटता।

[७०] वीर = भाई। गौन = गमन। वीरी = वीड़ा उठानेवाला, किसी कार्य को संपन्न करने में उत्साह दिखानेवाला। मनै० = अपने मन को ढलनेवाली टेव सिखा, मन दूसरों पर द्रवीभूत कर। जगत० = तू संसार का प्राण ही है। ओछे० = छोटे और वड़े सवके लिए तू समान है, तू सव पर समान दृष्टि रखता है। घन० = घने आनंद के पात्र। सुखदान० = दुखियों को सुख का दान दे, उन्हेँ सुखी कर। उजियारे = कांतिमान्। गुन-भारे = भारी गुणी। अंत = अन्यत्र। पीठि० = एक वार पहचानकर फिर पीठ दे वैठे हैँ, परिचय करके विमुख हो गए हैँ [अथवा मेरी पहचान को ही पीठ दे वैठे हैँ, मेरे प्रेम

* वारी, वारि।

एकै आस एकै बिसवास प्रान गहैं बास,
और पहचानि इन्हैं रही काहू सौं न है।
चातिक लौं चाहै घनआनँद तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है।
नेह-निधि-प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसो तुम करौ तौ बिचारन कैं कौन है॥ ७१॥

सवैया

रंग लियौ अबलानि के अंग तैं, च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सौंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।

को ही भुला बैठे हैं]। बिरह० = विरह की पीड़ा को दूर करनेवाली संजीवनी बूटी। आँखिन० = आँखों में लगाऊँ। नेकु० = थोड़ी सी लाकर मुझे दे।

[७१] गहैं० = स्थान पाते हैं, ठहरे रह सकते हैं। और० = और किसी से तो इनकी कोई पहचान रह ही नहीं गई। आठौ० = अर्थात् दिनरात, निरंतर। बिसारि० = मौन रहना छोड़ दिया है। अनाकानी = मेरी पुकार सुनने में आनाकानी करना। घाय० = घाव पर नमक की भाँति कष्टदायक है। नेह = प्रेम; तेल। निधि = समुद्र। गुन-भारे = भारी गुणी। रूखे = उदास; रूक्ष। चिकनाहट से रहित। बिचारन० = इन बेचारे चातकों के लिए और कौन सहारा रह गया है।

[७२] इसमें विरह को फाग बतलाया गया है। रंग० = अबलाओं के शरीर से रंग लिया (वे विरह में विवर्ण हो गईं)। च्वाय = चुलाकर, टपकाकर। चोवा = चंदनादि सुगंधित पदार्थों को गरम करके भभके की विधि द्वारा उनसे जो विशिष्ट सुगंध द्रव्य निकाला जाता है उसे चोआ कहते हैं। च्वाय = उनके चित्त के चैन को (विरह की गरमी द्वारा) टपकाकर चोआ बनाया। सुख० = सुखरूपी सुगंधित द्रव्य। सौंधे = सुगंधित पदार्थ। सकेलि = एकत्र करके। ढोवा = ढुलाई, ढोने की क्रिया। मचाय० = आनंद की ढुलाई मचा दी, आनंद का पूरा साज-सामान किया। आनंद की और भी सामग्री

प्रान-अबीरहि फेंट भरे अति छाक्यौ फिरै, मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी! ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा॥७२॥

कवित्त

पीरी परि देह, छीनी राजति सनेह-भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिन-रैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करति होरा,
बिरह-अँगारनि मगारि हिय होरी सी॥ ७३॥
कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगिथै रहति है।

उसने खोजकर एकत्र की है। प्रान० = प्राणरूपी अबीर फेंट में भरे हुए, प्राणों को उड़ाने के लिए लेकर। अति० = अत्यंत नशे में चूर होकर (मतवाला बनकर) घूम रहा है। मति० = बुद्धि की गति खोकर; बुद्धि को त्याग कर। बिगोवा = सत्यानासी, बुरा।

[७३] छीनी = क्षीण। सनेह० = प्रेम से युक्त। कीनी है० = काम ने प्रत्येक अंग को रंग से डुबो देने की व्यवस्था की है। नैन० = नेत्र रातदिन आँसू गिराकर पिचकारी की भाँति चलते ही रहते हैं। बगराए० = विरहिणी जो बालों को छिटकाए घूमती है वह ऐसा प्रतीत होता है मानों होली में झकझोर दिए जाने से बाल छिटके हुए हैं। दुहेली = दुःखपूर्ण। निहारे बिन = बिना देखे। होरा = होला, आग की लपट में भूना हुआ अनाज का हरा पौदा। मगारि = आग जलाकर। बिरह० = विरह के अंगारों से हृदय में होली सी जलाकर।

[७४] एतो० = इतना पानी। राँचनि = पीलेपन की रंगत। हरद = हल्दी। केसू = (किंशुक) पलाश के फूल। गात० = शरीर में छाई रहती है। चाँचरि = चर्चरी राग, वसंत के गाने। चाँचरि० = वसंत के गाने का उत्साह

कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चहल चित्त लगियै रहति है।
तपति-बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियैं लगियै रहति है ॥ ७४ ॥

दसन-बसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।
साँसनि सुगंध सौंधे कोरिक समोय धरे,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै।
जान प्यारी ! तो तन अनँदघन-हित नित,
अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यौ करै।
इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो
मन फगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करै ॥ ७५ ॥

भी होली के अवसर पर ही होता है। चिंता = किंतु चिंता की चहल-पहल चित्त में सदा होती रहती है। तपति० = विरह की तपन बुझानेवाली।

[७५] दसन० = दाँत के वस्त्र, रदच्छद, होंठ। ओली = आँचल की झोली (में)। भरियै० = गुलाल भरा ही रहता है, ललाई छाई रहती है। हँसनि० = हँसने की छटा। सरस्यौ० = छाया रहता है, सुगंध फैलाता रहता है। साँसनि = (सुगंधित) साँसों द्वारा। सौंधे = सुगंधित द्रव्य। कोरिक = करोड़ों। समोय० = सुवासित कर रखे हैं। साँसनि······धरे = साँसों की सुगंध से करोड़ों द्रव्यों को सुवासित करके सुगंधित बना रखा है। अंग० = प्रत्येक अंग के सौंदर्य से रंग का रस बरसता है। प्रत्येक अंग के रंग (वर्ण) से होली का रंग बरसता रहता है। तो तन = तेरे शरीर में। हित = निमित्त। राग = ललाई; गाना। फाग = होली के गाने। अमित० = अत्यंत सौभाग्य ही फाग के राग की भाँति दिखाई पड़ता है [या अत्यंत सौभाग्य (मंगल-बिंदु) फाग की ललाई की भाँति छाया जान पड़ता है]। अरस्यौ० = आलस्य करती है, बाधा डालती है, खुलकर मिलने नहीं देती। फगुवा = होली के त्यौहार का उपहार। इते पै० = इतने पर भी

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, बहु भाँतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नैन हियैं हरि सूझि सम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ।
घनआनँद पै ब्रज-गोरिनि कौं नख तैं सिख लौं चरचाय रह्यौ।
लखि सूनो सकै कित, रावरो ह्वै, बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ॥७६॥

कवित्त

फागुन महीना की कही ना परैं बातैं दिन-
राते जैसें बीतत सुने ते डफ-घोर कौं।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जाय
हाय चित-बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप-चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं बियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं॥७७॥

तेरी लज्जा ऐसी बाधा डालती है कि प्रिय अपना मन होली के उपहार में देकर भी गाली तक के लिए लालायित रहता है, तेरी लज्जा—उससे और बातें करना तो दूर—होली की गाली भी नहीं देने देती। उसने तो मन दे डाला और तू दो गालियाँ भी नहीं देती।

[७६] चौचँद = बदनामी। चाँचरि = होली का राग। रंग = विनोद-तमाशे; रंग (लाल, पीला आदि)। भरि० = नेत्र और हृदय को भरकर, नेत्र को आँसू से, हृदय को व्यथा से। हरि० = सूझ (नेत्रों से) और सम्हाल या होश (हृदय से) हटकर। सबै० = सबको नाक के बल नचा रहा है। चरचाय० = (रंग या कीचड़) से सिर से पैर तक भर दिया है। लखि० = आपका होकर विरह सूना नहीं देख सकता, कुछ न कुछ खेल-तमाशे किया ही करता है।

[७७] कही० = कहीं नहीं जा सकतीं। सुने तैं० = डफ का गंभीर शब्द सुनकर। प्रान० = (तब) प्राणों में बाण से चुभने लगते हैं, तान से हृदय में पीड़ा होती है। चित० = (प्रिय) है तो चित्त ही में, पर उसे पाती नहीं। चुहल = विनोद। चोप० = चाँचर का उत्साह। बनमाली = श्रीकृष्ण; प्रिय।

सवैया

सोँधे की वास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि वैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को।
राग विराग धमार त्यौँ धार सी, लौटि परयौ ढँग यौँ सब ही को।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥७८॥

सुनि री सजनी! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौँ बितई।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।
अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई।
सु बिहाति न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई॥७९॥

मन जैसेँ कछु तुम्हैँ चाहत है सु बखानियै कैसेँ सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौँ लगियै नित लौ।

[७८] सोँधे० = सुगंधित पदार्थों की गंध। उसास = (उच्छ्वास) साँस। सोँधे की० = सुगंध से तो साँस ही रुक जाती है। गाहक = ग्राहक, लेनेवाला। नैननि० = गुलाल नेत्रोँ के लिए वैरी है, गुलाल देखकर नेत्रोँ को कष्ट होता है। अबीर० = अबीर का उड़ना देखकर हृदय का धैर्य जाता रहता है। राग० = (चर्चरी के) गान विराग (उदासी) उत्पन्न करनेवाले हो रहे हैँ। धमार = होली के गीत। धार = तलवार की धार सा दुःखद। लौटि० = सबका रंग-ढंग पलट गया है। रंग = आनंद; रंग। रंग० = रंग से रँगनेवाले।

[७९] बितई = (रात्रि) बिताई। लखि० = देख पड़ने पर। नई = विलक्षण। अभिलाषनि = अभिलाषोँ के कारण, उत्कंठा से। आतुरताई० = व्याकुलता, हड़बड़ी की। बिहात = बीतती हुई। बिसवासिनि = (रात के लिए विशेषण) विश्वासघातिनी। भ्रम सी० = रात्रि की प्रतीति नहीँ हुई, उसका भ्रम सा हुआ। कब ह्वै = कितने समय मेँ, किस क्षण।

[८०] बखानियै० = उसका किस प्रकार वर्णन करूँ। सुजान० = (क्योँकि) आप स्वतः चतुर हैँ (इसे समझ सकते हैँ)। गति० = आप ही इन प्राणोँ के लिए शरण हैँ। लौ = लगन, प्रेम। अंतर = मन। बुद्धि० = बुद्धि, स्मृति, नेत्र और वचनोँ मेँ क्रमपूर्वक निवास करता हुआ मन अब चला गया है (पहले आपके प्रेम की बात बुद्धि से सोची, फिर स्मरण की, तदनंतर

घुधि औ सुधि नैननि वैननि मैं करि वास निरंतर अंतर गै।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥८०॥
लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निस-द्यौस कटै।
करि भीर भरी यह पीर महा विरहा तनकौ हिय तें न हटै।
घनआनँद जान-सँजोग-समै, विसमै बुधि एकहि बेर बटै।
सपनो सो टरै, फिरि सौ गुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै॥८१॥
अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपैा झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥८२॥

नेत्रों में आपको बसाया, वाणी से आपका गुण गाती रही) पर अब बेमन हो गई हूँ। उघरौ० = संसार हट गया। छाय० = हे आनंद के घन, केवल आप ही छाए हुए हैं। त्यौं = समान। चातकि० = अब तो चातक की भाँति आपका ही आसरा-भरोसा रह गया है। उघरौ···अब तौ = मन में आपके समा जाने से मेरी सारी वृत्तियाँ संसार से हट गई। अतः अब जगत् मेरे सामने रह ही नहीं गया, केवल आप ही आप रह गए हैं (विरोध)। यह छंद ब्रह्म और जीव के पक्ष का भी आभास दे रहा है।

[८१] भटू = हे सखी। कटै = बीते। भीर = संकट। करि० = इस विरह-वेदना ने अनेक संकटों में डाल दिया है। तनकौ = थोड़ा भी। समै = समय। विसमै = विस्मय में, आश्चर्य में; विषम ही। एकहिबेर = एकबारगी। बटै = उलझ जाती है। विसमै० = बुद्धि एकबारगी आश्चर्य में लीन हो जाती है, अचरज में पड़ जाती है। सपनो० = जैसे स्वप्न आते और तुरंत निकल जाते हैं। चेटक = जादू, माया। डाढ़त = जलाता है। घटै = शरीर को। घोटि० = शरीर को घोंट डालता है। सपनो० = उनके संयोग का समय इतनी शीघ्रता से बीत जाता है, जैसे स्वप्न। फिर सौगुनी (अत्यधिक) माया बढ़ती है, जो जलाने लगती है और शरीर को घोंट डालती है।

[८२] सूधो = सीधा, सरल, ऋजु। सयानप = चतुराई। बाँक = वक्र, टेढ़ा। जहाँ = इसमें टेढ़ी चतुराई थोड़ी भी नहीं है, इसमें कुटिलता का नाम

कवित्त

करुवो मधुर लागै वाको विष अंग भएँ,
याहि देखेँ रस हू मैं कटुता बसति है।
वाके एक मुख ही तेँ बाढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है।
सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासौं कोटि गुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिखारी,
बैरिनि अनोखी मोहिं डाहनि डसति है॥ ८३॥

भी नहीँ। साँचे = सच्चे लोग। आपनपौ = अपनत्व। झझकैँ = हिचकते हैँ। निसाँक = निःशंक। एक तैँ० = एक रेखा जो पहले खिंच गई उसके अतिरिक्त दूसरी रेखा खिंच नहीँ सकती। प्रेम की जो टेक पकड़ी सो पकड़ी। पाटी = पट्टी। तुम० = आपने न जाने कैसी पट्टी पढ़ी है, न जाने कैसी शिक्षा पाई है। मन = हृदय; ४० सेर। छटाँक = थोड़ा; सेर का सोलहवाँ भाग। छटाँक को उलटकर पढ़ने से 'कटाछ' (कटाक्ष) भी होता है [या छटा+अंक = शोभा की झलक]। इसमेँ परिवृत्ति अलंकार है।

[८३] इसमेँ रात्रि नागिन से बढ़कर बताई गई है। वाको = नागिन का। अंग० = शरीर में प्रविष्ट होने से। याहि = रात्रि को। रस हू = रसीले पदार्थों मेँ, सुखद वस्तुओं मेँ भी। कटुता० = कड़वे लगते हैँ, बुरे या दुःखद प्रतीत होते हैँ। करुवो० = साँप काटनेवाले को कड़वी वस्तुएँ मीठी लगती हैँ। वाके = नागिन के। विकार = दोष (विष का)। यह = रात्रि। सरबंग = सर्वांग से, सब अंगों से। आनि = आकर। गसति० = गँस लेती है, भली भाँति पकड़ लेती है, धँस जाती है। सजीवन० = यद्यपि आपका ध्यान सजीवन है (जिलानेवाला है फिर भी)। लहरि = विष का दौरा। सरसति० = बढ़ती है। डरारी = डरावनी, भयंकर। बिखारी = विषैली। डाहनि = दूसरों की ईर्ष्या से, होड़ लगाकर। डसति० = काटती है। डाहनि० = रात्रि नागिन से बढ़ जाना चाहती है, इसलिए उसकी होड़ लगाकर मुझे भली भाँति डसती है।

कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैँड़ँ परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौँ ही,
चातक ! घातक त्यौँ ही तू हू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौँ करै आवन विनोद-बरसावन वे,
तौ लौँ रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥ ८४ ॥

सवैया

बैरी बियोग की हूकनि जारत,कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सौँ, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै किन, डोलत मो तन लाएँ महा तक।
वे घनआनँद जाय छए उत, पैँड़ँ परयौ इत पातकी चातक ॥८५॥

कवित्त

अंतर मैँ बासी पै प्रवासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।

---

[८४] बैर काढ़ना = शत्रुता का बदला लेना। किन० = खोद खोदकर निकाल क्यों न ले। पैँड़ँ० = पीछे पड़े हैँ। कलापी = मोर। घेरौ = घेरनेवाला। दल = सेना। बिनोद० = अर्थात् सुख देनेवाले। डरारे = डरावने, भयंकर। बजमारे = वज्र मारनेवाला; वज्र का मारा हुआ, जो वज्र मारने पर भी न मरे (स्त्रियों की गाली), दुष्ट। घोरि० = गरज ले।

[८५] बैरी = यह बैरी चातक। कूकि० = जब बोल उठता है। हूकनि = पीड़ा से। अचकाँ = अचानक। अधरातक = आधीरात के समय। कमान = धनुष। से = समान। कान ह्वै = कान की ओर से (कान को अपनी वाणी सुनाकर)। पचियै = हैरान होती हूँ। बचियै० = बचूँ भी तो कैसे बचूँ। मो तन = मेरी ओर। तक = टक, टकटकी। लाएँ० = एकदम टकटकी लगाए हुए। पैँड़ँ० = पीछे पड़ गया है।

लोचननि तारे ह्वै सुझायौ सब सूझौ नाहिं,
बूझी न परति, ऐसैं सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातैं,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैं खोय या विधि हो कौन धौं लहा लहौ ॥८६॥

सवैया

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भाँतिन भोरत हे।
मन माहिं जौ तोरन हीं, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यौं जोरत हे॥८७॥

[८६] अंतर = मन। प्रवासी = परदेश में बसा हुआ। अंतर = दूरी, फासला। आपनीयौ = अपनी भी। लोचननि० = नेत्रों की पुतलियों द्वारा सब कुछ दिखाया, पर आप नहीं दिखाई पड़े। बूझी० = समझ में नहीं आता। ऐसैं० = इस प्रकार चिंता से क्यों जलाते हो। जानराय = सुजान ; ज्ञात। अजान = ज्ञानहीन ; अज्ञात। छाय० = छाया करके, कृपा करके ; संसार का मायाजाल फैलाकर। उघरे० = खुले रहते हो ; पृथक् रहते हैं। मया = प्रेम। हमैं० = हमें खोकर, हमारा जीवन नष्ट करके ; अपनी खोज में भटकाकर। लहा = लाभ, प्राप्ति। यह छंद जीव और ब्रह्म के पक्ष में भी लगता है।

[८७] ढार = ढलना, ढलाव। कित को० = आपका वह ढलना (झुकाव) कहाँ जा ढला। जिहि० = जिसके कारण मेरी ओर अपनी आँखें ढुलकाते थे, मुझ पर कृपादृष्टि करते थे। अरसानि = आलस्य। अरसानि० = आपकी उस बान (स्वभाव) ने आलस्य क्यों ग्रहण कर लिया, आप उस प्रकार मेरी ओर क्यों नहीं झुकते। सरसानि० = सरसतापूर्वक। आनि = आकर। निहोरत हे = अनुरोध करते थे। सरसानि० = जिससे (बान के कारण) आप सरसता के साथ आकर मेरी विनती किया करते थे। भोरत हे = ठगते थे, भुलावा देते थे। तोरन हीं = (प्रेम) तोड़ने की ही ठान ठान ली थी। बिसवासी = विश्वासघाती। सनेह० = तो तब प्रेम का संबंध क्यों जोड़ रहे थे।

घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहि भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं।
नहिं आवनि औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु विचारि कै देहु बताय हहा पिय ! दूरि तें पाय गहौं ॥८८॥
बिरहा-रवि सौं घट-ब्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इकली* छतियाँ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ।
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखैं दई कैसें लिखौं पतियाँ।
नित सावन दीठि सु बैठक मैं टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ ॥८९॥
इत भायनि भाँवरैं भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिवासर फूलनि भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।

[८८] नहिं० = न तो आने की अवधि ही निश्चित है और न आपसे ऐसी आशा है कि आ ही जायँगे। इते० = इतने पर भी एकतार आपका रास्ता देखती रहती हूँ। अकारन० = बिना कारण जो मैं आपका मार्ग देखती रहती हूँ उसे देखकर यदि कोई पूछे कि तू क्यों उनकी प्रतिक्षा कर रही है तो मैं क्या उत्तर दूँ (आप यही बता दें)। दूरि तें = इतनी दूर से। आप निकट नहीं आते इसलिए दूर ही से प्रणाम कर रही हूँ।

[८९] बिरहा० = विरहरूपी सूर्य से शरीररूपी आकाश तप गया है। खिवैं = चमकती हैं। इकली = अकेली [अथवा इक लौ = एक ही ढंग से, लगातार, निरंतर]। हिय० = हृदयरूपी समुद्र से नेत्ररूपी बादल (पानीरूपी आँसू) भरकर। उघरे = खुले, खुलकर। न लखैं = कुछ सूझता ही नहीं। नित० = मेरे लिए नित ही सावन है। दीठि० = दृष्टिरूपी (प्रिय की) बैठक में। टपकैं० = बरोनियाँ ओलती की भाँति टपकती रहती हैं।

[९०] इत = एक ओर तो (मुख को कमल जानकर)। भायनि = भावों से भरकर। भाँवरै० = भौंरों की भाँति (भौंरे होकर) चक्कर काटते हैं। उत = दूसरी ओर (उसे चंद्रमा समझकर)। चायनि = चाव के साथ। चाहि = देखकर। चकोर = चकोरों की भाँति (चकोर बनकर) चकित होते हैं।

* इक लौ। [illegible]

घनआनँद घूँघट-ओट भए तव वावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी! निज नैन विसेष सुजान छकैं॥९०॥

कवित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया! विछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै, खरक विछोह की।
कैसैं धरौं धीर वीर! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीकैं करि टोह की।
देखैं अनदेखैं तहाँ अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोहकी॥ ९१॥

निशि० = रात में फूलना और दिन में प्रभापूर्ण रहना, कमल तो दिन में ही फूलता है, पर प्रिय का मुखकमल रात में भी फूला रहता है, चंद्रमा रात में ही प्रभापूर्ण रहता है, पर प्रिय का मुखचंद्र दिन में भी प्रभापूर्ण रहता है। भूलनि = छटा पर मुग्ध होना। रूप = सौंदर्य। ब्यौरि सकैं = निर्णय नहीं कर पाते (कि आपके मुख को कमल मानें या चंद्र)। घूँघट-ओट० = (जब तक घूँघट के बाहर रहते हैं तब तक तो संशय में पड़े रहते हैं और जब) घूँघट में छिप जाते है तो नेत्र पागलों की भाँति चारों ओर देखने लगते हैं (कि प्रिय का मुख कहाँ गया)। कौतुक = खेल। सुजान = सावधान। प्रिय० = प्रिय के मुख में यह कौतुक देखकर हे सखी! मेरे अत्यंत सावधान नेत्र भी चक्कर में पड़ जाते हैं।

[९१] ताहि = उस रूप को। चाहि = देखकर। मन० = मन महा मोह की दशा से मोहित होता है, मन को महा मोह की दशा प्राप्त होती है। हिलग = लगन, चाह, परचना। विछुरै० = वियोग में मिलने की उत्कंठा रहती है। मिले हू = संयोग होने पर भी। खरक = खटका, आशंका। खरक० = संयोग में वियोग होने की आशंका बनी रहती है। वीर = हे सखी। असाधि = असाध्य। जतन० = इसके लिए यत्न ही रोग हो रहे हैं, यत्नों से रोग बढ़ता है। टोह = खोज, विचार। याहि० = इसकी खोज भली भाँति कर ली है। देखे = देखने पर भी। कहा = कहाँ दिखाई देती है।

सवैया

क्यौं हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैंड़े परयौ बिरहा बजमारो।
ज्यौ बहरै न कहूँ छन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ी घनआनँद वेदनि कैधा उपाय तैं आवै तँवारो।
हौंही भरौं अकेली, कहौं कौन सौं, जा विध होत है साँझ सवारो।९२।

कवित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी
सोई अब कहाँ ते बढ़नि लियँ आई है।
जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यौ,
सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है।
आली! घनआनँद सुजान सौं बिछुरि परैं,
आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है।।९३।।

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनको नित नींद ही जागनि है।
हित-पीर सौं पूरित जो हियरा,फिरि ताहि कहौ कहा लागनि है।

[९२] क्यौं हूँ = किसी प्रकार भी। पैंड़ें परयौ० = पीछे पड़ गया है। ज्यौ = जी; मन। बहरै न = बहलता नहीं। वेदनि = वेदना। उपाय० = (उसे दूर करने का उपाय) करने से। तँवारो = मूर्छा। हौं ही० = मैं ही अकेले दिन काट रही हूँ। सवारो = सवेरा।

[९३] न जात० = जिसकी लंबाई का पता नहीं चलता था। बढ़नि = बाढ़। जीवन० = जीवन के फल सा जान पड़ता था। बिन० = समाप्त न होकर। अंतक = यम। देत० = यमराज की दुहाई दे रहा है, मारे डाले रहा है। इनकी० = दिन और रात की बात तो एक ओर रहे। झालरति = झलराते ही; लहलही होते ही। आपौ = अपनापन; आप (जल)।

[९४] रूप० = रूप का परिचय मिला। नींद० = जगना भी सोना ही है। उन आँखों को बंद ही किए रहना पड़ता है। हित-पीर = प्रेम की पीड़ा।

घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है।
सुखमै मुखचंद बिना निरखैं नख तें सिख लौं बिष-पागनि है ॥९४॥

कवित्त

घर बन बीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
इतै ह्वै पै जान! भई नई बिरहामई।
बिषम उदेग-आगि लपटैं अँतर लागैं,
कैसैं कहौं जैसैं कछू तचनि महा तई।
फूटि फटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,
बचिबो अचंभो, मीचौ निदर करै गई।
आनँद के घन लखैं अनलखैं दुहूँ ओर,
दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥ ९५ ॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोपन तैं।
जिय ता बिन यौं अब आतुर क्यौं, तब तौ तनकौ बिरमायौ न तैं।
घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इतै पर त्यागि हतैं।
अधबीच परयौं दुख-ज्वाल जरै सठ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं ॥९६॥

लागनि = लगना, ठहरना। दागनि = जलना। सुखमै = सुखमय। बिष० = विष में लिपट जाना।

[९५] बीथी = गली। उदेग = (उद्वेग) घबराहट। अँतर = हृदय। तचनि = ताप। तई = तपी। टूक = टुकड़ा। मीचौ = मृत्यु भी। निदर० = निरादर करके चली गई, मृत्यु ने भी त्याग दिया (बच जाना अचरज की बात थी, पर मृत्यु भी छोड़कर चली गई, मरने से भी बढ़कर कष्ट है)। दुहूँ० = दोनों प्रकार से। दईमारी = दैव की मारी, हतभाग्य। हारी = हैरान हूँ। निरदई = निर्दय, दयाहीन; निर + दई, दैव के शासन से परे।

[९६] बिरच्यौ = (तन से) विरक्त या उदास हो गया। किहि० = किस दोष (अपराध) के कारण। रोपन० = क्रुद्ध होकर। ता बिन = प्रिय के बिना। आतुर = व्याकुल। तनकौ = थोड़ा भी। बिरमायौ० = उसे रोका नहीं। त्यागि = त्यागकर मारे डालते हैं। सठ = ऐ दुष्ट मन। को सुख० = किस सुख

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि विसेख्यौ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनँद जान, अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥९७॥

जीव की बात जनाइयै क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरनि मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥९८॥

तोहि तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो, पै क्यौं न परयौ लहि तू तौ सदा सुख।
एक ही टैक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियें रुख।
ऐसी सुहाय तौ मेरो कहा बस, देखिहौं पीठि, दुरायहौ जौ मुख॥९९॥

के लिए। हठि० = हठपूर्वक उनके द्वार में (किस सुख के लिए) चिपके रहें।

[९७] पन = प्रतिज्ञा। जा मधि = जिस हृदयरूपी पत्र में। सोधि = शुद्ध करके। सुधारि = भली भाँति। लेख्यौ = लिखा है। पचि कै = हैरान होकर, बड़ा कष्ट सहकर। ताहि० = उसी प्रिय के सुंदर और विचित्र चरित्रों द्वारा बड़े परिश्रम से यह बनाया गया है। हियो० = हृदयरूपी प्रेमपत्र। आन = अन्य। न अवरेख्यौ = नहीं अंकित की। आन-कथा = किसी दूसरे की बात इसमें कहीं भी अंकित नहीं है।

[९८] जीव = मन। जान = सुजान; ज्ञानवान्। आगौ = आगे, अग्रगण्य, बढ़कर। जीव को० = मन की बात उससे कैसे कही जाय जो सुजान होते हुए भी अजानों से बढ़कर होता जा रहा हो। तीरनि = बाणों से। पीर० = पीड़ा का अनुभव नहीं करता, दया नहीं करता। एक सो = समान। रागौ = गाना। ऐसी० = ऐसी अवस्था हो गई है। जु = जो, कि। आन० = दूसरा सूझता ही नहीं, किसी दूसरे की ओर झुकाव होता ही नहीं। सो० = वह चाहे छोड़ ही क्यों न दे। भरैंगे० = व्यथा में दिन काटेंगे। न लागौ = न लगे, न हो।

[९९] सेल = बरछा। तोहि० = तुझे तो खेल जान पड़ता है पर मेरे लिए वही बरछे की भाँति कष्टदायक है। जाहि० = जिस पर जो पड़ेगी उसे वह

छप्पय

महो-दूध सम गनै, हंस-वक-भेद न जानै।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमानै।
चंदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सम तोलै।
विन विवेक गुन-दोष, मूढ़-कवि व्यौरि न वोलै।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न विचारत नेकु मन।
सपने हूँ न विलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥१००॥

कहियै काहि जताय हाय जो मो मधि वीतै।
जरनि बुझौं, दुख-जाल धकौं, निसिवासर ही तै।
दुसह सुजान-वियोग वसौं ताही सँजोग नित।
वहरि परै नहिं समै, गमै जियरा जित को तित।
अहौ दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन।
ऐसी विरचि विरँचि को कहा सर्यौ आनंदघन ॥१०१॥

सहेगा। पै क्यौं० = तू पड़ा हुआ नित्य सुख क्यों नहीं प्राप्त करता। लियें० = प्रिय की ओर प्रवृत्त होकर। दुरायहौ = छिपा लोगे।

[१००] महो = मट्ठा। वक = बगुला। एक = एक सा, समान। प्रमानै = समझे। ढाक = पलाश (निर्गंध)। राँग = राँगा। रूपौ = चाँदी। विन० = बिना विचार किए। कवि = पंडित। व्यौरि = निर्णय करके। नेम = नियम। हित = अनुराग। चतुरई = चतुरता। नेकु = थोड़ा भी। न विलंबियै = ठहरना न चाहिए। ढिग = पास।

[१०१] काहि = किसको। मो० = मेरे मन में। जरनि० = जलन से बुझती हूँ, ज्यों ज्यों ज्वाला वढ़ती है शिथिल पड़ती जाती हूँ। धकौं = प्रज्वलित होती हूँ, तपती हूँ। दुसह० = असह्य सुजान के वियोग के ही संयोग में सदा रहती हूँ। वहरि० = समय किसी प्रकार कटता नहीं, समय निकलता नहीं। गमै० = चित इधर उधर भटकता ही रहता है। रीझि = संयोग में प्रिय के रूप पर मुग्ध होकर। खीझि = वियोग में विरह-दुख से व्याकुल होकर। मुरझौ० = शिथिल पड़ गया। विरंचि = ब्रह्मा, ईश्वर। सर्यौ० = काम निकला, क्या लाभ हुआ।

सवैया

प्यार कौ सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहाँ कहाँ पाई।
बंक महा विष-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई।
यौँ घनआनँद चेटक मूरति लै जब अंतर-ज्वाल बसाई।
कैसे दुराइहैं जान अमोही, मिलाप मैं एतियौ ऊखिलताई ॥१०२॥

कवित्त

मिलत न क्यौं हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैं किये बिसाल जे बिछोह-छत हैं।
प्रीतम अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान,
विष-भोए विषम-बिसास-बान-हत हैं।
प्यार मैं परम पूरो, सून्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान! ये अमोहिन के मत हैं।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैं बीच पारे परवत हैं ॥१०३॥

---

[१०२] प्यार० = प्रेम के स्वप्न की भाँति, जिसमें प्रेम का लेश भी नहीं। बंक = वक्र, टेढ़ी। विष० = (प्राणों में) विष मिला देनेवाली। सुधाई० = अमृत से ही सनी हुई। सुधाई = भोलापन। चेटक = मायाविनी। अंतर = हृदय। चेटक० = उनकी मायाविनी मूर्ति का ध्यान क्या किया हृदय में ज्वाला समा गई। दुराइहैं = छिपा रखेंगे। मिलाप = मेल, संयोग। ऊखिलताई = अमेल, अमिलाप ('ऊखिल' ब्रज का खास शब्द है, जिसका अर्थ 'अजनबी' होता है)। कैसे० = मिलाप में अमिलाप (अजनबीपने) को कब तक बनाए रहेंगे। जब मैं निरंतर उनका ध्यान करती हूँ और उनके विरह-ताप में तपती हूँ तो उन्हें अपनी उदासीनता हटानी ही पड़ेगी।

[१०३] मिलत० = मिलते नहीं, नहीं पूजते, नहीं भरते। अमिलताई० = फटे रहने की बात से युक्त; खटाई (अम्ल) अर्थात् कपट से भरे हुए। छत = (क्षत) घाव। मिलत० = विरह ने जो बड़े बड़े घाव छाती में कर रखे हैं वे आपकी अनमेल बान से युक्त होकर भरते ही नहीं। अनेरे = दूर। घूमत = गहरे चक्कर में पड़े हैं। विष-भोए = विष से बुझे हुए। बिसास० = विश्वासघात के

आनाकानी-आरसी निहारिबो क
कहा मो चकित दसा-त्यौं
मौन हू सौं देखिहौं, कितेक प
कूक-भरी मूकता बुल
जान ! घनआनँद यौं मोहिं
जानियैगी टेक टरैं कौन धौं म...
रूई दियैं रहौगे कहा लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥१०४॥

ुकारे ।
मन की ।
लहै
'९॥

सवैया

घनआनँद जान ! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै ।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै ।

बाणों के प्रहार से घायल होकर। प्यार० = प्यार में तो आप खूब प्रवीण हैं (व्यंग्य)। जान परी = समझ में आ गया। जान = सुजान, प्रिय। मत = रंग-ढंग। हो = था। पारे = डाल दिए। पौन० = जहाँ (हम दोनों के बीच) वायु का भी प्रवेश नहीं हो सकता था वहाँ आपने पर्वत डाल दिए (दूर जा बसे हैं)।

[१०४] आरसी = (आदर्श) दर्पण। आनाकानी० = आनाकानी का [या से] दर्पण आप कब तक देखते रहेंगे (सुनी अनसुनी करते रहेंगे)। कहा = क्या। चकित = चकित कर देनेवाली। त्यौं = ओर। न दीठि० = क्या दृष्टि घूमेगी ही नहीं। मौन हू० = मौन रहकर देखूँगी। कितेक० = कब तक प्रतिज्ञा का पालन करते रहेंगे (आपने मुझसे विमुख रहने की जो प्रतिज्ञा कर ली है, देखूँ वह कब तक निभती है)। कूक० = पुकार। मूकता = मौन। आप = स्वयं, खुद। कूक० = मौन से युक्त मेरी कूक (मौन की पुकार) आपको बुलाकर तब कहीं स्वयं बोलेगी (मौन की मेरी पुकार से आपको प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ेगी)। पैज = प्रतिज्ञा अर्थात् होड़। जानियैगी = अर्थात् देखना है। टेक = प्रतिज्ञा। मंलोलिहै = पछताएगा। बहराइबे की = बहलाने की; बधिर बने रहने की। मेरियै = मेरी ही।

पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या विधि सौं भजि कै।
प्यार कोऊ सनेह-विदेह-दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि कै ॥१०५॥

कवित्त

रूप-उजियारे जान! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया विरह-महा-तमैं।
सुखद सुधा तैं हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं।
सुंदर सुदेस आँखैं बहुरयौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसें हुलसि हियें रमैं।
ह्वैहै सोऊ घरी भाग-उघरी अनँदघन,
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥ १०६ ॥

[१०५] हित० = प्रीति की रीति आपने त्याग ही दी। साहस सौं० = साहसपूर्वक। समाजन कौं० = समाज (सेना) सजाकर आए। मन कें० = मन भी अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में डटा रहा। सुभगै० = वह (मन) इस प्रकार से आपकी प्रीति करके भला भागे भी तो कैसे भागे! वह तो अपनी प्रतिज्ञा से परिपूर्ण है, उसे त्याग नहीं सकता। सनेह० = प्रेम से मन की विदेह-दशा देखकर वे बेचारे (संकट) हारकर और लज्जित होकर लौट गए। अति० = अर्थात् हार मानकर। दीन = बेचारे। तात्पर्य यह कि प्रेम के कारण अपने को ही भूले रहने से मन संकट का भी अनुभव नहीं करता।

[१०६] रूप० = छवि का प्रकाश करनेवाले। जुन्हैया = चाँदनी; प्रकाश। विरह० = विरहरूपी घोर अंधकार में। हेरनि = चितवन। उदेग० = उद्वेग ऐसे यम को। सुखद० = अमृत से भी बढ़कर अपनी चितवन से मेरा जी जिलाएँगे और उद्वेग को दूर करेंगे। सुदेस = अच्छी बस्ती। आँखैं = आँखों में। सुंदर० = (इन उजड़ी हुई) आँखों में फिर सुंदर बस्ती बसाकर। आय० = इन आँखों में आप आ बसेंगे, दर्शन देंगे। जैसें० = जिस प्रकार आप उमंगपूर्वक इस रमे हुए हृदय में बसे हुए हैं। भाग० = भाग्य द्वारा उद्घाटित, भाग्य से भरी हुई। सुरस = आनंद; जल। हरी = हरी-भरी; प्रसन्न।

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु वियोग तिहारे।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौँ डारत मारे।
ह्वै अभिलाषनि-पात-निपात कढ़ै हिय-सूल उसासनि-डारे।
है पतझार वसंत दुहूँ घनआनँद एक ही वार हमारे ॥१०७॥
जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय रावरो प्यार न पावतौ।
संगम-रंग अनंग उमंगनि भूमि न आनँद-अंबुद छावतौ।
लाड़िलो जोवन त्यौँ अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिं भावतौ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ ॥१०८॥

कवित्त

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये विकल नैना ताहि नपि नपि रे।
हिये मैँ उदेग-आगि लागि रही रातद्योस,
तोहि कौँ अराधौँ जोग साधौँ तपि तपि रे।

[१०७] किंसुक = पलाश। दौ = आग। किंसुक० = आपके वियोग से हृदय में जो आग लग गई है वही पलाश के फूल फूले हुए हैं। मातो = मतवाला। न घिरै = घिरता नहीं, पकड़ा नहीं जाता (वश में नहीं होता)। मनोज = काम (रूपी हाथी)। अभिलाषनि० = अभिलाषरूपी पत्ते झड़ गए। सूल = वेदना; काँटा। उसासनि० = उच्छ्वासरूपी डाल में। कढ़ै = उच्छ्वास निकलने पर हृदय की वेदना व्यक्त हो जाती है। पतझार = अर्थात् शिशिर। एक ही वार = एक साथ।

[१०८] सुनौ० = मेरी दशा सुनो। संगम० = संयोग के रंग में। लाड़िलो = प्यारा, मनोहर। अधरासव = होँठ का आसव (शराब)। चोप = चाव। मनै = मन को। तौ० = तो हृदय जलानेवाले और प्राण लेनेवाले के रूखे होने का पछतावा न होता। परेखो = पछतावा।

[१०९] हेरत = देखते हुए। हिराने = खो गए। पिराने = दुखने लगे। पल = पलकें। थाके = थक गए। ताहि० = उस मार्ग को नापते नापते। अराधौँ = अराधना करती हूँ। दुहेली = दुःख की। जीवे तेँ = जीने से।

जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
        बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीवे तैं भई उदास तऊ है मिलन-आस,
        जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥१०९॥
तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं वेद,
        पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
        जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
        कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
        दई गयौ तू हू निरदई ओर ढरि रे ॥११०॥
चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि-देह धरै,
        मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहै द्वै*।
ज्ञान हूँ तैं आगैं जाकी पदवी परम ऊँची,
        रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात †ग्वै।

---

[११०] जैसी० = कोई जैसी भावना से ध्यान करता है वैसा ही फल पाता है। जानराय = सुजानों में श्रेष्ठ। छाय = एक बार आनंद के बादलों की छाया करके। उघरि = हटकर; खुलकर। निरगुन = (१) निर्गुण (ब्रह्म); (२) गुणों से हीन; (३) आकाश। कैधौं० = सब कुछ हटकर क्या मुझे निर्गुण ही दिखाई पड़ना था? दई = दैव, ईश्वर। निरदई = निर्दय प्रिय; निर + दई, दई का उलटा। निरदई० = तू भी निर्दय (प्रिय) से ही जा मिला।

[१११] सोऊ = वह चकोर भी। ररै = रटता है। एक = केवल। चंदहि० = प्रेम की चरमावस्था में पहुँचकर चंद्रमा चकोर और चकोर चंद्रमा हो जाता है। (चंद्रमा चकोर बनकर) मन से अपने प्रिय को देखने की रट लगाता है। एक० = केवल देखने के लिए प्रेमी और प्रिय दो होते हैं, हैं वे एक ही।

*रुवै। †भोगलात।

जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना के छाले परैं प्यारे नेह-नावँ छ्वै ॥१११॥

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यौं दृग-प्यास नहीं।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की बास नहीं।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं ॥११२॥

प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी वैसे ही एक हो जाते हैं जैसे ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञान की चरम स्थिति में। आगैं = बढ़कर। जाकी = जिस प्रेम की। भोगलाना = (अकर्मक) आकृष्ट होकर वश में हो जाना। ग्वै = डूबकर। रस० = ऐसा आनंद उत्पन्न होता है कि उसमें लीन होकर अपने सांसारिक रूप को भूल जाते हैं अथवा भोगियों के सारे भोग तिरोहित हो जाते हैं]। भूले = अपने को भूले हुए, जो तन-मन की सुध खो बैठे हैं। सुधि के = सतर्क होकर चलनेवाले, जिनको अपनी सुधि बनी रहती है। रहैं थकित ह्वै = रुक जाते हैं (इस मार्ग में चल नहीं सकते)। जिन = मत। रसना० = प्रेम में इतना ताप होता है कि उसके नाम को छूने (लेने) से जीभ में छाले पड़ जाते हैं (जो इतना ताप सहने का साहस करे वह इस मार्ग पर पैर रखे)।

[११२] जीवन = जल; प्राण। पावत० = मेरे नेत्रों की प्यास का अनुभव क्यों नहीं करते ('पीर पाना' की भाँति 'प्यास पाना' प्रयोग कवि ने गढ़ा है)। कुसुमाकर = उद्यान, फुलवाड़ी। बास = गंध। पहचान० = पहचान की गंध भी नहीं है, पहचानते ही नहीं। रसिकाई० = स्वयं तो रसिकता (सुंदरता) से भरे हुए हैं पर मन में आस-पास स्वप्न में भी रस नहीं दिखाई देता। पचि० = न जाने किस ब्रह्मा ने आपको परेशान होकर बनाया है (ब्रह्मा भी आपको बनाने में परेशान हुआ होगा)। जु = जो, कि। हितूनि० = प्रेमियों को मारते हुए हृदय में भय भी नहीं होता।

सूने परे दग-भौन सुजान जे ते बहुर्यौ कब आय बसायहौ।
सोचनि ही सुरझ्यौ पिय जो हिय सो सुख साँचि * उदेग नसायहौ।
हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौं वियोग के ताप तपायहौ।
एहो हँसी जिन जानौ हहा, हमैं र्वाय कहौ अब काहि हँसायहौ॥

कवित्त

नित ही अपूरब सुधाधर-वदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति-जालनि जगत है।
अमित कलानि ऐन, रैनद्यौस एकरस,
केस-तम-संग रंग-राचनि पगत है।
सुनि जान प्यारी! घनआनँद तैं दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौं चोपनि खगत है।
नीठि दीठि परैं खरकत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगैं चंद्रमा कलंकी सो लगत है॥११४॥

[११३] बहुर्यौ = फिर। सुख० = सुख से भरकर। उदेग = उद्वेग। जिन = मत।

[११४] नित ही = नित्य ही। अपूरब = अपूर्व, अद्वितीय; अ + पूरब, जो पूर्व दिशा से निकलनेवाला नहीं है, विलक्षण। सुधाधर = चंद्रमा; सुधा को धारण करनेवाला (सुधा + अधर = अमृत से परिपूर्ण होंठोंवाला)। वदन = मुख। मित्र = सूर्य; सखा, प्रेमी। अंक = गोद। जालनि = समूह। मित्र० = आकाश का चंद्रमा मित्र (सूर्य) के निकट पहुँचकर श्रीहीन हो जाता है, पर यह मुखचंद्र और भी देदीप्यमान होता है। ऐन = घर। अमित = उस चंद्र में १६ ही कलाएँ हैं, इसमें असंख्य। रैन० = वह चंद्र दिनरात एक सा नहीं रहता पर यह दिनरात एक सा रहता है। संग = साथ। रंग = रंग की रँगाई खिल उठती है, मेल खाती है अर्थात् छजती है। घन० = अंधकार के साथ यह छजता है, (वह) चंद्र अंधकार से नहीं दिखता। घन० = आनंद के घन (बादल; घने आनंद वाले प्रिय) से मिलकर दूना प्रकाश देता है। दिपै = प्रकाश देता है; प्रसन्न होता है। चोपनि = उत्साहपूर्वक। खगत० =

* साँचि।

उघरि नचे हैं, लोक-लाज तें बचे हैं, पूरी
चोपनि रचे हैं, सुदरस-लोभी रावरे।
जाके हैं थके हैं मोह-मादिक छके हैं अन-
बोले पै बके हैं दसा, चीतैं चित चाव रे।
औसर न सोचैं घनआनँद बिमोचैं जल,
लोचैं वही मूरति अरबरानि आवरे।
देखि देखि फूलैं ओट भ्रमन ही भूलैं, देखौ
बिन देखें भए ये बियोगी दृग बावरे॥ ११५॥

सवैया

कित लोग कथा सु वृथा ही करौं, यह तौ तब ही अनुमानि लई।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिबिंबहि सूरति मानि लई।

हिलमिल जाता है। नीठि = कठिनाई से, किसी प्रकार। सो = वह चंद्रमा। नीठि० = एक तो वह चंद्रमा (आकाशवाला) देखा नहीं जाता, यदि कठिनाई से उसे देखें भी तो नेत्रों में वह किरकिरी की भाँति खटकता है। इसलिए आपके मुखचंद्र के सामने वह चंद्रमा कलंकी ही दिखाई देता है। (आपका मुख निष्कलंक है, पर उसमें कलंक है)।

[११५] उघरि० = खुलकर नाच रहे हैं (खुल्लमखुल्ला प्रिय को देखा करते हैं, किसी की चिंता नहीं करते)। लोक० = लोकलज्जा से बचे (अर्थात् दूर ही) रहते हैं, लोकलज्जा भी त्याग दी है ! पूरी० = पूरे चाव के रंग में रँगे हुए हैं। सुदरस० = आपके दर्शनों के लोभी हैं। जके० = चकपकाए रहते हैं। थके० = शिथिल हो रहे हैं। मोह० = प्रेम की मदिरा पीकर छक गए हैं, प्रेम के नशे में चूर रहते हैं। अनबोले० = बोलते तो नहीं, पर इनकी दशा बकनेवालों की सी है। चीतैं० = चित्त में निरंतर उत्साह ही लाया करते हैं। औसर० = समय का विचार नहीं करते। बिमोचैं = आँसू गिराते रहते हैं। लोचैं० = आपकी उस मूर्ति की कामना किया करते हैं। अरबरानि = लड़-खड़ाहट। आवरे = शिथिल, दीन। अरबरानि० = व्याकुलता से दीन होकर। फूलैं = प्रसन्न होते हैं। देखि० = प्रिय को मानों देख से रहे हैं और इसी से

घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौं हठ कै सठ-हानि लई।
ब्रज देखत होत सुमारनि कौं तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥११६॥
चूर भयौ चित पूरि परेखनि एहो कठोर ! अजौं दुख पीसत।
साँस हियें न समाय सकोचनि, हाय इते पर बान कसीसत।
ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत॥११७॥
ज्यौ बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि बिदेह कौ लेखौ।
देखति जो दुखिया अँखियाँ निति बैरियौ को सुपने सु न देखौ।

प्रसन्न होते रहते हैं। ओट० = प्रिय के कहीं ओट में छिपे होने के भ्रम में ही मग्न रहते हैं; समझते हैं कि प्रिय कहीं छिपा है, अब निकला तब निकला।

[११६] गोपियों का वचन उद्धव के प्रति। कित = क्यों। कथा० = बकवाद।। कित० = लोग व्यर्थ ही बकवाद क्यों करते हैं ? भ्रम दै० = भ्रम में पड़ जाने के कारण। प्रतिबिंब = छाया। अपनेई० = अपने प्रेम से धोखा खाकर छाया को ही मूर्ति मान बैठी (प्रिय में प्रेम की छाया मात्र है)। सुजान० = चतुर थे। किहि० = किस चालाकी से, किस घात से। हठ कै = जान बूझकर, बरबस। सठ-हानि = पूँजी की हानि। सठ-हानि लई = यहाँ से जाकर उन्होंने जो हानि उठाई। सुमार = अच्छी मार, कड़े कड़े आक्षेप। ब्रज० = उन्होंने देखा कि ब्रज में मेरे ऊपर कड़े कड़े आक्षेप होते हैं, इसीलिए यहाँ से टल गए।

[११७] परेखनि = पछतावों से। कठोर = निर्दय प्रिय। अजौं० = अब भी, इतने पर भी (पिस जाने पर भी पीस रहे हो)। साँस० = संकोच के कारण साँस नहीं समाती, मारे संकोच के कुछ कह नहीं सकती। बान = विरह का बाण। कसीसत = (फारसी कशिश) खींचते हो, मारते हो। ओटनि = ओट से, छिपकर। नीके० = हम तो रातदिन यही आशीर्वाद देती (मंगल-कामना करती) हैं कि आप सुख से रहें। आँखिन = मेरी इन आँखों का क्या दोष, यदि दिखाई नहीं पड़ते।

[११८] ज्यौ = जी, चित्त। बहरै न = बहलता नहीं, लगता नहीं। ज्यौ बहरै० = न तो चित्त ही कहीं बहलता है, न मन ही कहीं टिकता है। देह० = शरीर तो विदेह दशा को प्राप्त हो रहा है, शरीर की सुध ही नहीं रहती।

हौ तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हू मिटै न परेखौ ॥११८॥

कवित्त

ह्वैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौँ।
अमी-ऐन आनन कौँ पान, प्यासे नैननि सौँ
चैननि ही करिकै, वियोग-ताप मेटिहौँ।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उर-मंडन कौँ
धारि घनआनँद यौँ सुखनि समेटिहौँ।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौँ हूँ कब
प्रानपति पास पाय ताप-मद फेटिहौँ ॥ ११९ ॥
सोए बहुतेरो, मेरो सोच हू निवेरो हेरो,
हौँ न जानौँ कब धौँ उनीदे भाग ! जगौंगे।
पीर-भरे लोचन ! अधीर हौ, पै जानत जू
कौन घरी रूप के रसौत जगमगौंगे ?।

बैरियौ की = शत्रु की आँखें भी। देखति० = मेरी आँखें जो कुछ देख रही हैं (जो कष्ट भोग रही हैं) वह शत्रु की भी आँखें स्वप्न में भी न देखें। पहचानि० = पहचान की रेखा भी नहीँ रखते, लेशमात्र भी पहचान नहीँ रखते। परेखौ = पछतावा। प्रीति० = प्रिय के द्वारा प्रीति के छूट जाने पर भी पछतावा नहीँ छूटता।

[११९] भाग-भरी = भाग्य से भरी हुई, भाग्यशालिनी। पुन्य० = पुण्यों से फली हुई, पुण्य के परिणाम-स्वरूप मिली हुई, सुखद। खरी = तीव्र। अमी = अमृत। ऐन = (अयन) घर। आनन = मुख। अमी० = अर्थात् मुखचंद्र। चैननि० = सुखपूर्वक। उर-मंडन० = हृदय को शोभित करनेवाले प्रिय को। समेटिहौँ = एकत्र करूँगी, लूटूँगी। मनोज = काम। ताप-मद = संताप का गर्व। फेटिहौँ = फैंट डालूँगी, (मद) मर्दन कर दूँगी।

[१२०] बहुतेरो = बहुत। निवेरो = दूर करो। हेरो = मेरी ओर देखो। उनीदे = नींद में अलसाए हुए। रसौत = एक औषध जो दारुहल्दी से बनती

अंग अंग ! तुम्हैं कौ लौं दहैगो अनंग कहूँ
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौगे।
चलौ प्रान ! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
विना घनआनँद कितेक दुख दगौगे ॥ १२० ॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहुँ वहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥१२१॥

कवित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे, राखि रह्यौ यह प्रान कौं।
तुम बसौ न्यारे, यह नेक हू न हातो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौं।

है और आँख के रोग और घाव मे काम आती है ; रसवत्, रसमयता, आनंद-दायकता। अनंग = काम ; अंगहीन। कहूँ = कभी। रंगभरी० = रंगभरी देह-वाले प्रिय। खगौगे = मिलोगे। पलौ = पलते रहो। परे० = प्रिय से दूर पड़कर। कलमलौ० = व्याकुलता से छटपटाते क्यौं हो। दगौगे = जलोगे, सहोगे।

[१२१] दृग० = आँसू बहाकर (उसी के साथ) दृष्टि को बहा दूँ। अभिलाखि० = अभिलाष करके, उस मुख को देखने की आशा में। रही = रुक गई, दृष्टि को बचा रखा। गिरा = वाणी। गसै = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ। बैन = वचन। त्यौं = ओर। रचि = अनुरक्त होकर। रुचि० = मेरी रुचि ही साक्षी है, बचने का प्रमाण मेरी रुचि ही देगी, मेरी रुचि ही कानों को बचाने का कारण है। पलै = पलेगा। राखि रही = रखती हूँ, बचाए हुए हूँ।

[१२२] दीनी० = विमुख हो गए। दीठि० = इस (ध्यान) ने आपकी ओर दृष्टि की, संमुख हुआ (ध्यान आपके विमुख हो जाने पर बढ़ गया है)। पैड़े० = आप (प्राणों के) पीछे पड़े हैं। राखि = यह (ध्यान) प्राणों को

सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
धाको महा मोह मो विना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं॥१२२॥

विरह तपत आछे आँसुन सौं न्हवाय चोवा,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्राननि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हियें मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू विचारि वारी*,
हाहा नेकु नैननि अतीत किन हूजियै॥१२३॥

चोरयो चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी तें सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।

बचा रहा है। न्यारे = अलग, दूर। न होतो० = दूर नहीं होता। आन कौं = किसी दूसरे को। बदौं = समझूँ। तौ पै = तब तो। बरजि० = रोक लो।

[१२३] विरह० = विरह से तपते हुए। न्हवाय = नहलाकर। पखारि = धोकर। धारि = रखकर। छिन = कुछ देर तक। छूजियै = छूऊँगी। चोपनि = चाव से। लालसानि = लालसा से। मंजन = माँजना। मंजन० = प्राणों को कपोलों पर माँजकर (रगड़कर) पूजा करूँगी। मनसा = इच्छा। दूजियै = दूसरी। विचारि = विचार करके। वारी = निछावर होती हूँ। अतीत = अतिथि।

[१२४] चिन्हारि = पहचान। चाह० = प्रेम का आभास मात्र देकर। मनौ० = चित्त भी (मोहित कर लिया)। सरस = बढ़कर। हाँसी० = हँसी का फंदा। छंद सौं = धोखे से। दियौ = गले में डाल दिया। उघरे = हट गए।

* धारि।

छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।
वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिँ नाहिँ ठौर,
मारत* परेखो देखौ हितू ह्वै कहा कियौ ॥ १२४ ॥

सवैया

अँसुवानि तिहारे वियोग ही सौं बरषा-रितु बेलि सी बाल भई।
हिय खोपनि† चोपनि-कोंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि-घूमनि देखियै नित्त नई।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ॥१२५॥
घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै विनती कर जोरि करौं।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अहो धरि ध्यानहिं दूरि तें पाय परौं।
मन भायौ वियोग मैं जारिबो जौ तौ तिहारी सौं नीके जरौंऽरु भरौं।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हितहीन, सु दा दुख बीच अमीच मरौं॥१२६॥

बिसासी = विश्वासघाती। अंत = अंत में। निरदै = निर्दय। वारी० = बुद्धि निछावर हो गई। हारी० = शक्ति क्षीण हो गई। मारत० = पछतावा मारे डालता है, पछता रही हूँ। कहा० = कैसा व्यवहार किया।

[१२५] अँसुवानि = आपके विरह के आँसू वर्षा ऋतु के जल की भाँति हैं। बेलि = लता। बाल = बाला, नायिका, प्रेमिका। खोपा = छप्पर का कोना। हिय० = हृदयरूपी छप्पर के ऊपर उमंगों की कोंपलों के निकलने से। झालरि = झलराकर, फैलकर, हरीभरी होकर। लाज० = लज्जा को भी ढक लिया, लोकलज्जा का भी त्याग कर दिया। हित० = प्रेम से मस्त होकर झूमना ही लता का घूमना (घिराव) है। तुरई = तरोई (पीले फूलवाली)। फूलि रही० = नायिका विरह से इतनी पीली हो गई है जैसे तरोई के पीले फूल फूले हों।

[१२६] विनती = हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ। अरसाहु न = आलस्य न करो। न नेकु० = और न मेरी धृष्टता (बारबार विनती करने) पर रोष न करो। दूरि० = आपसे इतनी दूर रहकर यहाँ से (आपका ध्यान करके

* मानतु। † पोपनि।

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल। अनेकन सौं सरसौ।
हम नाम-अधार जिवावत ज्यौ तुम दै बिसवास-बिषै बरसौ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ।
तकि नेकु दई त्यौं दया ढिग ह्वै सुकहूँ किन दूर ह्वै तें दरसौ॥१२७॥

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिं लै बरसौ॥१२८॥

मानस को बन है जग पै बिन मानस के बन सो दरसै सो।
जे बनमानस ते सरसे तिन सौं मिलि मानस क्यौं सरसै हो।

पैरों पड़ती हूँ)। मन० = मनमाने, जैसा आपके मन को रुचे। सौं = शपथ। नीकैं = भली भाँति, इच्छापूर्वक। जरैंऽरु० = जल जाऊँ और दिन काटूँ। हितहीन = प्रेमहीन। अमीच० = बिना मौत के मर रही हूँ।

[१२७] सरसौ = प्रेम करते हो। नाम० = आपके अमृतमय नाम से। ज्यौ = जी को। दै बिसवास० = विश्वास देकर विष बरसाते हो। गौं गहि = घात लगाकर, अवसर निकालकर। अरसौ = आप प्रेम में आलस्य करते हैं [या अ + रसौ = रसहीन होते जाते हैं]। तकि० = जरा दैव की ओर देखकर, दैव को डरकर। दया० = दया के पास से होकर, दया करके। किन० = दूर ही से क्यों नहीं दर्शन देते।

[१२८] परकाजहि = दूसरे का उपकार करने के हेतु। परजन्य = (पर्जन्य) बादल; पर + जन्य, दूसरों के उपकार के लिए जो हो। जथारथ० = सच्चे होकर दिखाई दो (अपना नाम सार्थक करो)। निधि० = समुद्र का खारा पानी। सुधा० = अमृत के समान (मीठा) कर देते हो। सरसौ = फैलाते हो, करते हो। जीवन = जल; प्राण। हियें परसौ = मन में अनुभव करो। बिसासी = विश्वासघाती। अँसुवानहिं० = मेरे (खारे) आँसुओं को लेकर (और उन्हें मीठा बनाकर) बरसो।

[१२९] मानस० = संसार मनुष्यों का समूह है। मानस के० = यदि उनमें हृदय न हो तो यह संसार फिर जंगल ही है। बनमानस = बनमानुस; बन के

हाय दई ! ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौ तरसै मो।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान हहा ! घनआनँद कौं बरसै जो ॥१२९॥

बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित।
काननि बेधति पैठि के प्राननि, दीसै नहीं* अकुलानि यहै† नित।
क्यौं भरियै, करियै सु कहा, हमैं आनि बनी इन लोगन सौं इत।
भीर मैं हाय अकेले अधीर हैं रीझहि लै रिझवार गए कित ॥१३०॥

कवित्त

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाए हौ हमैं दई।

बड़े बड़े तालाब। सरसे = फैले हुए हैं; सर से, तलैया के से। मानस = मना; मानसरोवर में रहनेवाला हंस (चातक)। सरसै = आनंदित हो। जे बन० = संसार में वनमानुसों (असहृदयों) की वृद्धि हो रही है इसलिए रसिक मन कैसे आनंद पाए; वन में जो बड़े बड़े तालाब हैं वे भी इस मानस (हंस = चातक) के लिए तुच्छ तलैया की भाँति हैं, उनसे यह प्रसन्न नहीं हो सकता। ढरि० = दया कर। इतै = मुझपर। सु कितै० = जिसके लिए मेरा जी तरस रहा है उसे कैसे पाए। चातिक० = हे सुजान ! यदि आप घने आनंद की वर्षा करें तो यह (मरता हुआ) चातक जी उठे।

[१३०] बात० = (चतुरों की बात से अचेत रहनेवाले भी सचेत होते हैं, पर विलक्षणता यह है कि) सुजानों की बात (सचेत) चित्त को भी अचेत कर डालती है। वर्तमान० = वह बात कानों को छेदती हुई प्राणों में धँस जाती है। दीसै० = फिर भी वह दिखाई नहीं पड़ता, यही व्याकुलता नित्य होती रहती है। भरियै = दिन काटे जायँ। हमैं = हमें इन लोगों से (प्रिय के अतिरिक्त बात न समझनेवाले लोगों से) पाला पड़ा है। भीर० = इस भीड़ में हमारे प्राण अकेले हैं, इसी से अधीर हो रहे हैं, रिझवार (प्रिय) न जाने मेरी रीझ को लिए दिए कहाँ चले गए कि आकर इनकी रक्षा नहीं करते।

* नई। † नितै।

हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई ।
इते पै सुजान घनआनँद मिलौ न होय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई ।
तुम हूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई ॥ १३१ ॥

सवैया

सावन-आगम* हेरि सखी ! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी ।
आए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी ।

[१३१] अनमिलन० = वेमेल लोगों के साथ अर्थात् दूसरों से अपना मन मिलाए हुए [अथवा वेमेलपने से युक्त होकर अर्थात् ऊपरी मन से मिलते हो, सच्चे मन से नहीं]। ऐसे० = ईश्वर ने आपको मुझसे मिलाया भी तो अनमिल अर्थात् अमोही बनाकर । आप हू० = यदि आप अपने आपे में हों तब न मिलें । हमैं ० = हमसे आप मिले भी कहाँ, यदि अपने आपसे आप मिले हों, अपने आपे में हों तब न मिलें (आप तो दूसरों से मिले रहते हैं)। मिलौ तौ० = मिलें भी तो आप कैसे मिलें, आपके मिलने का ढंग ही विलक्षण (नया) है, ऐसे ढंग से मिलना न मिलना समान ही है। जई = जवारा, अंकुर । इते पै० = इतने पर अर्थात् इतना प्रयास करने पर भी आप नहीं मिलते । न जाने आपके जी में कैसा विचित्र वेमेलपने का अंकुर लग गया है। तुम हूँ० = आपको ही क्या दोष दूँ, आपसे भी बढ़कर तो मेरा वेमेल मन है। वह तो मुझसे दूर ही दूर रहता है । उसकी विलक्षणता यह है कि इस प्रकार आपके विरह में में जल-भुनकर समाप्त भी हो गई तब भी वह आपसे मिलने का उपाय सोचा ही करता है । तात्पर्य यह कि एक ओर आप ऐसे अमोही और दूसरी ओर मेरे मन जैसा अमोही, इस विषमता में मैं पिस रही हूँ ।

[१३२] चोप = उमंग । बिसेखी = बढ़ गई । सम्हारि० = (ब्रह्मा ने मेरे भाग्य में) प्रिय द्वारा सँभाल के स्थान पर भूल लिख दी है, जिस समय मेरी सँभाल

* आवन ।

बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सों जागति आगि सुनी ही पै पानी तें लागति आँखिन देखी॥१३२

हम सों हित कै कित कों हित ही चित-बीच वियोगहिं बोय चले।
सु अखैवट-बीज लौं फैलि पर्‌यौ वनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय वितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहिं मूल तौ बैठिये आय सुजान ज्यौ ह्वाय*कै रोय चले॥१३३॥

कान्ह! परे बहुतायत मैं अकलैन की बेदन जानौ कहा तुम।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न विथा विमनैन की मानौ कहा तुम।

होनी चाहिए प्रिय उसी समय मुझे भूल गया [अथवा मुझे अपने तन-बदन की सँभाल नहीं रहती, मैं इसे भूली ही रहती हूँ]। लगै = लगने पर। सुनी ही = सुनी थी। पौन० = हवा से आग का प्रचंड होना तो केवल सुना था (देखा नहीं था) पानी से आग लगना तो आँखों देख लिया।

[१३३] हित कै = प्रेम करके। कित कों = किसकी ओर, किधर। हित ही = चाव से। वियोग = वियोग का दुःख, विरह। बोय = बोकर, उत्पन्न करके। सु = वह वियोग का बीज। अखैवट० = अक्षयवट, प्रलयांत में भी नष्ट न होनेवाला वटवृक्ष। फैलि० = अंकुरित होकर हरेभरे वृक्ष में परिणत हो गया है। समोय = अनुरक्त होकर। चले = चल पड़े। छाय = भली भाँति फैलकर, झलराकर। वितान = चँदोवा, शामियाना। आतप = धूप, गरमी। छाय० = वह वटवृक्ष चँदोवे की भाँति छा गया है (उसके नीचे धूप नहीं आती और शीतलता मिलती है किंतु) हम तो ताप की गरमी से ही नष्ट हुए जा रहे हैं, मर रहे हैं। खोय चले = नष्ट हुए जा रहे हैं, मर रहे हैं। तिहिं० = उस वटवृक्ष की जड़ पर, उसके नीचे (बैठकर अपनी सुरीली बाँसुरी ही आ बजाते)। ज्यौ = प्राण। ज्यौ हाय कै० = मेरे प्राण तो (अपनी असाधारण वेदना से करुणाप्लुत करके) अब दूसरों को रुलाकर और स्वयं भी रोकर निकले जा रहे हैं, यह गरमी सही नहीं जाती। मैं असह्य विरह-ताप से जली जा रही हूँ।

* हाय।

बौरे वियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम।
आरतिवंत पपीहन कौं घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ॥१३४॥
यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ, उपरयौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गुनै गनहीं।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे बिधि आनँद के घन ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही ॥१३५॥

---

[१३४] बहुतायत० = बहुतों के फेर में। अकलैन० = मुझ अकेले की, अनन्य प्रेमी की। बेदन = वेदना, पीड़ा। हौ मनमोहन० = आप तो दूसरों का मन मोहनेवाले हैं, स्वयं आपका मन तो किसी पर मोहा ही नहीं, किसी के द्वारा आप मोहे नहीं गए। बिमनैन की = किसी पर मोहित होकर विमनस्क (बेमन) हो जानेवालों की। मानौ = समझो। बिथा० = इसलिए विमनस्कों की व्यथा आप समझें भी तो कैसे समझें। बौरे = पागल। बौरे० = आप सुजान होकर विरह में पागल होनेवाले वियोगियों को हृदय में स्थान कैसे दे सकते हैं (सुजान की चतुराई तो इसी में है कि वह पागलों के फेर में न फँसे)। आरतिवंत = दुखी।

[१३५] नेह = (स्नेह) तेल (चिकना); प्रेम। रूखो = रूखा; उदास। सबै = सब की ओर से। तो = तव, आपकी। बिसरै० = जिस क्षण में ऐसा जान पड़ता है कि मैं आपको भूली हुई हूँ वह क्षण भी आपके स्मरण में ही लगा रहता है। जब मैं आपसे बाहर रहती हूँ तब भी आप ही का ध्यान बना रहता है। गुनै = विचारता है। गनहीं = गिनता है। गुन० = (वह भूला हुआ क्षण) आपके विशाल गुणों की माला फेरता रहता है, आपके गुणों पर विचार करता और उन्हें गिनता रहता है। हित० = चातक के प्राणों के लिए। सजीवन० = हे सुजान! ब्रह्मा ने चातक के प्राणों के लिए सजीवन (बूटी की भाँति) आप जैसे आनंदघन को ही बनाया है। दरसौ = दिखाई पड़ते हो। परसौ = स्पर्श करते हो। सरसौ = रसमय होते हो। मन० = मेरा मन चुराकर ले भी गए, मेरा मन उजाड़कर चले भी गए, फिर भी मुझे रुचते हो, मेरे मन में ही बसते हो।

चितवै जिहि भाँति, सकौँ सहि क्यौँ रहि क्यौँ हूँ परै न हितात हियौ।
सु न जानति जीवति कौन सी आस, बिसास मैँ प्रेम को नेम लियौ।
घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहिं सूखनि सीँचि न छाँह छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि है कहि प्यारी बनाय कै प्यार कियौ १३६

कवित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीँ पै ताहि दाहै,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी गति मति गई खोय है।
करौँ कित दौर, और रहौँ तौ लहौँ न ठौर,
घर कौँ उजारि कै बसत बन जोय है।

---

[१३६] दूती का विरह-निवेदन। चितवै = देखती है। क्यौँ हूँ = किसी प्रकार भी। न = देहरी-दीपवत् 'परै' और 'हितात' दोनोँ ओर लगता है। हिताना = अच्छा लगना, यहाँ पर 'सँभलना' अर्थ है। सु = सो, वह। जीवनि० = न जाने किस आशा पर जी रही हूँ। बिसास = विश्वासघात। बिसास० = आपके विश्वासघात करने पर भी प्रेम का व्रत पालती हूँ (प्रेम का निर्वाह करती हूँ)। छियौ = छूई। घनआनँद० = हे सुजान, आप कैसे आनंद के घन हैँ कि आरंभ की सूखती स्थिति मेँ सीँचकर भी अपनी छाया से भी उसे छूआ नहीँ, अपनी छाया उस पर करते ही नहीँ। करी = की। करी० = आपकी वाणी ने उसे पगली बना दिया है। कहि० = (जब) आपने उसे 'प्यारी' कहकर पुकारा। बनाय कै० = पर आप ने प्यार किया बनावटी।

[१३७] तहीँ पै = वहीँ पर, मन के भीतर ही भीतर। करौँ० = दौड़कर जाऊँ तो कहाँ ? और० = यदि जहाँ की तहाँ पड़ी रहूँ तो यहाँ रहने का स्थान नहीँ, (चारोँ ओर वेदना ही वेदना छाई है)। जोय = देख-भालकर। घर कौँ० = अब (जी) घर को उजाड़कर वन मेँ कोई स्थान खोजकर जा बसना चाहता । इस जलते शरीर मेँ रहा नहीँ जाता। अनैसौ = (अनिष्ट) बुरी, बेढब। जीवौ = जीव भी। जान० = प्रिय सुजान के बिना, उसके वियोग मेँ। जागैँ० = जागता हुआ भी सो गया है (जीव होते हुए भी बेकाम है, निर्जीव सी हो रही हूँ)। जगत = संसार; जागता हुआ। जगत० = (इस प्रकार जागते हुए भी सोते मेरे जी की दशा देखकर) जगत् (जागता हुआ संसार) मुझ पर

घनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन जागें गयौ सोय है।
जगत हँसत यौं जियत मोहिं तातें नैन!
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥ १३७ ॥

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैइ पढ़े।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, करियै कहा, सोच-प्रवाह बढ़े।
न कहूँ दरसौ, बरसौ विष-वारि सु ये अपराध-गढ़े न कढ़े।
कित कौं नित ही इत बादि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप-चढ़े ॥१३८॥

जिनकौं नित नीकें निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अँसुवान के धारनि धोवति हैं।

हँसता है। मेरी व्यथा का अनुभव करनेवाला और मेरे मर जाने पर मेरे लिए रोनेवाला इसी से कोई नहीं है, सब हँसनेवाले ही हैं। अतः हे मेरे नेत्र! तुम्हीं मेरा दुःख देखकर रोओ, फिर तो कोई रोएगा ही नहीं।

[१३८] जीवन = प्राण; जल। रूप = मय। पपीहापन = चातकता, चातकपन। घन० = हे सुजान, यदि आप जीवन-रूप ही हैं तो मेरे प्राणों ने भी पपीहापन ही पढ़ा है। दुहूँ दिसि = दोनों ओर (अपनी और आपकी)। चाहि = देखकर। करियै० = क्या करूँ। सोच० = सोच के प्रवाह बढ़ते ही जाते हैं, सोच बढ़ता ही जाता है। न कहूँ० = आप दिखाई तो कहीं नहीं पड़ते पर विष का जल (निरंतर) बरस रहे हैं। अपराध-गढ़े = अपराधों से ही बने हुए, अपराध की मूर्ति, अत्यंत अपराधी। सु ये० = (इतने पर भी) ये मेरे भारी अपराधी प्राण निकले नहीं। कित कौं = क्यों, किसलिए। बादि = इसे। कित कौं० = यदि आप चित्त पर चाव के साथ चढ़े रहते हैं (मेघ होकर छाए रहते हैं) तो इसे जलाते क्यों हैं?

[१३९] नीकें = भली भाँति। निहारति० = देखा करती थीं। तिनकौं = उनके लिए। पल० = पलकरूपी पाँवड़ों को। पायनि० = प्रिय के चरणों के दर्शन की लालसा से आँसुओं की धारा से धो रही हैं। सपने० = स्वप्न में प्रिय के दर्शन पाती हैं, उन्हें नहीं प्राप्त करतीं, पर स्वप्न में उनके चले जाने से वैरी

घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं॥१३९॥
पहिलें पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा।
इत के हित बैर लियौ उत है, करि ज्यौहरि-ब्यौहरि लोभ लहा।
घनआनँद मीत सुनौ अरु ऊतर दूर तैं देहु न देहु हहा।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा॥१४०॥
सुधि होती सुजान! सनेह की जौ, तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहिर, जौ छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू।
कहियै सु कहा अब मौन भली नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू॥१४१॥

ही वेदना उत्पन्न होती है जैसी प्रत्यक्ष में। मुँदी = ढकी। दुखहाई = दुःख की मारी। जगे० = जागने पर भी सोती हैं (खुली तो हैं पर किसी पदार्थ को देखती नहीं हैं, अतः सोई हुई हैं)। उत्तरार्द्ध में विरोधाभास है।

[१४०] मानि० = अंगीकार की। इत० = इधर के प्रेम का। उत० = उधर जाकर वैर निकाला। ज्यौहरि-ब्यौहरि = जी हरण करने के व्यापार में लाभ का लोभ करने [अथवा ज्यौहरिब्यौ० = जी हरण करना। हरि० = हे हरि]। उत्तर० = आप दूर रहकर भले ही उत्तर दें या न दें। हहा = हाय। अजू = अजी। तुम्हैं० = आपको पाकर तो मैंने सब कुछ खो दिया। खोय = मिटाकर, नष्ट करके। हमैं० = पर मुझे मिटाने से आपका क्या लाभ हुआ।

[१४१] सुधि = ध्यान, विचार। सुधि होती० = यदि आपको प्रेम का ध्यान होता तो आप मेरी सुध इस प्रकार भूल न जाते। जौ = जो, यदि। छूटि = छोड़कर। छिन० = आप क्षण भर के लिए भी बाहर न होते (मेरे ही अनुकूल आचरण करते), यदि कहीं छल छोड़कर मेरे हृदय में आए होते। दोष = स्नेह को तोड़ना। गुण = गुण की भाँति। जौ = यदि। गुन = हमारे प्रेम के गुण। न दोष० = यदि आप प्रेम के गुण गाते होते तो आपको दोष गुण की भाँति अच्छे न लगते। कहियै० = क्या कहूँ। नहीं० = हमें इस प्रकार मिटाते न। जो हमैं० = यदि आप मेरे हृदय के प्रेम को जान पाते।

कवित्त

छाया छियेँ लागति सु जागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाँहौँ न दिखाति है।
रोम रोम रही भोय रोय परौँ साँस भरौँ,
चौँकत चकत मुरझानि अधिकाति है।
जान प्यारी। दूरि ही तेँ चेटक चरित कोटि,
मति उपचारनि* की हेरत हिराति है।
तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हू सोँ,
लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है॥ १४२॥

सवैया

किहि ठान ठनौ हौ सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान करयौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भरयौ।

[१४२] छियेँ = छूने पर। सु = वह। जागति = छाती है। छाया० = चुड़ैल तो अपनी छाया के छू जाने पर किसी को लगती है और नेत्रों पर आकर छाती है। सदा० = पर तू सदा दूर ही दूर रहती है, तेरी छाया भी नहीँ दिखाई पड़ती, फिर भी लग जाती है। भोय रही० = भिनी रहती है, छाई रहती है। रोम० = चुड़ैल तो नेत्रों में जगती है, पर तू रोम रोम में छाई है। चौँकत० = चौँकते और चकपकाते रहने के कारण। मुरझानि = मूर्छा, बेहोशी। अधिकाति० = बढ़ती ही जाती है। मुरझानि० = चुड़ैल लगने पर जितनी बेहोशी होती है उसकी सीमा होती है, पर तेरे कारण हुई बेहोशी बढ़ती ही जाती है, उसकी कोई सीमा नहीँ। चेटक० = जादू। चरित = खेल। दूरि ही० = चुड़ैल पास आकर कष्ट देती है, पर तू दूर से ही जादू के से करोड़ों खेल किया करती है। उपचारनि = उपचार करने की। हेरत = देखते ही। हिराति० = खो जाती है। मति० = उपचार करने की बुद्धि भी देखते ही खो जाती है। चुड़ैल का उपचार करनेवालोँ (ओझों) की बुद्धि देखते ही बेठिकाने नहीँ होती। गति = स्थिति, ढंग। अलगी = न लगी हुई। लगी० = तू जब लगती है तब तो कष्ट देती ही है, न लगने (ध्यान में आने) पर भी कष्ट देती है। चुड़ैल लगने पर ही कष्ट देती है।

* उपचारिन। † चाह।

कवित्त

मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सों माँजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाँजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंहीं बानि देखें सुधा-
हेत मन-घट-दरकनि सुठि राँजिहौं॥१४६॥

[१४६] सिंगार = शृंगार, इसका रंग कवि-संप्रदाय में श्याम है, अतः इसे 'अंजन' कहना बहुत ही उपयुक्त है। उजारी छवि = उजली शोभा [अथवा छवि को भी शोभित करनेवाली]। आछी = अच्छी, भली। दीठि० = देखने की लालसा से भरे हुए लोचनों में। आँजिहौं = अंजन की भाँति लगाऊँगी। मूरति० = वह समय कब आएगा जब मैं तुम्हारी शृंगार-मूर्ति की छिटकी छटा को देखने की लालसा से भरे हुए अपने नेत्रों में अंजन की तरह लगाऊँगी, तुम्हारी छटा मेरे नेत्रों में निरंतर बसी रहेगी। रति० = प्रेमभरी रसना के स्वाद-रूप। पाँवड़े = पैर के नीचे का बिछौना। पुनीतकारी = पवित्र करनेवाले। पाय = पैर। रति = जिस प्रेमभरी रसना के लिए तुम्हारे पैरों का चूमना ही स्वाद का प्राप्त कर लेना है उसको स्वाद-रूप वे चरण कब मिलेंगे, जो पावड़ों को पवित्र करनेवाले हैं, और उन्हें पाकर यह रसना कब चूमेगी (यद्यपि चूमने की क्रिया ओठों द्वारा होती है, पर उसके स्वाद का अनुभव जिह्वा का ही गुण होने से कवि ने चूमने का संबंध उसी से रखा है)। कपोलनि० = कपोलों से उन्हें माँजूँगी, उन पर कपोलों को रगड़ूँगी (धूल लगे चरणों का माँजना ठीक ही है), कपोल से रगड़कर उनकी धूल साफ करूँगी। प्रान = प्राणप्रिय। अंग-अंग० = प्रिय के प्रत्येक अंग की रुचि (शोभा) के रंग में। बोरि० = अपने सब अंगों को (केवल नेत्र और रसना को ही नहीं) डुबाकर अर्थात् रँगकर। अनंग० = कामदेव से मिलनेवाला सारा कष्ट नष्ट कर दूँगी। ढरौंहीं = ढलनेवाली। बानि = आदत। ढरौंहीं० = मेरी ओर ढलनेवाली

सवैया

मो बिन जौ तुम्हैं और रुची तौ रुचै न तुम्हैं बिन मोहिं जियौ जू।
आँखिन मैं ढरिआई रहै सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू।
सूल भयौ गुन जो तिहि अंग को दीप सौं बारि बियोग दियौ जू।
हाय सुजान! सनेही कहाय क्यौं मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू॥१४७॥
हाय सनेही! सनेह सौं रूखे, रुखाई सौं ह्वै चिकने अति, सोहौ।
आपुनपो अरु आप हु तैं करि हाते हतौ घनआनँद को हौ।

मुझ पर अनुकूल होनेवाली प्रिय की टेव को देखकर, उस सुधा (अमृत) को रखने के लिए। हेत = लिए। मन० = मनरूपी घड़ा। दरकनि = फटन, टूटा-फूटा अंश। सुठि = सुंदरतापूर्वक। राँजिहौं = मरम्मत करूँगी, टाँका लगाऊँगी। ढरौंहीं० = आपकी अनुकूलता को देखकर जो अमृत-वृष्टि होगी उसे रखने के लिए वियोग में फूट गए अपने मनरूपी घड़े को ठीक ठीक मरम्मत करा लूँगी अर्थात् उस दृश्य को देखकर मेरा फटा मन जुड़ जायगा, सुखी हो जायगा।

[१४७] बिन = सिवाय। और = अपर, अन्य। जियौ = जी। मो० = यदि आपको मेरे अतिरिक्त दूसरे की प्रीति अच्छी लगती है तो मुझे तो आपके बिना (वियोग में) अपना जी भी नहीं अच्छा लगता। ढरिआई = ढलना, आँसू बहना। सु = वह (हृदय)। दुखिया = दुखी, बेचारा। गहि आस = आशा की डोर में बँधकर। आँखिन० = आँखों से तो निरंतर आँसू गिरते रहते हैं और वह बेचारा (मेरा जी) आशा में बँधा हुआ जलता रहता है। गुन = गुण; बत्ती। सूल० = उस अंग (हृदय का) गुण अब केवल पीड़ा देना रह गया है, हृदय में केवल पीड़ा पहुँचाने की विशेषता रह गई है, हृदय के इस गुण (बत्ती) को वियोग की ज्वाला ने दीपक की भाँति जला दिया है। वियोग के कारण हृदय और भी पीड़ा पहुँचाने लगा है। सनेही = प्रेमी।

[१४८] सनेह = प्रेम; तेल। रूखे = उदासीन; चिकनाहट से रहित। रुखाई = उदासीनता; रूखापन। चिकने = भिनकर; चिकनाहट-युक्त होकर। ह्वै चिकने = परिपूर्ण होकर। सोहौ = छजते हो। आपुनपो = अपनापन। करि हाते = दूर करके। आपुनपो० = मुझे अपनेपन तथा स्वयं अपने से भी दूर

कौन घरी बिछुरे हौ सुजानजू एक घरी मन तें न बिछोहौ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ १४८

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद-कला-कुलधारी।
सोभा-समूह भई घनआनँद मूरति रंग-अनंग-जिवारी।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार, बिलास मैं रासबिहारी।
मेरो मनोरथ हू बहियै, अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥१४९॥

करके मार रहे हो। कौन० = न जाने कैसी विलक्षण घड़ी (मुहूर्त) में मुझसे बिछुड़े कि मन से एक घड़ी के लिए भी नहीं हटते। मोह = प्रेम। असूझ = अलक्ष्य, न जान पड़नेवाली। अमोहियौ = निष्ठुर होते हुए भी, निर्दय होकर भी।

[१४९] श्रीकृष्ण से भक्त अपने मनोरथ पूर्ण करने की प्रार्थना करता है। जा हित = जिसके कारण। जसोदा = यशोदा (यश देनेवाली)। जा हित० = जिन आपके कारण माता का नाम 'यशोदा' पड़ा। आपकी माता का नाम 'यशोदा' आपके ही गुण के कारण पड़ा। चंद = चंद्रवंश (यदु लोग चंद्रवंशी थे)। कला = चंद्र की कला; विद्या। सुबंस० = जिन आपके द्वारा वंश का नाम 'चंद्रवंश' पड़ा, जो सब प्रकार की कला को धारण करनेवाला हुआ। आप ही के प्रभाव से 'यदुवंश' 'चंद्रवंश' हुआ, जिसमें सब प्रकार के गुण दिखाई पड़े। जिससे संबंध हो जाय उसे आप महत्त्वशाली बना देते हैं। रंग० = अनंग-रंग को जिलानेवाली अर्थात् जगानेवाली। सोभा० = आपकी मूर्ति शोभा के समूह से युक्त, अत्यंत आनंददायिनी और अनंग-रंग को जागरित करनेवाली (कामोद्दीपक) है। जान = सुजान; ज्ञानवान्। सहजै = सहज में ही, थोड़े में ही। रिझवार = प्रसन्न हो जानेवाले। बिलास० = विलास के लिए रास में विहार करनेवाले, यदि कोई आपके सहवास का अभिलाषी हो तो आप तो रासविहारी तक बन जानेवाले हैं, लीलापुरुषोत्तम हैं। मनोरथ = अभिलाषा; मनरूपी रथ। मनोरथ हू० = अपने भक्त अर्जुन के लिए उसका सारथी बनना स्वीकार किया है, उसका रथ वहन किया है। अतः आप मेरा भी मनोरथ वहन कीजिए, मेरी इच्छा पूर्ण कीजिए, उसे सिद्धि तक ले जाइए। अरु० = और मेरे मनोरथ भी पूर्ण करने लायक हैं (कोई बेढंगा मनोरथ नहीं कर रहा हूँ)। 'हू' द्वारा इसमें अत्यंयगत व्यंजना का चमत्कार

अंक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ।
देखि रहौं, अनदेखैं दहौं, सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ।
जान! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समुझै अरु काहि सुनाऊँ।
यौं घनआनँद रैन-दिना न बितीतत, जानियै कैसे बिताऊँ ॥१५०॥
गई सुधि-अंग, भई मति पंग, नई कछु बात जतावति हौ न।
दुराव कियैं कहा होत सखी! रँग और भयौ ढँग उत्तर कौ न।
हियैं धरकौ, तन स्वेद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि कौ बानि हुतौ न।
बढ़ायहै बेदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न ॥१५१॥

कवित्त

कहौं जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
म्हानै मन बारे की कहैऽब को सुनै सु कान।

है। इस शब्द से ही अर्जुन की सारी कथा स्वतः आक्षिप्त हो जाती है।

[१५०] अंक० = गोद में भरती हूँ, आलिंगन करती हूँ। चकि० आप नहीं हैं यह ध्यान आते ही चकपकाकर चौंक उठती हूँ। लरौं = कलह करती हूँ। छिन हीं० = क्षण भर में ही। सुख० = यदि यह सुन लूँ कि आप मिल जायँगे तो सुखपूर्वक सारा सोच (दुःख) सह लूँ। सौं = शपथ। जानियै = आप ही समझिए।

[१५१] सखी ने नायिका का प्रेम लक्षित कर लिया है, वह नायिका से प्रश्न कर रही है। गई० = शरीर की सुधि भूल गई। भई० = बुद्धि भी लँगड़ी हो गई, ठिकाने नहीं है। नई० = और तुम इतने पर भी कह रही हो कि मुझे कुछ हुआ ही नहीं, कोई नई बात ही नहीं। दुराव = छिपाव। रँग० = मुख का रंग दूसरा (विवर्ण, पीला) ही हो गया। उत्तर देने का कोई ढंग भी नहीं दिखाई देता। रंग-ढंग विलक्षण ही है, तुम्हारे पास इसका कोई उत्तर नहीं है कि ऐसा हुआ क्यों। धरकौ = धड़कन। स्वेद जग्यौ = पसीना हो रहा है। हुतौ न = थी नहीं। अरु० = जैसी जँभाई तुम ले रही हो ऐसी तुम्हारी बान कभी देखी नहीं गई। जौ न० = यदि कहीं। बढ़ायहै० = कहीं घनआनँद तो तुम्हारे चित्त पर नहीं चढ़े हैं, यदि कहीं ऐसा होगा तो वेदना बहुत बढ़ जायगी, अतः सच्ची सच्ची बातें बता दो।

निधरक जान अलबेले निखरक ओर,
दुखिया कहैऽव कहा तहाँ कौं उचित है न।
पर-दुख-दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
ढरकौँहैँ देखि कै बिवस बकि परी मौन।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास सौँ मिलाय हू सकत पौन ॥१५२॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखाई, मरौँ, इत की तौ चिन्हारि रही न उनै।
रुचि कौन से बात लियौ है हियौ, बिन हेरेँ न जीव बिचारि गुनै।

[१५२] अँदेसो = अंदेशा, खटका। आहि = है (अवधी)। वारे० = वारने की (बात)। कहैऽव = कहै अब। न्हाने = छुटपन से ही। कहैऽव० = मेरे मन वारने की बात (संदेश) अब कौन प्रिय से जाकर कहे और कौन सुने। सुनै० = ऐसा कौन है जो सुने। सु = सो, वह। निखरक = बेखटके रहनेवाले के प्रति मैं दुखी अब क्या संदेश भेजूँ। मैं संदेश अपने दुःख का ही दूँगी और यह वहाँ के लिए उचित नहीं होगा, क्योंकि मेरे दुःख के संदेश से उनकी निश्चितता में बाधा ही पड़ेगी। पर० = दूसरे के दुःख-समूह के नाश के लिए हे पवन ! तू प्रभंजन (अंधड़) बनता है। दल = समूह ; पत्ते। ढरकौंहैं० = ढलता हुआ, अनुकूल (पवन की प्रवृत्ति अनुकूल रहने की है)। मौन० = मैं तो मौन थी, पर तुझे अनुकूल देखकर विवश होकर बोल पड़ी। भसम = भस्म करनेवाली ; राख। लालन० = प्रिय की सुगंध लाकर उससे मिला भी सकते हो। तुम दोनों काम कर सकते हो, भस्म उड़ाकर ले भी जा सकते हो और सुगंध ला भी सकते हो। मेरी भस्म (दाहक) रूप दशा इस प्रकार वहाँ पहुँच सकती है और उनका पता मुझे मिल सकता है। 'गंध मिलना' मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'पता चलना'। यहाँ दुहरे अर्थ में इस मुहावरे का प्रयोग किया गया है।

[१५३] मुख-नेह = मौखिक स्नेह या मुखदेखा स्नेह। मुख० = तुम्हारे मुँहदेखे स्नेह (प्रेम, तेल) की रुखाई (उदासीनता ; रूखापन) दिखाई पड़ गई (विरोधाभास) इसी लिए मैं मर रही हूँ। चिन्हारि = जान-पहचान।

घनआनँद ऐसी दसानि बिरयौ दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै।
अब ऐसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥१५३॥

कवित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसें सोयवे कौं घर कै रहे।
गुपत लपट जाकी तन ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अर कै रहे।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक विकार भर कै रहे।
बारिद-सहाय सौं दवागिनि दवति देखौ,
बिरह-दवागिनि तें नैना झर कै रहे ॥१५४॥

उनै = उन्हें। इत कौ० = यहाँ की (मेरी) तो उन्हें जान-पहचान ही भूल गई है। घात = दाँव, छल। रचि० = न जाने कैसी घात रचकर मेरा हृदय ले (चुरा) लिया है। विन० = आपको विना देखे मेरा जी जीने का विचार ही नहीं करता। सीस० = सिर पीट रहा है। उन० = उन सुजान ने मुझे मार डाला। दई = दैव। कूक० = चिल्लाती हूँ, रोती हूँ।

[१५४] अंतर० = हृदय के भीतर। जगी = विरह की दावाग्नि प्रज्वलित रहती है। तहाँ० = वहाँ आप सोने के लिए घर कैसे बना रहे हैं (जहाँ आग जगी रहती है वहाँ सोना विरोध है)। मैं तो आपके विरह में रोती कलपती रहती हूँ और आप सोए ही रहते हैं, मेरे विरह की आग या रोना-कलपना आप को प्रभावित नहीं कर पाता। गुपत० = उस दावाग्नि (शरीर के भीतर) की गुप्त लपटें शरीर से ही (उसके छूने मात्र से) जान पड़ती हैं (शरीर में इतना ताप है कि उसे छूकर ही भीतर की आग की कल्पना की जा सकती है)। जब वाहर यह दशा है तो भीतर न जाने क्या दशा हो। जतननि० = यत्न करने से यह उलटे वढ़ती है। गुरु० = वड़े बूढ़े लोग। अर० = इसे शांत करने के लिए अड़े हुए हैं, पर व्यर्थ। सीरी = ठंढी। सीरी० = (इस आग की विलक्षणता यह है कि) इसके कारण रोएँ रोएँ में ठंढक पड़ जाती है, मेरे रोएँ रोएँ में शिथिलता बढ़ती जा रही है, मैं ठंढी पड़ती जाती हूँ, मरी जा रही हूँ (आग

सवैया

जान छबीले कहौ तुम ही जौ न दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ।
स्रौन*सुधाई सनी बतियानि।बिना इन काननि लै कहा प्याऊँ।
हाय मरयौ मन पीर तेँ प्रीतम ! या दुखियाहि कहा परचाऊँ।
चाहत जीव धरयौ घनआनँद रावरी सौँ कहूँ ठौर न पाऊँ ॥१५५॥
निसथौस उदास उसास थकौँ न सकौँ तजि आस बिसास जकी।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौँ सूझत एक टकी।

मेँ 'सीरी' विरोध है)। और० = और भी न जाने कितने ही (करोड़ों प्रकार के) विचित्र विचित्र रूप-रंगवाले इसके विकार मेरे शरीर से भर रहे हैं। वारिद० = बादल की सहायता (जलवृष्टि) से वह दावाग्नि शांत हो जाती है, किंतु यह विलक्षण दावाग्नि है, शांत होने की कौन कहे यह तो आप ही नेत्रों से आँसू बरसाती रहती है (विरोधाभास)।

[१५५] न दीसौ = न दिखाई पड़ो। आँखिन० = इन आँखों को किसे दिखाऊँ (यदि आप ही नहीं दिखाई पड़ते तो ये आँखें और किसे देखें)। स्रौन० = श्रवणामृत से सनी हुई आपकी बातों के बिना इन कानों को और क्या पिलाऊँ (आपकी बातों के बिना ये किसी दूसरे की बातें सुनना ही नहीं चाहते)। मरयौ० = हे प्रियतम, मेरा मन वियोग की पीड़ा से मर रहा है। परचाऊँ = बहलाऊँ, लगाऊँ। या० = इस बेचारे दुखी मन को किस प्रकार बहलाऊँ। धरयौ = धारण करना; आश्रय लेना। चाहत० = मेरे प्राण किसी आश्रय को पाकर टिकना तो चाहते हैं पर उन्हें टिकाव के लिए कहीं स्थान (आश्रय) ही नहीं मिलता।

[१५६] उसास = उच्छ्वास की गरम वायु से। थकौं = थिकती, जलती रहती हूँ। बिसास = विश्वासघात। बिसास० = विश्वासघात के कारण मैं स्तब्ध सी हो गई हूँ (फिर भी आशा नहीं छोड़ सकती)। एक टकी = केवल प्रिय का मार्ग देखने के लिए टकटकी लगाए रहना ही ध्यान में आता है और कुछ नहीं। इत की० = यहाँ की दशा, मेरी दशा। मन ही० =

* कौन।

इत की गति कौन कहै को सुनै मन ही मन मैं यह पीर पकी।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हूँ की थकी॥१५६॥

प्यारे सुजान के पानि को मंडन खंडन खेद*अखंड-कला को।
ज्यौं सरस्यौ †जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-भला को।
सूछम सो, पै भरयौ अतुलै सुख रंग विभौ जुग नैन-पला को।
प्रीतम लौं हिय राखत हाथ, बिछोह मैं ज्यावत मोह छला को॥१५७॥

घूमत सीस लगै कब पायनि चायनि चित्त मैं चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे करि थान, सुजान! सुमूरति माँगत तेरी।

मन के भीतर ही यह पीड़ा परिपक्व हो गई है। भरियै० = व्यथा के ये दिन किस प्रकार काटूँ। कहा० = क्या करूँ। गैल = रास्ता, मार्ग। थकी = बंद हो गई।

[१५७] प्रिय के विदेश चले जाने पर उसकी अँगूठी प्रेमिका के पास रह गई है, उसे देखकर यह कह रही है। पानि = हाथ। मंडन = शोभित करनेवाला, गहना। खेद० = दुःख के पूर्ण अभाव को (नष्ट कर देनेवाला)। ज्यौं० = मेरे जी ने जब इसे देखा तो प्रसन्न हुआ, इसने प्रेम की झड़ी लगा दी। अतुलै० = जो तोला न जा सके, अत्यधिक। जुग = दो। पला = पलड़ा। सूछम सो० = है तो यह छला (मुद्रिका, अँगूठी) छोटा सा ही पर इसमें दोनों नेत्ररूपी पलड़ों के लिए सुख-रंग का अतुल वैभव भरा हुआ है, नेत्र इसकी तौल कर ही नहीं पाते, वे इसका मूल्य बहुत अधिक आँकते हैं। प्रीतम० = प्रियतम की भाँति यह मन को हाथ में रखता है (बचाए हुए है)। [अथवा प्रियतम की भाँति अपने हाथ से इसे हृदय से लगाए रखती हूँ]। बिछोह० = वियोग में अँगूठी का प्रेम ही जिला रहा है।

[१५८] घूमत० = मेरा यह चक्कर खाता हुआ सिर चाव के साथ कब उनके पैरों से जा लगे, केवल इसी की चित्त में प्रबल इच्छा है कि कब उनके चरण आएँ और मैं उनपर अपना सिर रखूँ। आँखिन० = केवल आँखों में ही प्राण रह गए हैं। इनमें ही सजीवता है, क्योंकि इन्हें आपके दर्शन की

* वैद, वेद। † तरस्यौ।

रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रोर न जाति निवेरी।
भूलनि जीतति आपुनपो बलि, भूलौ नहीं सुधि लेहु सवेरी ॥१५८॥
ललचौंहीं लगौंहीं,भईं तुमसौंहीं इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीं।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी ह्वै अरराय परीं।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैं मिलैं गाढ़-जँजीर-जरीं।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं॥१५९॥

कवित्त

सुरति करौं तौ बिसरे जौ होहिँ जान प्यारे,
ये तौ चित-चढ़े, रंग-मूरति महा रहैं।

उत्कंठा है। ये आपकी वह सुंदर मूर्ति अपने निकट माँग रही हैं, उसे देखती रहना चाहती हैं। रोर = शोर, हलचल। रोम ही० = काम की हलचल रोएँ रोएँ में हो रही है, इससे किसी तरह छुटकारा नहीं मिल पाता। बलि = बलिहारी। सवेरी = शीघ्र [अथवा 'सुधि' का विशेषण मानें तो 'वह सुध जो शीघ्र ली जाय']। भूलनि० = आपका भूलना मेरा अपनापन भी जीत लेता है। (इस असंगति या विलक्षणता की) बलिहारी है, आप मुझे भूलें न, शीघ्र ही सुध लें। 'भूलनि०' में असंगति अलंकार व्यंग्य है—भूलते तो आप हैं और उसका प्रभाव मुझपर होता है (मैं अपनापन भूल जाती हूँ)।

[१५९] ललचौंहीं० = इधर तो सुख के अभिलाष से भरी मेरी आँखें जो ललचने और लगनेवाली थीं तुम्हारे संमुख हुईं। उत० = उधर आप भी सौंदर्य के निधान (भांडार) दिखाई पड़े। ये० = ये पगली होकर (आप को देखने के लिए) टूट पड़ीं। बिछुरैं० = बिछुड़ने और मिलने दोनों दशाओं में। गाढ़ = गाढ़ी, कड़ी। जँजीर० = जंजीर से जकड़ गईं, बंधन में पड़ गईं। जीवन० = हे प्राणों के भी प्राण (प्राणप्रिय), ये संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में घोर बंधन में पड़ी रहीं। न देखन० = तुम्हें न देखते हुए भी। अरीं = अड़ी हुई हैं। इनकी० = (संयोग की अवस्था तो बतला चुकी अब वियोग की अवस्था सुनिए) इनकी दशा तो देखने लायक हो रही है कि आपको प्रत्यक्ष न देखने पर भी ये आँखें आपको देखती हुई अड़ी रहती हैं—इनका यह तमाशा देखने ही योग्य है।

सुधि करैँ वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
बेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैँ।
गूढ़ गति ब्यौरिबे* की भूलियौ सुरति मोहिँ,
रातिद्योस छाए घनआनँद घटा रहैँ।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिँ,
सुधि तिन ही मैँ तेई सुधि मैँ सदा रहैँ ॥१६०॥

सवैया

जब तेँ तुम आवन-आस दई तब तेँ तरफौँ कब आयहौ जू।
मन-आतुरता मन ही मैँ लखौ मनभावन! जान सुभाय हौ जू।

[१६०] सुरति० = उनकी सुध तो मैँ तब करूँ जब उन सुजान प्यारे को भूली होऊँ। वे तो क्रीडा की मूर्ति निरंतर चित्त में चढ़े ही रहते हैँ, भूले जाते ही नहीँ। सुधि करैँ० = मेरी सुध की सँभाल वे (प्रिय) ही करते हैँ, मुझे अपनी सुध की भी सँभाल नहीँ रहती अर्थात् मुझमेँ सुध है ही नहीँ, इसी से वे मेरी सुध की सँभाल ऐसी करते हैँ कि मुझे अपनी भी सुध भूल जाती है। बेसुधि० = मेरी सुध में वे इस प्रकार रहते हैँ कि मैँ बेसुध रहती हूं, ये रहते तो मेरी सुध में ही हैँ पर मुझे बेसुध किए हुए। गूढ़० = उनकी गूढ़ (रहस्यमय) चाल का विचार करने की सुध भी मुझे भूली हुई है, उनकी गूढ़ता को समझने की सुध-बुध मैँ खो बैठी हूँ। राति० = पर वे आनंद-घन रातदिन मेरे मन में अपनी घटा छाए ही रहते हैँ। यद्यपि मैँ सुध-बुध खो बैठी हूँ तथापि वे मेरे चित्त मैँ निरंतर विराजते रहते हैँ। सुधि० = मुझे अपनी सुध कभी नहीँ आती, पर वे थोड़ा भी भूले नहीँ जा सकते हैँ। सुधि तिन ही० = मेरी सुध उन्हीँ में बसी है और मेरी सुध मैँ वे ही बसे हुए हैँ।

[१६१] मन-आतुरता० = मेरे मन की व्याकुलता अपने मन से ही अनुभव करके समझ लीजिए क्योँकि आप स्वभाव से ही चतुर हैँ। बिधि० = प्रतीक्षा के ये क्षण ब्रह्मा के दिन की भाँति बढ़ गए हैँ। एक एक क्षण बीतता नहीँ। यह समझकर (इस पर विचार करके) आप शीघ्र से शीघ्र वियोग दूर

* धारिबे।

बिधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि बियोग बितायहौ जू।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं बरसायहौ जू ॥१६१॥

अभिलापनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं।
घनआनँद जान सुधाकर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं।
जब तैं तुम आवनि-औधि बदी तब तैं अँखियाँ मग माँपति हैं ॥१६२॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तैं तुम आवनि-औधि बदी।
बरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन-मदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी ॥१६३॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रबीनन की।

करने का उपाय करेंगे। रसा = पृथ्वी। सरसौ० = हे आनंद-घन मेरे लिए तुरंत आकर उस रस (प्रेम ; जल) की धारा बहाइए जिसे प्रेमपूर्वक आप पृथ्वी पर बरसनेवाले हैं।

[१६२] अभिलापनि० = लाखों प्रकार के अभिलाषों से भरी हुई। बरुनीन = बरौनियाँ जो खड़ी रहती हैं और हिलती हैं यही इन आँखों का रोमांच और कंप है। चाहनि = प्रेमपूर्वक। अंक मैं० = आलिंगन करती रहती हैं। टग० = टकटकी लगाकर। चकोर० = चकोर की उमंग को भी ढक लेती हैं, इनकी उमंग के आगे चकोर की उमंग दब जाती है (प्रतीप अलंकार)। बदी = निश्चित की, ठहराई।

[१६३] मग० = आपका मार्ग देखते देखते मेरी दृष्टि खो गई। कित हूँ = कहीं दूसरे स्थान पर। इत = मेरे यहाँ (असंगति अलंकार)। च्वावत = टपकाता है। हियरा० = हृदय को व्याकुलता की आँच में औटकर काम आँसुओं के रूप में मदिरा टपका रहा है। बहीर० = सेना का सामान। बैस = (वयस्) उम्र। लद जाना = बीत जाना (जैसे 'दिन लद गए, जमाना लद गया')। बहीर लौं० = उम्र तो सामान की भाँति लदी जा रही है (ढलती जाती है)।

बरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की ।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की ॥१६४॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन कौं रति के मन हौ ।
सब ही बिधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोषन, तोषन रंक महा धन हौ ।
जन-सोच-बिमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥१६५॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै ।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देखि जीजियै ।

---

[१६४] गति = आश्रय । पति = प्रतिष्ठा । जीवन = जल ; प्राण । सरसौ = सरस करो, हरी भरी करो (सुध लो)। छीन = (क्षीण) दुर्बल । मृदु० = आप तो मनरूपी चातक के पन पर मृदु चित्त रखनेवाले, प्रेम के समुद्र तथा प्रभूत वृष्टि करके (नेत्ररूपी) मीनों की रुचि (इच्छा पूर्ण करनेवाले) हैं ।

[१६५] गतिहीन = पंगु, लाचार । पतिलीन = जिनकी प्रतिष्ठा लीन हो गई हो, प्रतिष्ठाहीन । रति० = प्रेम के मन हो अर्थात् उनके प्रेम को समझनेवाले हो । कृपा-तन = मूर्तिमती कृपा हो । पोषन = पोषण करनेवाले (आनंद के बादल हो)। तोषन० = रंक को तोष देनेवाले आत्मिक धन हो । जन० = सेवक या उपासक का दुःख दूर करनेवाले । पूरन० = पूर्ण-काम (जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों)। भरे० = प्रतिज्ञा से भरे हुए, प्रतिज्ञा पालन करने में सच्चे, अपने बाने का निर्वाह करनेवाले ।

[१६६] अमान = प्रमाण से परे या निरभिमान । दान० = दान को ही मान माननेवाले, भारी दानी । समान० = किससे आपकी समता की जाय । रसाल = मधुर रस से भरे हुए (खारे नहीं)। खरे० = विश्वास के खरे, विश्वास के सच्चे । जीजियै = जीती हूँ । दगा० = आपको देखने की टकटकी लगी है । लौं = ओर । सु आप० = जरा अपनी ओर तो देखिए. अपने बड़प्पन का तो विचार कीजिए ।

टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौँ निहारियै,
समीप ह्वै विहारियै उमंग-रंग भीजियै।
पयोद-मोद छाइयै, विनोद कौँ वढ़ाइयै,
विलंव छाड़ि आइयै कियौँ वुलाय लीजियै ॥१६६॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान ! दई वहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौँध मैँ चौँध भरे चख हाय ! कहा कहौँ हेरनि ऐसेँ हिराई।
वातैँ विलाय गईँ रसना पै हियो उमड़्यौ कहि एकौ न आई।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई॥१६७॥

कवित्त

जीवहि जिवाय नीकेँ जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहिँ जथारथ करत हौ।
चिर जीजै दीजै सुख कीजै मन-भायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन की निधि कौँ धरत हौ।

पयोद-मोद = मोद का वादल ; घनआनंद। 'अनंगशेखर' छंद में क्रम से लघु-गुरु वर्ण रखे जाते हैँ। इनमेँ प्रायः १६ वार लघु-गुरु रखते हैँ।

[१६७] अन्वय—रूप रसीले सुजान ! नेकु दिखाई वहुतै दिन चेटक दई। रूप = हे रसीले रूपवाले सुजान, तुमने थोड़ा सा दिखाई देकर (अपनी थोड़ी सी झलक दिखाकर) वहुत दिनोँ तक के लिए मेरे ऊपर जादू डाल दिया। कौँध = चमक। चौँध = चकाचौँध, तिलमिली। भरे = भर गए। चख = (चक्षु) नेत्र। हेरनि० = मेरी दृष्टि योँ ही (विना कुछ देखे ही) खो गई। हिय० = हृदय उमंगित तो हुआ पर जीभ से कुछ कहा नहीँ गया। साँच = सत्य। संभ्रम = भ्रम मात्र, धोखा ही धोखा। सोचनि० = सोचने मेँ ही वुद्धि विलीन होती जा रही है।

[१६८] जीवहि० = तुम जी को जिलाना भली भाँति जानते हो। जथा-रथ = सत्य, सार्थक। याही० = जी जिलोने के ही गुण से आप अपना नाम (सुजान—'जान' अर्थात् जी के लिए जो 'सु' = साधु अर्थात् अनुकूल हो) सार्थक करते हैँ। चिर जीजै = चिरंजीवी होओ। निधि = खजाना, थाती। सफल = फलयुक्त;

चाह-बेली-सफल-करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर-आलवालहि भरत हौ।
प्यारे! सौं छकौंहीं ढरकौंहीं मृदु बानि-बस
बिबस ह्वै आप ही तें मो पर ढरत हौ ॥१६८॥

सवैया

मुख-चाहनि कौं चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना।
घनआनँद जान तुम्हैं बिन यौं गति पंगु भई मति धावति ना।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ बिना सुधि आवति ना।१६९

कवित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले,
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तें।
जीवन-बरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख सींच्यौ हँसि जोहतें।

पूर्णमनोरथ। रस = जल; प्रेम। आलवाल = थाला। छकौंहीं = छका देनेवाली। ढरकौंहीं = ढरकनेवाली, अनुकूल होनेवाली; नीचे की ओर ढुलकनेवाली (मेघ या जल के पक्ष में)। बिबस० = मैं आपको पाने की अधिकारिणी नहीं हूँ, पर आप अपने मृदु स्वभाव से विवश होकर मुझपर स्वयं अनुकूल हो जाते हैं।

[१६९] चाहनि० = देखने के लिए। चाहनि = दृष्टि। चख० = दृष्टि को कोई वस्तु देखना नहीं रुचता। साँस० = साँस लेना नहीं रुचता। गति० = हिलना-डुलना भी कठिन है। मति० = बुद्धि काम नहीं करती। सुधि० = आपने अपनी सुध (समाचार) देने की बात कही थी, मैंने भी आप की सुध (पता) लेनी चाही। इसीलिए आपकी सुध (खोज) मिले बिना मुझे सुध (होश, चेतना) नहीं आती (मैं अचेत ही रहती हूँ)।

[१७०] रंगनि० = रंग में ढले हुए, रंग से भरे हुए। छकीले० = प्रेम के मद से छके हुए, प्रेम के नशे में चूर। जीवन = जल; प्राण। बरस = वर्षा। सरस = आनंदप्रद। परस = स्पर्श। सुख० = हँसकर मेरी ओर निहारते हुए आपने मुझे सुख से सींच दिया था। अचिरजनिधि = आश्चर्य के भांडार।

अचिरजनिधि ! हौं तिहारी सब विधि, प्यार !
कृपा होति, फलति ललित लता छोह तें ।
मिलन तें ज्यौं ही बिछुरन करि डारयौ, वारी
त्यौं ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तें ॥१७०॥

सवैया

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढ़ै कि जियैं गहि काढ़ै ।
अमीनिधि पै विप-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढ़ै ।
सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढ़ै ।
वियोग मैं बैरिनि बाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हूँ बाढ़ै ॥१७१॥
जान सुखारे रहौ रहि आए हौ, होति रही है सदा चित-चीती ।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि विचारि कै जाति रची ती ।

हौं० = मैं सब प्रकार से आपकी ही हूँ । कृपा० = यदि आपकी मुझपर कृपा हो जाय तो आपके प्रेम से (प्रेम पाकर) मेरी जीवन-लता भली भाँति सफल हो जाय, मेरा जीवन सार्थक हो जाय । ज्यौं ही = जिस तरह । वारी = मैं बलिहारी जाती हूँ । किन० = क्यों नहीं करते ।

[१७१] रजनी० = रात की दशा (कष्ट) । जियैं = जी को ही । गहि० = पकड़कर निकाल लेता है । अमीनिधि० = चंद्रमा अमृत का भंडार (सुधाधर) होकर भी विप का सार टपका रहा है । हिम-ज्योति० = शीतल ज्योतिवाला होने पर भी । जगाय कै = प्रकाशित करके । डाढ़ै = जलाता है । या = इस रात्रि को । पति० = पति के साथ (संयोग में) यह पता ही नहीं चलता था कि कब रात आई और कब निकल गई । है० = पर इस समय प्रिय के वियोग (की विपत्ति के) कारण यह कठिनता से बीतती है । बैरिनि = यह रात्रि । कछू० = उसका और मेरा कुछ भी न घटे, कोई हानि न हो । जु० = यदि संयोग में भी यह ऐसी ही बढ़े ।

[१७२] सुखारे = सुखी । रहि० = सुखी ही रहते आए हो । चित० = मनचाही । धुर की० = अत्यधिक । दुखहाई = दुःख की मारी । बिरंचि = ब्रह्मा ने । जाति० = स्त्री की जाति । रची ती = बनाई थी [अथवा—ती जाति रची = स्त्री की जाति बनाई] । मन दै = मन लगाकर, भली भाँति । अनीती =

प्रान-पपीहन के घन हौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियेँ, हित की गति कौं सुख सौं नित बीती॥१७२॥

जित चाहत हौ तित जाय मिलैं, चित रावरो कोबिद-केलि-कला।
जिनकौं तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरैं बपुरी अबला।
घनआनँद जान! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-झला।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला॥१७३॥

कवित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान कौं पै
ढकी लाग-आग की लपेटैं जीव ही सहै।
वे तौ गौँ-गवेले, हौं गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैं छैल भए नए लेस ताहू को न है।

अनीति, अन्याय। जानौ० = आप क्या जानें और किस प्रकार हृदय में अनुमान ही कर सकें। हित० = प्रेम की दशा। सुख० = आपकी तो सदा सुख से ही बीतती आई है।

[१७३] चित० = आपका चित्त केलि की कला में प्रवीण है। भोरि = भुलावे में डालकर। बिसास = विश्वासघात। न साँस० = साँस भी नहीं ले सकती, निर्जीव हो जाती है। बपुरी० = बेचारी स्त्री, प्रेमिका। उनए से० = छाए हुए से। नए = झुके हुए [अथवा नवीन]। नेह० = प्रेम की झड़ी। नटनायक = नटनागर, नटों में शिरोमणि। लायक = योग्य, प्रवीण। मायक = मायावी। गति० = आपकी चाल का पता ही नहीं चलता। लला = प्रिय।

[१७४] घनआनँद = आनंद के बादल, शीतलता देनेवाले। ढकी = छिपी, भीतरी। लाग० = प्रेम की आग। लपेटैं = झकोरों को। जीव० = जी ही सहता है। गौँ-गवेले = अपनी घात से चलनेवाले। हौं० = मैं जो रास्ता पकड़ाती हूँ उस रास्ते से नहीं चलते। रहैं० = वे नए छैला बने घूम रहे हैं। लेस० = उनमें तो प्रेम का लेश भी नहीं है। पातनि० = वे तो पत्तों को देखते हैं, जड़ को भूले हुए हैं और व्यर्थ फूले फूले घूमते हैं (उनमें सच्चा प्रेम नहीं है, वे केवल ऊपर की शोभा देखनेवाले हैं, हृदय को देखने या पहचाननेवाले

पातनि तकत मूल भूले फिरैं फूले वृथा,
आली ! वनमाली जू के फल की कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्वाँ घर बसे, ह्याँ उजारि बसि को रहै ॥१७४॥

उघरि दुरे हौ, नीकैं मिलन उरे* हौ, गाढ़े
रंगनि घुरे हौ घनआनँद सुजान जू।
उर बैठि दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
हँसि हँसि ग्वावत हौ, छाँहौं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तैं आन जू।
सूझत हौ बूझत हौ चाहत हौ भाखत हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ बखान जू ॥१७५॥

नहीं)। फल० = उनके फल (कार्यकलाप के परिणाम) की क्या बात। आवरी = व्याकुल। बावरी = पगली। तावरी० = मूर्छित क्यों होती है। ते० = वे तो वहाँ घर बसा रहे हैं, दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। ह्याँ० = यहाँ उजाड़ में बसकर कौन रहे? इस दुःख की दशा मुझसे अब तो नहीं सही जाती।

[१७५] उघरि० = एक बार अपनी छटा दिखाकर छिप गए हैं। उरे = पृथक्, दूर। नीकैं० = मिले हुए भी दूर हैं। गाढ़े० = गाढ़े रंग में घुले हैं, बड़े गहरे दाँव-घातवाले हैं। उर० = हृदय में पैठकर जलाते हैं। चाहनि० = देखने में प्रेम करते से जान पड़ते हैं (पर वस्तुतः आपमें प्रेम है नहीं। ऊपरी प्रेम दिखाते हैं)। घात० = अपना दाँव ही साधते रहते हैं। हँसि० = स्वयं हँस-हँसकर हमें रुलाया करते हैं। छाँहौं० = अपनी छाया भी नहीं छूने देते, आपके मन का कुछ भी पता नहीं चलता। जागि० = स्वयं जगकर (सतर्क रहकर) दूसरों को सुलाते (बेसुध किए) रहते हैं। आपै० = अपनत्व से भी पराए बने रहते हैं। अपने को भी नहीं पहचानते। सूझत० = दिखाई देते हैं और दूसरे को देखते हैं, स्वयं समझते हैं और समझकर कहते हैं। रहत० =

* बुरे।

नीके नए अति जी के लगैंहँ सुधारे हैं तून प्रसून के सायक।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहोरि दै हाथ सच्यौ भटनायक।
पौन-तुरंग चढ़्यौ बनि यौं बनितानि अहेरैं कढ़्यौ दुखदायक।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥१७६॥
नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुथरे सुखदायक हौ।
घनआनँद झूमि कटाछन सौं, रसपान-तृषाहि सहायक हौ।
जिय-बेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सुधारन लायक हौ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियैं निपटै निबटे नटनायक हौ ॥१७७॥
सब ठौर मिले, पर दूरि रहौ, भरिपूरि रहे जिहि रंग भिलौ।
इहि लायक हौ वहौ* नायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ।

स्वयं रहते भी हैं और दूसरे को रखते भी हैं। मौन० = क्या कहूँ आपका बखान तो मौन ही है, आपका वर्णन कर सकना संभव नहीं। आपके हृदय का पता लगा लेना बहुत कठिन है। आप अनिर्वचनीय हैं।

[१७६] नीके = अच्छे, जो टूटे नहीं हैं। अति० = हृदय पर गहरी चोट करनेवाले। सुधारे० = तरकस में सजाकर रख लिए हैं। प्रसून० = फूलों के बाण। चाप = धनुष। चहोरि दै = सहेजकर, सँभालकर। भटनायक = योद्धाओं का नेता बनकर। पौन० = वायुरूपी घोड़े पर। बनि = बन-ठनकर, सज-धज के साथ। बनितानि० = स्त्रियों का शिकार करने के लिए। कढ़्यौ = बाहर निकला है। रितुराज = वसंत। रतिराज = कामदेव।

[१७७] नेत्रों का वर्णन है। हित० = प्रेम की ढार से ढरकनेवाले। निखरे० = साफ-सुथरे, स्वच्छ। झूमि० = कटाक्षों के मद से झूमनेवाले। रसपान० = रसपान की प्यास बढ़ानेवाले हो (देखने पर देखने की इच्छा बढ़ती है)। बेधन० = छेदने के लिए। अनियारे = अनीवाले, तीखे। सुधा० = सुधा धारण करनेवाले बाण। घिरि० = घूँघट से घिरे रहने पर भी। जान = प्रिय। हियैं = हृदय में। निपटै = अत्यंत। निबटे = पूरे, पहुंचे हुए।

* वहु।

घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ।
हम और कछू नहिं चाहति हैं छिनकौं किन मानस-रूप मिलौ॥१७८॥
हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी।
पटक्योई*परै यह अंकुर आँसलो†ऐसी कछू रस-रीति घुरी।
बिछुरेँ कित सांति मिलेँ हू न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी।
तुम ही तिहि साखि‡सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी।१७९
नाहिँ पुकार करै सुनि आहिन, को कित है केहि दोष लगैयै।
संगम पै बिछुरे मरियै, यहि भाँतिन क्यौं जियराहि जरैयै।

[१७८] मिले = मिले रहने पर भी। भरि० = भली भाँति घुल-मिल जाते हो। झिलौ = लीन हो जाते हो। वहौ० = उस पर भी आप स्वामी हैं। पुनि० = फिर आपको पाकर खिलूँ, सुखी होऊँ। ऊखिल = अपरिचित (ब्रज की बोलचाल का शब्द), अजनबी, पराए, बेगाने। हेत० = प्रेम करते हो। कहूँ० = कहीँ तो अपरिचित बने रहते हो और कहीँ प्रेम ठानते हो। छिन कौं = क्षण भर के लिए ही। मानस-रूप = मेरे मन में आपका जैसा रूप है, मैं जिस रूप में आपको चाहती हूँ, मेरी जैसी भावना है।

[१७९] दुरी = छिपी। पटक्योई० = फूटा पड़ता है, निकल रहा है। आँस = वेदना, पीड़ा। आँसलो = वेदनावाला [अथवा आसलो = असली]। ऐसी० = हृदय में रस (प्रेम; जल) की आर्द्रता ऐसी घुल रही है कि वेदना का अंकुर फूटा पड़ रहा है। बिछुरेँ० = वियोग की क्या बात, मिलने पर भी शांति नहीँ मिलती, संयोग और वियोग दोनोँ में अशांति ही बनी रहती है। छिदी० = व्याकुलता की छुरी से हृदय छिद गया है। साखि = साक्षी।

[१८०] नाहि० = कोई ऐसा नहीँ दिखाई पड़ता जो मेरी आहों को सुनकर उन पर ध्यान दे। को० = कौन कहाँ है (कोई नहीँ), दोष भी दूँ तो किसे दूँ। संगम = हृदय में आपका संयोग रहने पर भी वियोग से मर रही हूँ। ओटनि० = आप के ओट में रहने (परोक्ष होने) की मार से। हो = खेदव्यंजक अव्यय। मो० = इस प्रकार यदि भीतर रहते हुए भी मुझसे पृथक् रहते हैं तो

* टपक्योई। † ओस लौं। ‡ साधि।

ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै।
ह्वै घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥१८०॥
आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहिं लौटनि।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि।
अंग भए पियरे पट लौं मुरझै बिन ढंग अनंग सरौटनि।
हौं सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥१८१॥
कैसैं करौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे-हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहैं प्रान, कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।
चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकौ मिलि क्यौं बहुतै दुख देत हौ॥१८२॥
जान हौ ए जू जनाहु कहा, न गए कित हूँ जु कहाँ इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत क्यौं उर तें कढ़ि यौं उर मैं कब छायहौ।

बाहर आकर प्रत्यक्ष ही क्यों नहीं दिखाई पड़ते। सुखैयै = आनंद के घन और 'सुजान' होकर आप प्रेम का खेत क्यों सुखा रहे हैं।

[१८१] आवत० = आते ही, मन आया ही था कि ('मन आना' मुहावरा है—'किसी पर मन का मुग्ध हो जाना')। करी० = फिर लौटा ही नहीं, गया सो गया। रैनि० = करवटें बदलती रहती हूँ, रात किसी प्रकार बीतती ही नहीं। पट० = (पीले) वस्त्र की भाँति (शरीर पीला पड़ गया है)। मुरझै० = (शरीररूपी पट में) काम की बेढंगी शिकनें पड़ गई हैं, वह मुरझा गया (मलिन हो गया) है। सुचितै० = निश्चित, बेपरवाह। औटनि = ताप से।

[१८२] औसर० = मिलन के अवसर की आशा में। कहा० = मेरा इसमें क्या वश जो आप भूलकर भी मेरी सुधि नहीं लेते। चेटक = मायावी। चातिक० = चातक की सारी चेतना पी लेते हो, उसे बेसुध कर देते हो। रीझि = रुचि। न० = समझ में नहीं आती। तनकौ = थोड़ा सा भी।

[१८३] जान० = आप हैं तो 'जान' (जाने हुए), पर आप जाने कहाँ जाते हैं, आप की बातों को जान लेना बहुत कठिन है। न गए० = आप कहीं गए भी नहीं हैं (हृदय में ही बसे हैं, यहीं के यहीं हैं) फिर यह कैसे कहूँ कि आप यहाँ आएँगे। दीसौ० = आप तो हृदय में ही छिपे दिखाई (जान)

मोसौं बिछोह कै मोहि मया करि मो मधि रावरे सूधे सुभाय हौ।
सी वियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ॥१८३॥
प्राननि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इते पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यौं।
मोहन रूप सरूप-पयोद सौं सींचहु जौ, दुख-दाह दहौ क्यौं।
नावँ धरे जग मैं घनआनँद नावँ सम्हारौ तौ नाँव सहौ क्यौं॥१८४॥

कवित्त

वेई कुंज-पुंज जिन तरैं तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन सो गहिगो।

पड़ते हैं, पर हृदय जलाते क्यों हैं? उर तैं० = इस प्रकार हृदय का जलाना त्याग कर, हृदय से बाहर आकर कब फिर हृदय पर (सुखद रूप होकर) छाएँगे। आप हृदय में बसना छोड़कर प्रत्यक्ष दर्शन देंगे और आप की वह मन को भानेवाली मूर्ति मेरे मन में कब बसेगी। मोसौं० = मुझसे वियुक्त होकर अब तो मुझपर कृपा करें क्योंकि मेरे ऊपर आपका सदा सीधा (अनुकूल) ही स्वभाव है। सँजोग = अपने संयोग द्वारा। सिरायहौ = ठंढी करेंगे।

[१८४] प्रानिन० = आप मेरे प्राणों के भी प्राण हैं और सुजान (प्रवीण) भी हैं। बोलौ० = कहिए इतने पर भी पीड़ा पहुँचानेवाले क्यों हैं। चेटक = जादू के खेल, क्रीड़ा। चेटक० = अपनी क्रीड़ा की उमंग में ही आप कभी छिप जाते हैं और कभी प्रकट हो जाते हैं। पुनि = इसके अतिरिक्त या इसी कारण। हाथ० = आप हाथ में आए हुए भी पृथक् क्यों रहते हैं, आप को पकड़ भी पाऊँ तो किस प्रकार। मोहन० = मोहनेवाले रूप से और सुरूप के बादल से। सींचहु० = यदि मोहन रूप से सींचते हैं तो फिर जलाते क्यों हैं। नावँ० = आपने संसार में अपना घन-आनंद (आनंद के बादल) नाम रखा है। यदि आप अपने नाम को सँभालें, उसके अनुकूल ही आचरण करें, तो बदनामी क्यों हो।

[१८५] वेई० = वे ही कुंज हैं जिनके नीचे (संयोग के समय) आने पर शरीर बढ़ता (प्रफुल्ल होता) था। तिन० = अब (वियोगावस्था में) उन्हीं कुंजों की छाया के नीचे आने से। गहन = ग्रहण। ग्रहण में भी छाया आती

सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौं सींची जिन,
वहो जमुना, पै हेली! वह पानी बहिगौ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
नाहिं छियै देह, दैया महा दुख दहिगौ।
वेई घनआनँद जू जीवन कौं देते, तिन ही
को नाम मारिनि के मारिबे कौं रहिगौ ॥१८५॥
इतै अनदेखेँ देखिबेई जोग दसा भई,
तैँ तो अनाकानी ही सौं बाँध्यौ दीठि-तार है।
जान घनआनँद बिनाऽव* सुचनक हेरैं,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है।

है, अतः उसे भी 'छाया' कहते हैं। तात्पर्य यह कि पहले वह छाया सुखद थी अब ग्रहण की छाया (दुःखद) हो गई है। सुजान० = जिस नदी (यमुना) ने (तब) सुजान (प्रिय श्रीकृष्ण) की उन आनंद-तरंगों से कभी सींचा था, उसी का जो पानी प्रिय के संयोग से आनंद की लहरें उठाया करता था, वही पानी यमुना पर से अब बह सा गया, वह दुःखद हो गई है। हेली = हे अली, हे सखी। सुख० = सुख के श्रम-स्वेद-काल का सहायक वही पवन (संयोग में पसीने की बूँदें निकलने से जो पवन शरीर में शीतल लगता था, सुखस्पर्श था)। छियै = (बुंदेलखंडी) छूता है। नाहिं = अब वह मेरे शरीर को छूता ही नहीं, वह अत्यंत दुःख देकर मुझे जलाया करता है। मारिनि = मारी हुई को। वेई० = वे ही घन (बादल; प्रिय, घनआनंद) हैं जो पहले जीवन (जल; प्राण) देते थे, पर अब तो उनका नाम मारी हुई को मारने के ही लिए रह गया है।

[१८६] अनदेखें० = आपको न देखकर यहाँ तो मेरी दशा देखने योग्य हो गई, (विपरीत लक्षणा से) देखने योग्य ही नहीं रह गई, अत्यंत क्षीण, दीन, मलीन हो गई हूँ। तैं तो = वहाँ आपने आनाकानी ही से अपनी दृष्टि का तार बाँध रखा है, आनाकानी करने पर ही तुले हैं। सुचनक = सुंदर छटा।

* बनाव, बिनाई।

छीन अति दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है।
तेरैं बहरावनि रुई है कान बीच, हाय
बिरही बिचारन की मौन मैं पुकार है ॥१८६॥

सवैया

मोहिँ निहोरिहै तू जु घरीक मैं, मेरो निहोरिबोई किन मानति।
जासौँ नहीँ ठहरै ठिक मान को, क्यौं हठ कै सठ रूठनो ठानति।
कैसी अजान भई है सुजान हे, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति।
सो मुरलीघनआनँद की तिनि तान भरी, कित भौँहनि तानति॥१८७॥

धीरज० = न धैर्य रहता है न विचार, केवल सोच ही सोच रह जाता है। छीन० = हमारे ऐसे क्षीण तथा अत्यंत दीनों के लिए मोहन नामवाले अमोही (प्रिय) को (ब्रह्मा ने) बनाया। महा० = कर्ता (ब्रह्मा) तो मेरे लिए अत्यंत निठुर है। बहरावनि = बहलाना, व्याज करना, आनाकानी करना, अथवा बहरा बनना। तेरे० = तूने तो बहरेपन की रुई अपने कानों में लगा रखी है। तू हमारी बातों को सुनना ही नहीँ चाहता और इधर हम विरहियों की पुकार मौन में ही है, मौन ही हमारी दशा व्यक्त करता है। आप हमारी व्यथा सुनना नहीँ चाहते और हम सुनाकर आकृष्ट नहीँ करना चाहते, चुपचाप सह रहे हैं।

[१८७] मानवती प्रेमिका के प्रति। मोहिँ० = घड़ी भर में तू (प्रिय से मिलाने के लिए) मेरी खुशामद करेगी (घड़ी भर में ही तेरा यह मान छूट जायगा और प्रिय से मिलने के लिए तू व्याकुल होगी) इसलिए तू मेरी ही खुशामद क्यों नहीँ मान लेती (मेरे कहने से रूठना छोड़ दे)। ठिक = स्थिरता। सठ = बुरा, कड़ा। जासौं० = जिन (प्रिय, श्रीकृष्ण) के प्रति मान की स्थिरता (अधिक समय तक) टिक नहीँ सकती उनसे कठोर हठ करके मान क्यों ठान रही है। हे = ऐ। कैसी० = तू सुजान (जानकार) होकर भी कैसी अनजान बन रही है। तू प्रिय के प्रेम के चरित्र (प्रेमलीलाएँ) जानती नहीँ। घनआनँद = घन से आनंददायक; घनश्याम, श्रीकृष्ण। सो० = श्रीकृष्ण की वह मुरली सदैव तान से भरी रहती है, उसकी तान के

कहौ कछु और, करौ कछु औंर, गहौ कछु और, लखावत औरै।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिं संग, तिहारी तरंग तकैं मति बौरै।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ बतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरै।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद! चातक दौरै॥१८८॥
ब्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति मैं भाँति नई।
न परेखौ कछू, पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई।
घनआनँद जानहिं को सिखवै, खुबई रस सींचि जु बेलि बई।
सुधि-भूल सबै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए प दई॥१८९॥

सामने तेरा भौंह तानना अधिक समय तक ठहर न सकेगा, फिर क्यों ऐसा कर रही है।

[१८८] गहौ० = लिए कोई दूसरी वस्तु रहते हैं और दिखाते कुछ दूसरी ही हैं। मिलौ० = सब प्रकार के रंगों में मिले भी रहते हैं और आप पर कोई रंग चढ़ता भी नहीं। तिहारी० = आपकी मौज देखने से तो बुद्धि ही पगली हो जाती है। निदान = रोग के कारण का निर्णय, रोग की पहचान। गढ़ौ० = जहाँ रोगी के रोग की पहचान करनी चाहिए वहाँ आप बातें बनाते हैं, बातें साधते हैं और (उलटे) छाती जलाते हैं। महा छल० = भारी छलों से ढके हुए होने पर भी आपका रूप भली भाँति खुल गया है, आपके छल ने आपका रूप ठीक ठीक बतला दिया है (विरोधाभास)। कितै० = चातक बेचारा किधर दौड़कर जाय, हे घन! उसके लिए आपकी शरण के सिवा दूसरा आश्रय है ही कहाँ।

[१८९] ब्रजनाथ० = सारे ब्रज के नाथ होकर भी मुझ अकेली को उन्होंने अनाथ कर दिया। कित० = प्रीति की रीति में यह नया ढंग कैसा। न परेखो० = मुझे इसका कोई पछतावा नहीं, पर चित्त से रहा नहीं जाता। बड़े लोगों की प्रीति ही अनीतिमय होती है। जानहिं = सुजान को। खुबई० = उन्होंने रस (जल; प्रेम) से सींचकर जो लता बोई (लगाई) थी उसे खुना डाला। सुधि० = सब प्रकार से हमारी सुध का भूल जाना ही। हिय० = हृदय के भीतर। सूल सलै = पीड़ा करती है, खटकती है।

कवित्त

वासर वसंत के अनंत है कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै झूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनँद सुजान! सुनौ बाल-दसा,
चंदन-पवन तैं पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥१९०॥

दोहा

गोरी! तेरे सरस दृग, किधौं स्याम-घन आप।
दावानल सो पान ये करत बिरह-संताप ॥ १९१ ॥

---

[१९०] वासर = दिवस, प्रकाशयुक्त दिन। अनंत = अंतहीन, जिनकी समाप्ति ही न हो। अंत० = अंत कर देते हैं, मारे डालते हैं। दिन० = दिन ला देना, बुरे दिन कर देना। राति = रात, अंधकार। ऐसे० = वसंत के वे दिन ऐसे बुरे दिन ला देते हैं कि हृदय चारो ओर रात ही रात का अनुभव करता है (अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है)। फूलनि = फूलना। झूलनि = नए नए पत्तों से झलराना, हराभरा होना। पियराति० = पीली पड़ती जाती है। बाल = प्रेमिका। चंदन० = चंदन की ओर से आनेवाली वायु, मलयानिल, दक्षिणी पवन, शीतल समीर। पजरि = प्रज्वलित होकर, जल-भुन कर। सियराति० = ठंढी पड़ी जा रही है। औसर० = इस स्थिति पर विशेष ध्यान दीजिए। अनआयबे० = आपके न आने के साथ ही। दूरि० = दूर देश (परलोक) जाने के वह निकट हो रही है (विरोधाभास), मरने के निकट पहुँचती जा रही है।

[१९१] गोरी० = ऐ गौरवर्णी, ये तेरे रसीले नेत्र हैं या स्वयं घनश्याम ही हैं। क्योंकि ये विरह का संताप श्रीकृष्ण बनकर दावाग्नि की भाँति पी रहे हैं (श्रीकृष्ण ने दावाग्नि पी ली थी)।

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निबाहिनि सौं सरसौ ।
रसनायक मायक, लायक हौ, कितहूँ झर लाइ कहूँ तरसौ ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम ही सब रंग मिले दरसौ ॥१९२
इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै ।
तिहि देखि सकै न बड़ो बिधि कूर, बियोग-समाजहि साजि पिलै ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो लै मिले तैं कहा, यहि पीर मिलाप मैं धीर गिलै ॥१९३॥

[१९२] आपु ही० = केवल अपनी ही ओर बरसते हो, अपना ही सुख देखते रहते हो, दूसरे को (मुझे) सुख देने का विचार भी नहीं करते। इत० = इधर मेरे बीच आकर तो मेरी सी ही रीति बना लेते हैं (जैसा निष्ठुर व्यवहार मेरे साथ करते आ रहे हैं वैसी ही निष्ठुरता करने लगते हैं)। उत० = उधर उस (सपत्नी) के साथ (भली भाँति प्रेम का) निर्वाह करने की रीति से चावपूर्वक मिलते हैं। मायक = मायिक, मायावी। झर० = झड़ी लगाकर। तरसौ = त्रस्त करते हो; तरसाते हो। अब० = मैं जो अपने लिए करने को कहती हूँ उसे एक तो दूसरे के लिए करते हैं और दूसरे सब प्रकार के रंग से मिले हुए उसे दिखाई देते हैं, केवल दूसरे के प्रति ही वह व्यवहार नहीं करते प्रत्युत उससे वह व्यवहार भली भाँति भी करते हैं।

[१९३] इक० = एक तो संसार में स्नेही प्रिय का मिलना ही कठिन है, यदि किसी प्रकार ऐसे स्नेही के संयोग की गंध मिलती है (थोड़ा सा संयोग प्राप्त भी होता है) तो। बियोग० = वियोग के बखेड़े सजाकर टूट पड़ता है, सिर पर डाल देता है, किसी न किसी तरह वियोग उपस्थित कर देता है। न मिलौ० = यदि आप नहीं मिलते तो कहिए यह मन किससे मिले (कहाँ टिके)। अमिले० = अमिलन लिए हुए मिले भी तो क्या मिले, यह पीड़ा कि तुम अमिलन लिए हुए मिले हो संयोग में भी धैर्य को निगल लेती है, मैं अधीर हो जाती हूँ।

मनमोहन तौ अनमोह करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा।
अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा।
जिय जाचक ह्वै जस देत बड़ो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा॥१९४॥
अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥१९५
मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जौ चटिहै।
वहु ओरनि लै भटकावत यौं, अटकावत क्यौं न, कहा घटिहै।

[१९४] अनमोह = अमोह। यह० = मेरा मन बेचारा जो मोहित होता फिरता है वह किस लिए। अपढार० = आपका बेढंगे तौर से ढलनेवाला मन यदि मुझपर नहीं ढलता तो न सही, पर सोचिए तो कि आपके गुण की ओर देखने से बड़ा दोष (कलंक) भी तो लग रहा है, अपने गुण का तो कुछ खयाल कीजिए। चित दै = मन लगाकर, ध्यान से। हित-बात = प्रेम की बात, भलाई की बात। जिय० = मेरा जी भिक्षुक बनकर आपको बड़ा भारी यश दे रहा है, आप चाहे मुझे कुछ दीजिए मत, पर यह लाभ प्राप्त करने में आपकी क्या हानि है, यश का लाभ क्यों नहीं उठाते (मेरे प्रति अनुकूल होने मात्र से आपको भारी यश की प्राप्ति हो जायगी)।

[१९५] अंतर = हृदय में। अंत = अन्यत्र। दृग० = नेत्रों को फाड़कर आपको इधर-उधर खोजती फिरूँ क्या। अभागनि० = अपने अभाग्य को रोऊँ। अकि = या कि, अथवा। का विधि = किस प्रकार। धीरौं = धैर्य दिलाऊँ। पीरौं = तो फिर प्राणों को पीड़ा पहुँचने दूँ, उन्हें पीड़ित होता रहने दूँ। अहो = हाय। चीरौं = फाड़कर घुसूँ।

[१९६] प्रकरण—सखी का वचन प्रिय से। नावँ० = ऐसा कीजिए कि आपके मनमोहन नाम की लज्जा बनी रहे। पन० = उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी। वह = नायिका। चटिहै = शीघ्र संसार से विदा हो जायगी। वियोग में मर जायगी। वहु० = इस प्रकार अनेक दिशाओं में ले जाकर उसे क्यों भटका-

घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि को हटिहैं ।
तुमही तन खोरि लगाइहैं जू दृग मोरिकै जौ हम त्यौं हटिहैं॥१९६॥
हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिं कहूँ ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहिं कहूँ ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे पगु नाहिं कहूँ ।
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिं कहूँ ॥१९७॥

कवित्त

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचैं, मन-
मोहन हो सोई सुख मुख पुनि ल्यावई ।
मौन मिहीं बात है समुझि कहि जानै जान,
अमी काहू भाँति को अचंभै भरि ल्यावई ।

रहे हैं। उसे अटकाए क्यों नहीं रहते (उसके अनुकूल होकर या दर्शन देकर सांत्वना क्यों नहीं देते) इसमें आपका क्या घट जायगा। अपनी० = अपनी-अपनी ओर से भला हटेगा कौन, आपने जो रास्ता पकड़ा उसे छोड़ने नहीं, वह जो प्रतिज्ञा कर बैठी उसे त्यागती नहीं। खोरि = दोष। हम० = हमारी ओर। तुमही० = यदि वह अपने नेत्र मोड़कर हमारी ओर डट जायगी, यदि हमीं ही टकटकी बाँधकर देखने लगेगी (मरणासन्न हो जायगी) तो इससे दोष आपको ही लगेगा। अतः आप अपना निर्दय स्वभाव छोड़कर उससे जा मिलिए।

[१९७] मन जौ० = यदि आप अपने मन में किसी अन्य को नहीं रखते तो। निपटै = अत्यंत। सब ही० = आप यों तो सभी रंगों में डूबे रहते हैं। बस० = पर बात पड़ जाने पर किसी स्थान में अर्थात् किसी रंग में नहीं दिखाई पड़ते। उघरो = खुलते हो। सरसौ = सरसता दिखलाते हो। तरसौ = त्रस्त करते हो। सब० = आप सब स्थानों में बसे हुए भी हैं और आपका कहीं कोई घर भी नहीं है।

[१९८] राँचैं = अनुरक्त होएँ, रँगें। मोहन० = जिस सुख से मन मोहित है उसी को मुख पर ला रहा है, उसी को कहना चाहता है। मौन० = मेरी बात तो मौन में ही है और सूक्ष्म है। इसे चतुर ही समझ सकता है।

सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझि घनआनँद निवेरै याहि न्यावई।
कहै कोऽव मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहिं मारि मारि ज्यावई॥१९८॥

सवैया

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि-बीच बसे घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै॥१९९॥

अमी = अमृत। काहू = विलक्षण। अमी० = उनमें (प्रिय में) आश्चर्य से भरा विलक्षण अमृत पिलाने की शक्ति है। याकी = इस मन की। सोवनि० = इसका जगना भी सोना ही है, यह सावधान होकर भी असावधान है। मूरछा० = इसकी मूर्छा ही सजग है, इसमें केवल बेहोशी ही बेहोशी छाई है। रीझि = प्रेम। निवेरै = इस कष्ट से मुक्त करती है। न्यावई = (न्याय ही) न्यायतः, वस्तुतः। कहै० = कौन अपनी व्यथा कहने जाय, और माननेवाला भी कौन है। पहचानै० = इसे वही पहचान सकता है जिसके नेत्र ही कान हों। जो देखकर ही सब कुछ समझ सके। बात० = बात की चोट तो मार-मारकर जिला रही है। मुझे उनकी बात की चोट कष्ट भी दे रही है और उसी की स्मृति करके मैं जी भी रही हूँ।

[१९९] इसमें बात (वाणी) की महिमा वर्णित है। आँखिन० = आँखों का बंद कर लेना, आँखों को फेर लेना। दिखावत = बतलाती है। सोवनि० = जगने का सोना, जगते हुए भी सोते रहना। सरूप० = वाणी का रूप अनुपम और अलक्ष्य होता है। भूल्यौ० = तू किस चक्कर में पड़ा है। अलेखहि० = जो (ईश्वर) अवर्णनीय है उसका वर्णन भी तू वाणी से कर ले सकता है। बात की० = वाणी की शक्ति। सुबात = अच्छी बात, तथ्यपूर्ण रहस्य। है० = वाणी की क्षमता सब स्थानों पर दिखाई देती है, इसे तू भली भाँति जान ले। नैननि० = नेत्ररूपी कानों में बसे हुए मौन कथन को भी तू वाणी से लख सकता है (जिसके नेत्र ही कान का काम करते हों, जो देखकर व्यथा समझ

कवित्त

सुधि करैँ भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौँ गहि मौन कौँ।
जातेँ सुधि भूलै सो कृपा तेँ पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौँ या भरोसे सुधि हौन कौँ।
मेरी सुधि-भूलहि विचारियै सुरतिनाथ !
चातिक उमाहै घनआनँद अचौन कौँ।
ऐसी भूल हू सौँ सुधि रावरी न भूलै क्यौँ हूँ,
ताहि जौ बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कौँ ॥२००॥

सकता हो, वही मौन-पुकार सुन सकता है)। तात्पर्य यह है कि अनिर्वचनीय प्रेम की दशा का आभास वाणी द्वारा ही दिया जा सकता है

[२००] सुधि० = प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति आ जाती है। तब० = तब मैं अपनी सारी सुध-बुध खोकर मौन धारण करके कूकने लगती हूँ (मौन द्वारा ही अपनी व्यथा व्यक्त करती हूँ)। जातेँ० = जिस प्रकार से अपनी (विरहावस्था की) सुध भी भूल जाती है वह प्रिय की कृपा से (उनकी सुध से) प्राप्त होता है। सुधि हौन० = स्मृति आने के लिए। फूलि० = इसी भरोसे तो मैं प्रिय की सुध होने के लिए प्रसन्नता-पूर्वक अपने को भूला करती हूँ। सुरति० = (आप ही मेरी) स्मृति के स्वामी (हैं), प्रेम के स्वामी, प्रिय। मेरी० = हे स्मृति के स्वामी, मेरी सुध जो आप भूल गए हैं उस पर विचार कीजिए। मेरी तो यह दशा है कि आप की स्मृति के भरोसे मैं जी रही हूँ और आपकी दशा यह है कि आप मेरी सुध ही भूले बैठे हैं। इस वैषम्य पर विचार तो कीजिए। चातिक = बेचारा चातक (प्रेमी)। उमाहै = उमंगित हो रहा है, लालायित हो रहा है। घन० = आनंद के बादल (का जल)। अचौन० = (आचमन) पीने के लिए। चातिक० = बेचारा चातक (स्वाती का) जल पीने के लिए लालायित हो रहा है। ऐसी० = आपके द्वारा इस प्रकार भुला दिए जाने पर भी जो आपकी सुध किसी प्रकार नहीं भूलता यदि आप उसे ही भूल जायँ तो सँभालेंगे किसे।

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै वरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष-अनेक-भरी छतिया।
मन तैं मुख लौं नित फेर वड़ो कित ब्योरि सकौं हित की वतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लखौ सु लिखौ किहि भाँति परै पतिया ॥२०१॥
प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत।
चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत।
हो घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिं सम्हारत।
ए जू सुजान जनाऊँ कहा विन आरति हौ, अति याविधि आरत॥२०२
हम आपनो सो वहुतेरो पचैं कि वचैं अवलोकनैं एकौ घरी।
न रहै वस नैसिक प्रान भिदे छिदै कान ह्वै प्रान सु तीखी खरी।

---

[२०१] जगि = जगाते हुए भी सोने में। जगियै० = चाह जगती (वनी ही) रहती है। वहै० = रात में वही चाह वर्राया करती है, चाह के ही कारण रात में अर्र-वर्र वकती हूँ। निसंक० = वेखटके। मन तैं० = इस प्रकार मन से मुख और मुख से मन तक मेरी वृत्ति वरावर अनेक चक्कर काटा करती है। प्रेम की वातें भला किस प्रकार सोचूँ, मुझे तो 'प्रेमपत्र' में लिखने के लिए वातें सोचने का अवसर ही नहीं मिल पाता। लखौ० = आप ही समझ लें।

[२०२] प्रेम० = प्रेम की पीड़ा हृदय को अधीर किए डालती है। ढारत = गिराते हैं। चाहनि० = प्राण सदा देखने के चाव, उत्साह और जोश की पुकारें ही किया करते हैं। असम्हारहि० = वेसँभाल (मुझ) को क्यों नहीं सँभालते। सुजान० = आप ऐसे सुजान को क्या वतलाऊँ, आप स्वयं समझने में समर्थ हैं। जिन० = आप तो विना दुःख के हैं और मैं अत्यंत दुखी हूँ। आपने कभी दुःख देखा ही नहीं इससे उसकी अनुभूति करने में समर्थ नहीं और मैं हूँ अत्यंत दुखी। इसी विपमता के कारण आप मेरी दशा का अनुमान नहीं कर पाते।

[२०३] आपनो० = भरसक वहुत यत्न करती हूँ। वचैं० = आपके घड़ी भर के दर्शन से ही अपने को वर्जित कर लूँ। न रहै० = कोई वश नहीं चलता। नैसिक = थोड़ी सी भी मुरली की तान हृदय में जाने से। छिदै० = कानों को

घनआनंद बौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियौ पैयत लाज न री।
कित जाहिँ कहा करैँ कैसेँ भरैँ यह कान्ह की बाँसुरी बैरपरी ॥२०३॥
रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौँ कब काननि पान करायहौ जू।
गति हंस-प्रसंसित सौँ कब धौँ सुख लै अँखियान मैँ आयहौ जू।
अभिलापनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तेँ मनमोहन पायहौ जू।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना पर रीझनि छायहौ जू ॥२०४॥
पलकौ कलपै कलपौ पलकै सम होत सँजोग वियोग दुहूँ।
विपरीति-भरी हित-रीति खरी समझौ न परै समझैँ कछु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौँ, कहियै तौ समै लहियै न चुहूँ।
तिन हेरेँ अँधेरैँई दीसै सबै, बिन सूझ तेँ पून्यौ अबूझ कुहूँ ॥२०५॥

पार करके वह अत्यंत तीखी तान प्राणों में गहराई तक धँस जाती है। बौरति० = पगली हो जाती हूँ, दौड़ने लगती हूँ और धुन लग जाती है। ढूँढ़ियौ० = लज्जा ढूँढ़ने से भी नहीँ मिलती। कैसैँ० = दिन कैसे काटूँ।

[२०४] रस = प्रेम ; जल। रंग = आनंद। गति० = हंस से भी प्रशंसनीय गति द्वारा। सुख० = सुख को लेकर अर्थात् सुखी करते हुए। अभिलापनि० = हे मन को मोहनेवाले (प्रिय), अभिलापों से भरकर उफन पड़नेवाले इस मन के द्वारा आप मुझे पाएँगे। मेरे अभिलापपूर्ण मन की दशा देखकर मेरी अवस्था का अनुभव करेँगे। रटना = पुकार। रटना० = इसकी पुकार पर आप रीझ की छाया करेँगे (रीझेँगे)।

[२०५] पलकौ० = संयोग मेँ कल्प भी क्षण के समान बीतता था, समय जाते देर नहीँ लगती थी। कलपौ० = वियोग मेँ पल भी कल्प के समान हो जाता है। समय बीतता ही नहीँ। सम० = इस प्रकार संयोग और वियोग दोनोँ ही समान हो जाते हैँ, एक मेँ 'पल के समान कल्प, दूसरे मेँ कल्प के समान पल'। विपरीति० = प्रेम की रीति अत्यंत विषमता से भरी हुई है। समझौ० = समझने पर भी कुछ समझ मेँ नहीँ आती। चुहूँ = (चुख) पूरा पूरा, ठीक ठीक, आवश्यकता के अनुरूप। कहियै० = यदि कहें भी तो उसे कहने के लिए अत्यधिक समय चाहिए। तिन० = जिस के दर्शन से अँधेरे मेँ

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसानि लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चटावत।
यौँ घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तेँ आवत।
लोग हैँ लागि कवित्त बनावत मोहिँ तौ मेरे कवित्त बनावत ॥२०६॥
चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौँ मो निरमोही को मोह नयौ।
घनआनँद प्रान हरैँ हँसि जान, न जानि परै उघरयौ उनयौ।
चित चाह-निवाह की बात रहौ, हित कै नित ही दुख-दाह दयौ।
उर आस बिसासन त्रास तजै बसि एक ही, बास बिदेस भयौ ॥२०७॥

भी दिखाई पड़ने लगता है, कष्ट भी सुखद हो जाता है। बिन० = बिना उन्हेँ देखे पूर्णिमा भी दृश्यहीन अमावस्या सी हो जाती है।

[२०६] तीछन = तीक्ष्ण। ईछन = (ईक्षण) नेत्र। बखान = कहे जाते हैँ। पैनी = तीव्र। तीछन० = प्रिय के तीक्ष्ण कटाक्ष बाण (रूपी मेरे कवित्त)। सो० = मेरी तीव्र (प्रेम की) दशाओँ पर और भी शान चढ़ा देते हैँ, मेरे प्रेमोद्गार मेँ वेग आ जाता है। प्रानन० = ये कवित्त प्राणोँ को प्रिय लगते हैँ। पानिप = पानी; आब। मायल = (फारसी) प्रवृत्त। चोप० = उत्साह बढ़ाते हैँ। मायल० = मुझ प्रेम मेँ प्रवृत्त और आहत को उत्साहित करते हैँ। ओर तेँ = उनके पास से। लोग० = और लोग (रीतिबद्ध रचना करनेवाले) तो कवित्त (कविता) के बनाने मेँ लगे रहते हैँ (मर-पचकर कविता करते हैँ) पर मुझे तो मेरे कवित्त (कवित्त, सवैया आदि की कविता) ही निर्मित किया करते हैँ, मेरी रचना के द्वारा ही मेरा प्रकृत रूप उत्तरोत्तर विकसित होता चलता है।

[२०७] रसरीति = प्रेम की रीति। मो० = मेरे निष्ठुर प्रिय का प्रेम ही दूसरे प्रकार का है। उघर्‍यौ० = न हटा जान पड़ता है और न छाया हुआ। न प्रकट है न छिपा। चित० = हृदय से प्रेम करके उसके निर्वाह की बात तो दूर रही, उसने तो उलटे प्रेम का आभास देकर सदा के लिए दुःख की जलन दे दी। बिसासन० = विश्वासघातोँ के भय से। उर० = हृदय से विश्वासघातोँ के भय से आशा भी क्षीण होती जा रही है। बसि० = एक ही स्थान पर बसते हुए भी विदेश की अवस्था है, हम दोनोँ पृथक् पृथक् हैँ।

कवित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते विचारे जड़ कैसें पहचानहीं।
जान प्रानप्यारे के विलोकें अविलोकिबे कौं,
हरष-विषाद-स्वादवाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साखैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२०८॥

भूलनि करी है सुधि, जान है अजान भए,
खुलि मिले कपट सौं निपट रसाल हौ।
त्यागहि आदर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित चित धरि उचित लहा लहौ।

---

[२०८] मोर० = जिनमें प्रेम नहीं वे आँखें मोरपंखों की आँखों की भाँति देखने भर को हैं। सूछम० = ऐसी आँखोंवाले यदि मन में सूक्ष्म और अगाध रूप देखने की उत्कंठा करते हैं तो व्यर्थ। जाहि = जिनमें वास्तविक दृष्टि है वे भी जब वह अगाध और सूक्ष्म रूप देखकर अपनी दशा भूल जाते हैं तो मोरपंख सी आँखोंवाले जड़ भला उसे क्या जान सकेंगे। जान० = प्रिय के देखने और न देखने को ही ये आँखें क्रमशः हर्ष और विषाद समझती हैं। चाह० = प्रेम की मंद मंद पीड़ा जिन आँखों में उठा करती है वे ही आँखें तो सचमुच आँखें हैं, और आँखें तो मोरपंख की आँखों की भाँति व्यर्थ हैं, वे प्रेम के तत्त्व को भला क्या जानें।

[२०९] भूलनि० = मेरा भूलना ही आपको स्मरण है। जान० = सुजान (चतुर) होकर भी अनजान (न जाननेवाले, अचतुर) हो गए हैं। खुलि० = भली भाँति। रसाल = रसीले, रसिक। त्यागहि० = आपने मेरे त्याग ही को आदर दिया और मुझसे मान करने (विमुख होने) का ही स्वागत किया। आपने मुझे त्याग दिया और विमुख हो गए। अनुचित० = अनुचित बात भी मन में रखकर आप उचित लाभ उठा रहे हैं। जहाँ० = आप चाहे जहाँ

जहाँ जव जैसैँ तहाँ तैसैँ नीके रहौ अजू,
सब विधि प्रानप्यारे हित-आलवाल हौ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
एहो घनआनँद जू गरैँ गुनमाल हौ ॥ २०९ ॥

सवैया

जौ उहि ओर घटा घनघोर सौँ चातक मोर उछाहनि फूलते।
त्यौँ घनआनँद औसर साजि सँजोगिनि-झुंड हिँडोरनि झूलते।
ग्रीपम तैँ हतई जु लता द्रुम-अंकनि लागतीँ ह्वै रसमूल ते।
तौ सजनी! जिय-ज्यावन जान सु क्यौँ इत के हित की सुधि भूलते २१०

कवित्त

उठे वड़े भोर चैन चोर लाह साह दोऊ,
मति-गति-ठगे न सकत चालि गेह कौँ।
छाई पियराई और विथा हियराई जानै,
जके थके बैन, नैन निदरत मेह कौँ।

भी हौँ, चाहे जिस किसी समय मेँ हौँ और चाहे जैसी दशा मेँ हौँ भले-चंगे रहेँ। आलवाल = थाला। हित० = प्रेम आप ही के घेरे मेँ पनपता है। मन = आपने मन को मोहित किया है तो उसे बचाए रहिए, यही प्रार्थना है। एहो = आप चाहे जैसे भी हौँ मेरे मन के लिए तो गुण-माला की भाँति गले मेँ पड़े हैँ। आपको मैँ गुण-निधान समझती और हृदय मेँ धारण करती हूँ।

[२१०] उहि० = जहाँ प्रिय है वहाँ। घोर = गर्जन। औसर = वर्षा का समय आया जानकर। सँजोगिनि = संयोगिनी स्त्रियोँ का समूह झूलोँ पर झूलता होता। हतई = मारी हुई, सूखी। द्रुम० = वृक्षोँ की गोद मेँ लगतीँ, उन पर छातीँ। रस = जल; आनंद। रसमूल० = यदि वे लताएँ रसपूर्ण होकर, वर्षा के जल से सिँचकर और हरी-भरी होकर। जिय० = ज़ी को जिलानेवाले। इत के = इधर के, मेरे।

[२११] मेरे हृदय का चैन चोर बनकर प्रिय को लूटने लगा था और (प्रिय का) लाभ (प्राप्ति) महाजन बनकर प्रत्यक्ष उनको अपना ग्राहक बनाने की धुन मेँ था। पर दोनोँ रात भर यत्न करते रहे, कोई भी सफल न

दुसह दसाहि देखें समै विसमय होत,
खग मृग द्रुम वेली विसरत देह कौं।
जान घनआनँद अनोखो अनियारो नेह,
दुहूँ दिसि विषम रच्यौ विरंचि वेह कौं ॥२११॥

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि वैरी वियोगहि सौंपनि।
जाय भुलाय रहे तित ही जित चाह भई है नई चित-चौंपनि।
नाहर आय वसंत भयौ नख-केसू रतौहैं कियौ हिय कौंपनि।
क्यौं घनआनँद यौं वचियै जिय जात विंध्यौ अनियारियै कौंपनि॥२१२

हुआ। दोनों की मति और गति मारी गई। तात्पर्य यह कि न उनके बिना चैन ही मिलता है और न उनका लाभ ही होता है (वे आते ही हैं)। हियराई० = हृदय की व्यथा को जानता है। जके = चकपका गए हैं। थके = बंद हो गए हैं। जके० = वचन चकपकाए हुए हैं और रुक गए हैं। मेह = वृष्टि। नैन = नेत्र वृष्टि का भी निरादर कर रहे हैं। नेत्रों से वृष्टि की अपेक्षा अधिक आँसू गिर रहे हैं। दुसह० = असह्य विरह की दशा देखते समय बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसा विरह विरहिणी से सहा कैसे जा रहा है। खग० = पशु-पक्षी और लता-वृक्ष सभी विरही के शरीर को भूल गए हैं, विरही इनकी ओर देख ही नहीं पाता। अनोखो० = प्रेम विलक्षण और तीव्र है। 'विलक्षण' प्रिय के पक्ष से और 'तीव्र' प्रेमी के पक्ष से। विरंचि = ब्रह्मा। वेह = (वेध) हृदय वेधने के लिए।

[२१२] आनि = आकर। गए० = वैरी वियोग के हाथों सौंपते गए। भुलाय० = मुझे भूलकर और इसी के प्रेम में मग्न होकर। चाह = इच्छा। चौंपनि = प्रेम की उमंगें। नाहर = सिंह। नख = उसके नख ही किंशुक हैं। केसू = किंशुक, पलाश का फूल। रतौहैं = रागमय ; रक्त से भरा। कौंपनि = कोप से। नख-केसू = किंशुक रूपी नख से उसने क्रोध करके हृदय को रतौहें (खून से लथपथ ; विशेष रागमय) कर दिया है। विंध्यौ जात = विंध जाता है। अनियारियै = तीखी। कौंपनि = कोंपलें ; नोकें।

कवित्त

आरसी उसास ज्यौँ तुषार तामरस त्यौँ हीँ
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत कौ।
पावक तेँ पारो काँजी छियेहू बिचारौ छीर,
वारुनी तेँ सुचि जैसेँ लेखौ कफ गीत कौ।
ऐसेँ घनआनँद बिचार-वारपार नाहिँ,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत कौ।
सूछम महा है ताकी तोल कौँ कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौँ दुहेलो मन मीत कौ॥२१३॥

सवैया

बात के देस तेँ दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहैँ।
चित्र की आँखिन लीनैँ बिचित्र महारस-रूप-सवाद सराहैँ।

[२१३] आरसी = दर्पण। तुषार = पाला। तामरस = कमल। आतप = धूप। नवनीत = मक्खन। छिए = छूने से। छीर = (क्षीर) दूध। वारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। वारुनी० = शराब से जैसे पवित्र (व्यक्ति) भी नष्ट हो जाता है। लेखौ० = जैसे गले में कफ आ जाने से गीत की लय बिगड़ जाती है। वारपार = अर्थात् अंत। सूछम = सूक्ष्म। ताकी० = उसकी तौल अर्थात् बराबरी का कोई नहीँ है। राखि जानिबो = उन्हेँ सब प्रकार से अपने अनुकूल बनाए रखना ही उनकी उपलब्धि है। दुहेलो = कष्टप्रद।

[२१४] बात का देस = वह स्थान जहाँ का समाचार न मिल सके। नियरे = निकट। सियरे = ठंढे। बात के० = जो तो बसे हैँ दूर, पर निकट आकर ठंढे हृदय को दुःख से जलाते रहते हैँ। चित्र० = जिनकी आँखेँ चित्र मेँ बनी आँखों की भाँति सुंदर और आकर्षक तो हैँ, पर जिनमेँ सजीवता नहीँ है। महा० = फिर भी तू उनकी रसिकता और रूप की मनोहरता की प्रशंसा किया करता है। नेह० = तू जो उनके पास प्रेम की बातेँ पहुँचाना चाहता है वह पानी ही मथता है। जैसे पानी मथने से स्नेह (चिकनाई) नहीँ निकलता वैसे ही उनसे प्रेम की बातेँ करने से भी कोई तत्त्व नहीँ निकलेगा। कठप्रेम = वह प्रेम जो हठपूर्वक किया जाय, जो दूसरे पक्ष अर्थात् प्रिय के उदास या प्रति-

नेह कथै सठ नीर मथै हठ कै कठप्रेम को नेम निवाहै।
क्यौँ घनआनँद भीजे सुजाननि यौँ अमिले मिलिबो फिरि चाहै॥२१४॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो वस्यौ जव कान सँदेसो सुहायौ।
कोटि सुधा हू के सार कौँ सोधि कै पान किये तेँ महासुख पायौ।
जीव-जियावन ताप-सिरावन है, रसमै घनआनँद छायौ।
ये गुनि क्यौँ न रचै सजनी! उनि रंग-रचे अछरानि रचायौ॥२१५॥

आँखिन आनि रहे लगि आस कि वेस-विलास निहारियै हूँगे।
कानन वीच वसैँ भरि प्यास अमी-निधि वैननि पारियै हूँगे।
यौँ घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैँ सु सम्हारियै हूँगे।
प्रान परे उरझैँ मुरझैँ कि कहूँ कवहूँ हम वारियै हूँगे॥२१६॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरबोई करैँगी।
पीवन-साध असाध भई इहि जीवन कौँ मरिबोई करैँगी।
हाय महादुख है सुखदैन! विचारौ हियैँ, भरिबोई करैँगी।
क्यौँ घनआनँद मीत सुजान! कहा अँखियाँ वरिबोई करैँगी॥२१७॥

कूल होने पर भी किया जाय। घनआनँद० = आनंद के बादल की रसवृष्टि से जो भीजे (सिक्त) हैँ ऐसे सुजानोँ से, जिनमेँ मिलने का गुण नहीँ उनसे क्योँ फिर से मिलना चाहता है।

[२१५] सार = तत्त्व। सोधि कै = खोजकर, प्राप्त करके। सिरावन = ठंढा करनेवाला। रचै = अनुरक्त हो। उनि = उन्होँने। रंग-रचे = रंग से सुशोभित। रचायौ = प्रेम से युक्त किया है, मेरे लिए संदेश भेजते हुए उन होँठोँ को संचालित किया है, जिससे मेरे प्रति उनका प्रेम व्यक्त होता है।

[२१६] वेस० = प्रिय का वेश-विन्यास देखने को मिलेगा। अमी-निधि = अमृत के समुद्र। पारियै० = इन कानोँ मेँ पड़ेँगे, सुनने को मिलेँगे। ठौर० = वे (प्राण) अंग अंग मेँ वसकर इस प्रकार अपने को सँभाल रहे हैँ कि किसी प्रकार रह जायँ, प्रिय के दर्शन होने तक बचे रह सकेँ। वारियै० = प्रिय पर निछावर होँगे।

[२१७] साध = इच्छा। असाध = असाध्य, ऐसा रोग जिसके अच्छे होने की संभावना न हो। जीवन = जिंदगी (प्रिय के सांनिध्य का जीवन);

तुम्हैँ प्रान लगे तुम प्रानन हूँ मनमोहन सोहन मानिये जू।
निठुराई सौँ कौ लौँ निवाहियैगी कबहूँ तौ दया उर आनिये जू।
दरसे तेँ कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातक-दानिये जू।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानिये जू॥२१८॥

रस-आरस-भोय उठी कछु सोय लगी लसैँ पीक-पगी पलकैँ।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख ओर सु फैलि भवीँ सुथरी अलकैँ।
अँगराति जँभाति, लसैँ सब अंग अनंगहि अंग दियैँ झलकैँ।
अधरानि मैँ आधिय बात धरैँ लड़कानि की आनि परैँ छलकैँ॥२१९॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछि-कलानि मैँ पंडित।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियैँ हरि लेत हैँ आरस-मंडित।
वेधि कै प्रान करैँ फिरि दान, सुजान खरे, भरे नेह अखंडित।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित॥२२०॥

जल। मरिबोई० = क्या लालायित ही रह जायँगी, छटपटाती ही रहेँगी। सुखदैन = सुख देनेवाले (प्रिय)। विचारौ = सोचो। भरिबोई० = इसी प्रकार दुःख मेँ अपने दिन काटती रहेँगी।

[२१८] तुम० = आप भी प्राणोँ को लगे हैँ, प्राणोँ मेँ बसे हैँ। सोहन = शोभन। निवाहियैगी = निर्वाह होगा। दरसे = दर्शन देने से। अरसौ न = आलस्य न करो। दई = हे दैव! जग० = सारा संसार जानता है।

[२१९] आरस = आलस्य, सुस्ती। उठी = जगी। भोय = युक्त होकर। लगी = बंद। पगी = भरी। ओप = छटा। भवीँ = चक्करदार हो गईँ। सुथरी = सुंदर, रमणीय। अँगराति = अँगड़ाई लेती हुई। अनंगहि० = काम से युक्त होकर। लड़कानि० = मस्ती की मुद्राएँ छलकने लगती हैँ।

[२२०] वेधि० = प्राणोँ को विद्ध भी करते हैँ और फिर प्राण-दान भी देते हैँ। कटाक्ष० = बाण लगना दुःखद भी प्रतीत होता है और सुखद भी। खरे = उत्कृष्ट। अखंडित = पूर्ण। आसव = शराब। घूमरे = नशे मेँ चूर। चोज = चुहल की वृत्ति, विनोद क , उमंग। चोज० = एक तो नेत्र आनंद के आसव के कारण उमंगित हैँ, दूस काम के कारण भी उमंग बढ़ रही है, अतः उनमेँ विनोद-वृत्ति की उमंग प्रचंड रूप मेँ दिखाई देती है।

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु, लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति, पूरन चंदहि भेपन आई।
फूलत कंज कुमोद लखैं घनआनँद रूप अनूप निकाई।
तो मुख लाल! गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई॥२२१॥
रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोचन लेत लगाय कै संग अनंग अचंभे की सूरति मानौ।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कवि क्यौंहूँ प्रमानौ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं परी सुजान हौं जानौ॥२२२
रूप के भार न होति है सौंहीं लजौंहियै दीठि सुजान यौं झूली।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि, पागी तहीं पलकौ गति भूली।

[२२१] आरसी = दर्पण। उदोत = उदित होते हुए। मानौ० = मानों उदित होते हुए सूर्य की (लाल) द्युति (गुलाल) धारण करके पूर्णचंद्र (मुख) ही आया हो। फूलत० = उस छटा को देखकर कमल और कुमुद दोनों साथ ही खिलने लगे (सूर्य की छटा से कमल और चंद्र की छटा से कुमुद)। लखैं = देखने पर, देखकर। लाय कै = लगाकर।

[२२२] धुनि = ध्वनि, वाणी। रूप० = तेरी कमर का रूप वैसा ही है जैसे वाणी का। वाणी का रूप दिखाई नहीं पड़ता, पर कानों से सुनी जाकर वह अपने रूप का आभास देती है और उसका मानस-प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार तेरी कमर का भी चाक्षुष प्रत्यक्ष तो नहीं होता पर मानस-प्रत्यक्ष होता है। बूझ की दीठि = मानस-दृष्टि से। सु = भली भाँति। तानौ = फैलाओ। यदि मुझे भी मानस-दृष्टि मिले तो तेरी कमर को देख सकूँ। अनंग० = यह रूपहीन काम की अचंभे से भरी हुई कोई मूर्ति है। प्रमानौ = प्रमाणित करें। इसकी प्रत्यक्ष स्थिति चाहे कवि लोग किसी प्रकार भी प्रमाणित करें तो भी। तो० = तेरी कमर का रहस्य। जानति० = करधनी ही तेरी कमर का रहस्य जानती है जो उस पर पड़ी हुई उसका रहस्य बजकर अर्थात् बोलकर उद्घाटित किया करती है। सौं = शपथ। हौं० = मैं समझता हूँ।

[२२३] रूप० = सौंदर्य के बोझ से दृष्टि सीधी नहीं है, झुक गई है। झूली = लटकी हुई शोभित होती है। लागियै = बंद होती जाती है, मारे

वैठियै जू हिय पैठति आजु कहा उपमा कहियै समतूली।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तौ साँझ सी फूली।२२३।

कवित्त

रति-रंग-राते प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
आवत लगेई घूमि झूमि छवि सौं छके।
सहज विलोलि परे केलि की कलोलन मैं,
कबहूँ उमगि रहे कबहूँ जके थके।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-थलकनि उनमदि न कहूँ सके।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरे हूँ लाज सौं ढके ॥२२४॥
केलि की कला-निधान सुंदर सुजान महा,
आनन समान छवि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।

लज्जा के खुली नहीं रह पाती। न लागी = कहाँ पर रातभर ये आँखें जागती ही रही हैं। पागी० = (उसकी मधुधारा में) लिपट जाने से। गति = चाल, खुलना और बंद होना। जैसे मधुमक्खी मधु में पड़कर अपनी गति भूल जाती है उसके पंख हिलते-डुलते नहीं वैसे ही आपकी आँखें भी पलकों का संचालन भूल गईं। वैठियै = बैठी हुई, स्थिर। पैठति = गतिहीन होकर भी हृदय में घुसती हैं (विरोध)। समतूली = समान।

[२२४] राते = अनुरक्त; लाल। जागे = जगे हुए। घूमि = नशे में चूर होकर। झूमि = मस्ती से झूमते हुए। सहज = स्वभावतः। विलोलि परे = हिल रहे हैं, घबराए हुए चंचल हैं। कलोल = लहर। जके = चकपकाए हुए। थके = ठक। झलकनि = (झलक) प्रकट होना, दिखाई पड़ना। उघरे हूँ = नग्न होने पर भी, निर्लज्ज होने पर भी, खुले रहने पर भी।

[२२५] कला = चतुरता। निधान = भंडार। समान = मानपूर्ण, गर्वीला, रोबीला। छवि० = उसके रोबीले मुख की सुषमा की छाया में कुन्दन की

पिय-अंग-संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति-तरंग रस-बिवस उर-मिलौनि ।
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम-
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥२२५॥

सवैया

रति-साँचे ढरी अछवाई-भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै ।
छवि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस झूमि खगै ।
घनआनँद एड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तेँ भरै न डगै ।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥२२६॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी ।
नैन मिलेँ उर के पुर पैठतै लाज लुटी न छुटी तिनका सी ।

शोभा भी विलीन हो जाती है। सौनि = कुंदन की ललाई। माधुरी० = माधुर्य से प्रसन्न। सुशील = शील से युक्त, शांत मुद्रा को व्यक्त करनेवाला। भीजियै = लज्जा से भींगी हुई, लाजभरी। हौनि = होना।

[२२६] रति० = रति के साँचे में ढली हुई। अछवाई० = रमणीयता से संयुक्त। पिंडुरी = घुटने के नीचे पीछे की ओर पैर का मांसल भाग। गुराइयै = गोरापन ही। घूमि = मत्त होकर। घुरै = घुलता है, देखने में लीन हो जाता है। न मुरै = लौटता नहीं। मुरवा = एड़ी के ऊपर की हड्डी के चारों ओर का घेरा, गिट्टा। खरो = अत्यंत। रस० = रस में मस्त होकर। खगै = लीन हो जाता है, अनुरक्त होता है। मिड़ै = चिपक जाता है। भरै० = समय काटता है पर वहाँ से हटता नहीं। महाउर = महावर, अलक्तक। च्वै० = चूकर, गिरकर। पायनि० = तेरे पैरों में लगा जैसे महावर फिर हाथ में नहीं आता वैसे ही मेरा मन भी तेरे पैरों (को देखने) में लगकर फिर हाथ नहीं आता।

[२२७] रूप = सौंदर्य। चमूप = सेनापति। देसहि = अपना देश (मन)। मवासी = (धैर्यरूपी) किलेदार, गढ़पति। मवास = दृढ़ किला। नैन० = हृदय-रूपी नगर में धँसते ही नेत्ररूपी भेदियों के मिल जाने पर। लाज० = लज्जा (रूपी संपत्ति) लुट गई, वह तिनके के बराबर भी न छूट सकी। सबकी सब चली गई। प्रेम = प्रेमरूपी नरेश की दुहाई फिर गई (राज्य हो गया)।

प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गुढ़ासी।
रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ॥२२७॥

कवित्त

आई है दिवारी, चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरे दाव पावहीं।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े चैन चैन-चुहल मचावहीं।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद
उमंग-ओपे अंगनि अनंग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा लगाय हम जोगहि जागावहीं ॥२२८॥

बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई को न अंत है।

बाँधि० = कैदकर लिए। कुल० = वंश के नियम। गुढ़ासी = (गूढ़ाशय) उपद्रवी, विप्लव करनेवाले। सची = बनाई। रीझ० = चतुर रीझ को तो उसने पटरानी बना लिया और बेचारी बुद्धि दासी होकर ही बच पाई। सावयव रूपक।

[२२८] जिवारी = जिलानेवाली। चीते० = अभिलषित कार्यों को उत्पन्न करनेवाली। मिलि = प्रिय से मिलकर। पैज = प्रतिज्ञा, शर्त। दाव पावहीं = जीत का द्रव्य पाते हैं। हार = पराजय; माला। लच्छिन = लाखों। चुहल = विनोद। रंग = शोभा, छटा। ओपे = चमकते हुए। दियरा० = दीपक जलाकर। रागैं = अनुरक्त होती हैं। हियरा० = हृदय को लगाकर। जोग = योग; संयोग। दिवारी में मंत्र जगाते हैं (हम भी हृदय को लगाकर क्यों न योग जगा लें)।

[२२९] बैस = (वयस्) उम्र। तरुनाई = यौवन; वृक्षों की स्थिति। उलहत = उल्लसित होती है। मदन = काम; हाथी या बकुल का वृक्ष। मैमंत =

मोहन-मधुप क्यौं न लटू ह्वै लुभाय भटू !
प्रीति को तिलक भाल धरे भगवंत है।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसंत है ॥२२९॥

पल-दल-संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै,
आरस बिभावरी ह्वै होत भौंरहाई है।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसें,
लसत सु ऐसें अचिरज अधिकाई है।
बाहिर तें रूप-मकरंद-पान करै पुन्य,
बड़ी भूतागति हेरैं मो मति हिराई है।
नयोई रसिक।घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है॥२३०॥

उर-गति ब्यौरिबे कौं, सुंदर सुजान जू को
लाख लाख बिधि सौं मिलन अभिलाखियै।

मदमत्त। मधुराई = माधुर्य ; शहद। ह्वै = होकर। भटू = हे सखी। तिलक = टीका ; एक वृक्ष जो वसंत में हरा-भरा होता है।

[२३०] पल = पलक। विभावरी = रात्रि। भौंरहाई = भौंरों का एकत्र होना, भौंरों का मँडराना। आरस० = आलस्यरूपी रात्रि के आ जाने से तेरे नेत्रों की पलक के दलों के भीतर जो मेरा मनरूपी भ्रमर प्रसन्नतापूर्वक बंद होना चाहता है वह बंद नहीं हो पाता, अतः बाहर की बाहर मँडरा रहा है। द्वै सरोज = नेत्ररूपी दो कमल। एक = मेरा मनरूपी भ्रमर तो एक ही है, उन दोनों कमलों में एक साथ कैसे रहता और दोनों का रस-पान करता। रसत = रस लेता। बाहिर० = इसलिए वह बाहर ही बैठकर सौंदर्यरूपी मकरंद का पान कर लेता है। पुन्य = पवित्र। भूतागति = भूत की सी दशा, विलक्षण बात। नयोई० = नए ढंग का रसिक (भ्रमर)। सैन = संकेत ; शयन। निकाई = सुंदरता, विशेषता।

[२३१] ब्यौरिबे कौं = सुलझाने के लिए। रिस० = रोष और प्रेम से भरी हुई। कसि = कष्ट सहकर। गसि = (ग्रस्त) भरकर। गाँस = फाँस।

बातैं रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै।
भाग जागै जौ कहूँ बिलोकैं घनआनँद तौ,
ता छिन की छाकनि के लोचन ही साखियै।
भूलै सुधि सातौ दसा-बिवस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥२३१॥
पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के बिचार सौं समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है।
मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है ॥२३२॥
रूप-गुन-मद-उनमद नेह-तेह-भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।

झीनी = छोटी, पतली। बातैं० = उन्होंने जो रोष और प्रेम से भरी हुई बातें कही हैं वे हृदय में वैसे ही धँस गई हैं जैसे छोटी और पतली गाँसें। उन्हें सावधानी से निकालकर मैं सजाकर एक पंक्ति में रख रहा हूँ। छाकनि = तृप्त होकर उन्मत्त होना। सातौ सुधि० = सातों सुध (पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि)। सातौ० = सब कुछ भूल गई। दसा० = बेहोशी की दशा के कारण।

[२३२] सुजान = प्रिय, नायक। धन = (धन्या) प्रिया; द्रव्य। रंक० = दरिद्र की सी अवस्था है, उस धन को छोड़ना नहीं चाहते। समोय = युक्त होकर। सीझना = स्नेह आदि द्रव पदार्थ का किसी वस्तु में भिन जाना। सीझी = भरी हुई। तेई० = वह कहा नहीं जा सकता (अनिर्वचनीय है)। वे दशाएँ ही उसके रहस्य को भली भाँति जानती हैं। घूमैं = मत्त हो जाते हैं। चाहि० = देखते रहते हैं। रति = प्रेम।

घूमत घुरत अरबीले न मुरत क्यौं हूँ,
प्रानन सौं खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सींचे घनआनँद खुले सँकोच सौं मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़े ॥२३३॥

ललित उमंग-बेली आलबाल-अंतर तैं,
आनँद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैं इन पै पढ़ी।
कंचुकी तरकि, मिले सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी ॥२३४॥

---

[२३३] उनमद = उन्मत्त। तेह = रोष, प्रचंडता, तेजी। आतुरी = आतुरता, तत्परता। चटक = फुरती। घूमत = चक्कर काटते रहते हैं। घुरत = घुलते हैं, लीन होते हैं, अपने काम में अधिकाधिक लगते हैं। अरबीले = अड़ने वाले, हठी। लाड़० = प्यार से पालकर बढ़ाए गए, मारे प्यार के सिर-चढ़े। सींचे० = अत्यंत आनंद से सिंचे हुए, आनंदमय। खुले = अपलक, खुले हुए; नग्न। मढ़े = युक्त; ढके। अनेरे = तीखे, दुष्ट, अन्यायी; अनीवाले। घाती = चोट करनेवाले; हत्या करनेवाले। काती = कत्ता, छोटी तलवार।

[२३४] आलवाल० = हृदयरूपी थाला। उमाह = उल्लास। फूलनि = फूल निकलना; प्रसन्न होना। दुकूलनि = वस्त्रों से; दोनों ओर से (लता-पक्ष में)। दृग० = नेत्ररूपी खंजन पक्षी। दसा = कामदशा, प्रेम की दशा। सगुनौती = यहाँ 'मंगल-पाठ'। नीकैं = भली भाँति। इन पै = इनके लिए। तरकि = टूटकर, फटकर; शीघ्रता से। सरकि = बढ़कर (बड़े होकर); आगे आकर। फरकि = फड़ककर; फुरती से। चोप० = आनंदोत्सव।

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकैँ, छबिहू को अनूपम रूप कढ़्यौ है।
ईठ है दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ़्यौ है।
आनँद के घन राग सौँ पागि सुजान सुहागहि भाग बढ़्यौ है।
लाड़ तैँ लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ़्यौ है॥२३५॥
अंजन त्यौर ही ताक्यौ करै, नित पान लखै मुख-त्यौँ रँग-चायनि।
औरौ सिँगार सदा घनआनँद चाहैँ उमाह सौँ आपने दायनि।
तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजत सादे सुभायन।
ऐ परि नाच कै साँच छक्यौ जु लटू भयौ लाग्यौ फिरै तुव पायनि॥२३६
मिहँदी रँग पायनि रंग लहै सुठि सौँधो सु अंगनि संग बसै।
तरुनाई पै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।

---

[२३५] छकैँ = तृप्त होते हैँ। कढ़्यौ = प्रकट हुआ है। ईठ = (इष्ट) मित्र। नीठि आय = बड़ी कठिनाई से आकर। चोज = उमंग, मस्ती। राग = प्रेम; लाल रंग। सुहाग = सौभाग्य। लाड़० = अन्य नायिकाएँ तो 'लाड़' (प्यार) पाकर 'लाड़ली' बनती हैँ, पर तेरे शरीर पर तो 'लाड़ ही लाड़' (पूजा की भेँट के रूप मेँ) चढ़ा हुआ है। तू सर्वांग प्यार से भरी है।

[२३६] अंजन० = अंजन सदा तेरी चितवन देखता रहता है कि कब मुझे अपनी आँखोँ मेँ लगाकर मेरी श्यामता बढ़ाई जायगी। त्यौँ = ओर। रँग० = अपने रंग (ललाई) की वृद्धि के अभिलाप से। उमाह = उमंग, उल्लास। दाय = अवसर, मौका। सरूप = (सुरूप) सौंदर्य। सादे० = सादे-रूप मेँ, बिना किसी श्रृंगार के। ऐ परि = किंतु, इतने पर भी। नाच = नृत्य। कै साँच = अपने को सत्य सिद्ध करके। लटू० = मुग्ध होकर। ऐ परि० = इतने पर भी स्वयं नृत्य अपने को सत्य सिद्ध करके और (तेरे पैरोँ की गति से तृप्त होकर) मुग्ध हो तेरे पैरोँ मेँ लगा रहता है। त्यौर ताकना, मुख लखना, पैरोँ से लगा फिरना आदि मुहावरे श्रृंगार की वस्तुओँ की याचकता या दीनता तो व्यक्त करते ही हैँ, उन अंगोँ के ही मुहावरे भी हैँ जिन अंगोँ के प्रति श्रृंगार की वस्तुएँ याचक हैँ।

घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदन मैं गुन-ग्राम वसै।
सव भाँति सुजान न आन समान कहा कहौं आप तें आप लसै ॥२३७

कवित्त

रूप की उझलि आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।
उलटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-वसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
आछी ओक धरैं प्यास-पीर सरसई है।
कैसे घनआनँद सुजान प्यारी छवि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥२३८॥
नीकी नासा-पुट ही की उचनि अचंभे-भरी,
मुरि कै इचनि सौंन क्यौं हूँ मन तें मुरै।

[२३७] मिहँदी० = मेहँदी को रंग तेरे ही पैरों से मिलता है। सुठि = सुंदर, उत्कृष्ट। सौंधो = सुगंध। वसै = सुवासित होती है। तरुनई० = तेरे यौवन से स्वयं कोक (कोकशास्त्र के निर्माता) कामकला की बातें पढ़ते हैं। सुघराई० = तेरी रसिकता स्वयं रस को चतुरता सिखाती है। गुन = गुण; डोर। ग्राम = समूह। हित० = तेरे प्रेम के फंदों में गुणों (डोरों) के समूह बँधे हैं। प्रेम के वंधन में अनेक विशेषताएँ हैं। आप तें० = (दूसरों को तो तू सुशोभित करती है पर) तुझे सुशोभित करने के लिए किसी शृंगार या शिक्षा की आवश्यकता नहीं, तू स्वतः सुशोभित है।

[२३८] उझलि = एकत्र होना, उमड़ाव। तेह = यौवन का तीखापन। ओपी = चमकी हुई, चमक पाकर खिली हुई, सुशोभित। उलटि = एक पर एक फैलकर। भरि = भरकर, भरी-पूरी होकर। फैलि गई है = फैल गई है, छा गई है। आभा० = छटा छा गई है। भीर = अधिकता अर्थात् प्रवाह। तरैं = तैर रहे हैं। ओक = अंजली। आछी० = भरी-पूरी अंजली धारण करते हैं, भरपेट पीते हैं। प्यास० = फिर भी उनकी प्यास की पीड़ा (उत्कंठा) बढ़ती ही जाती है।

रूप-लाड़ जोवन-गरूर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीँ सुरै।
सहज हँसौंहीँ छवि फवति रँगीले मुख,
दसननि जोति-जाल मोती-माल सी ढुरै।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरवीली ग्रीवा जब आनि मान पै दुरै ॥२३९॥

सवैया

दृग छाकत हैं छवि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनँद भीजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै, न सम्हारि सकै बलकैऽरु बकै।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै ॥२४०॥
पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु ज्यु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी।

[२३९] नासापुट = नासिका के पुट (छिद्र)। उचनि = उठान। इचनि = खिंच जाना। मुरि कैं० = मुड़कर खिंच जाना, मुड़कर घूम जाना। सो = वह। मुरै = हटती है। रूप० = सौंदर्य के प्रेम से। जोवन० = यौवन के गर्व से। चोप० = उमंग की स्फूर्ति से। अनखि = रूठने का स्वाँग भरती हुई। मिहीँ = मंद, मधुर। सुरै = स्वर से। ढुरै = (लुरै) छा जाती है या सुशोभित होती है। जब० = जब उसकी ग्रीवा अभिमान की मुद्रा से मुड़ती है।

[२४०] छाकत हैं० = (तृप्त होकर) मतवाले हो जाते हैं। ताकत ही० = देखते ही। मधु० = शराब को पीकर जब मत्त होती है। भीजि = भीँग-कर, भरकर। घूमति = नशे में चक्कर काटती है। चकै = चकपकाती है। जकै = जक हो, सनक हो। बलकै = नशे में उमंगित होती है। रु = अरु, और। बकै = बकती है। इकौसी = अकेली। इकौसी० = बेचारी लज्जा भी अकेली पड़कर थक जाती है, लज्जा भी चली जाती है।

[२४१] पानिप = शोभा, ओप। पानिप० = शोभारूपी मोती के दानों को लेकर। गुन = गुण ; डोर। पाट = रेशम। पुही = पोई हुई, परोई हुई। ही = हृदय में। नीके सुभाय० = उत्तम स्वभाव के रंग से रँगी हुई। हित० =

चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जीवन*साखी।
नैननि पानि विराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी॥२४१॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी† किधौं सोभति मान-मवास की घाटी।
कै रसराज-प्रवाह को मारग बेनी-बिहार सौं यौं दृग दाटी।
काम-कलाधर ओप दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी।
जान की पीठि लखे घनआनँद आनन आन तें होत उचाटी॥२४२

कवित्त

तैं मुँह लगाई तातें मोहिं मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है।
तेरी सोई जान! सोई जानै जिन जोही छबि,
क्यौं धौं इन नैनन तें नींद गई नसि है।

प्रेम की उत्कृष्ट ज्योति (चमक) से युक्त। न परै० = जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता, अकथनीय। चाह = इच्छा ने। साखी = साक्षी। नैननि० = नेत्रों के हाथ में। राखी = रक्षा का डोरा। श्रावण की पूर्णिमा को जो राखी बाँधी जाती है।

[२४२] सोभा० = शोभारूपी पर्वत का संधिस्थान है। मेरुदंड के दोनों ओर के उभड़े भागों को सुमेरु कहते है। मान = गर्व। मवास = पहाड़ पर बना दृढ़ किला। मान० = मानरूपी पहाड़ी दुर्ग से सटी हुई कोई घाटी (उपत्यका) है। रसराज = शृंगार। बेनी = चोटी। बिहार सों = सुशोभित होने से। बेनी० = पीठ पर पड़ी चोटी ऐसी जान पड़ती है जैसे शृंगार के प्रवाह का मार्ग हो (शृंगार का रंग कविसमय में श्याम माना जाता है)। दाटी = प्रतीत होती है, छजती है। काम० = काम ने चंद्रमारूपी घुट्टे से घोटकर चमक चढ़ाई है। पाटी = पट्टी, लिखने-पढ़ने की पटिया। आनन० = मुख किसी दूसरे को देखने से उचटकर उसी के देखने में लगा रहता है।

[२४३] तैं० = तूने मुँह लगाया, तुझे प्रिय लगने लगी है। एकरस = ज्यों की त्यों, निरंतर एक सी रहनेवाली। सोई = सोई हुई। सोई = वही।

* जोबन। † सिंधुतटी।

छोरि छोरि डारे जे जे भूषन विदूषन से,
तहाँ तहाँ लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस-रसीली घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सौँ मेरी मति लीनी कसि है ॥२४३॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातेँ,
याते वाय वावरो डराय काँपिवो करै।
थोरे थिर गुन मैँ विराजै चिर आभा ऐन,
नैन हेरेँ हेरनि हिये मैँ भूख लै भरै।
नेकौ सनमुख भएँ दीजै सव तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै।
ताकेँ तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछो उपमान को गरूर ओरे लौँ गरै ॥२४४॥

जोही=देखी। विदूपन=विदूपित करनेवाले (तेरे शरीर को आभूषण विदूपित किया करते हैँ, तेरी स्वाभाविक छटा ही उत्तम है)। तहाँ०=जिन जिन अंगोँ से भूषण उतारे गए हैँ उन उन अंगोँ मेँ। गसि०=चिपट गया है, अनुरक्त हो गया है। ढीली=शिथिल। ढीली०=अपनी (शरीर को शिथिल कर देने की) ढीली दशा (मुद्रा) से ही मेरी बुद्धि को कस लिया है। मेरी बुद्धि तेरी इस शिथिल दशा मेँ ही मग्न है (विरोध)।

[२४४] चलदल०=पीपल के पत्ते की प्रभा उदर को देखकर नष्ट हो जाती है। यह देखकर वेचारी वायु पगली होकर डर से काँपा करती है कि मुझे ही उनके उदर के उपमानोँ (पत्तोँ) को गिराने के लिए कहा जायगा। मैँ कहाँ तक उन्हेँ गिराऊँगी। थिर=स्थिर, अचंचल। चिर=चिरकाल तक रहनेवाली। ऐन=ठीक, भरपूर। नैन०=यदि उनका उदर देखा जाय तो उसके देखने से दर्शक मेँ देखते रहने की भूख जग जाती है। नेकौ०=उस (उदर) के थोड़ा भी संमुख होने पर, उसे देखने पर, सवको पीठ देनी पड़ती है, विमुख होना पड़ता है। नीठि०=यदि मन उसके पैरोँ मेँ भी लग जाय तो कठिनता से हाथ आता है (फिर उदर देखकर तो सवको पीठ देना उचित ही है)। तो=तव, तेरा। ओरे०=ओले की भाँति गल जाता है।

सवैया

साँच के सान-धरे सुर-बान, पै छूटैं बिना ही कमान सौं जोटैं।
दीसैं जहाँ के तहाँ सु चलैं अति घूमति है मति या चख-चोटैं।
घाव को चाव बढ़ैं घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैं।
प्रान सुजान के गान-बिंधे घट लोटैं परे, लगि तान कचोटैं* ॥२४५॥
जोबन-रूप-अनूप-मरोर सौं, अंगहि अंग लसै गुन-एँठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैंठी।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी।
पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी ॥२४६॥
गोरे डडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखें इन आभा-तरंगनि संग रयौ है।

[२४५] साँच = सचाई के शाणपट्ट पर तेज किए हुए। सुर० = स्वररूपी बाण। जोटैं = जोट पर, प्रतिपक्षी पर। दीसैं० = कटाक्ष तो जहाँ के तहाँ दिखाई देते हैं, आँखों में ही रहते हैं, फिर भी चलते हैं और उनके चलने पर आँख की चोट से बुद्धि अत्यंत आहत होकर छटपटाने लगती है। घाव को० = घाव की अधिकता होने पर। चाड़नि० = उत्कंठाओं की आड़ लेकर हृदय उन आघातों को बचाता है। चाव के कारण आघात आघात नहीं जान पड़ता। गान० = गान से विद्ध होकर, गान पर मुग्ध होकर। घट = शरीर में। लोटैं = छटपटाते हैं। परे० = तान के लगने से गिर पड़े हुए। कचोटैं = व्याकुल होते हैं।

[२४६] जोबन० = यौवन और सौंदर्य के। मरोर० = एँठन ; अभिमान। गुन = डोर; गुण (विशेषता)। एँठी = एँठन दी हुई; गर्वीली। चोख = फुरती। चोज = विनोद की वृत्ति। घूघरिवारियै = घुँघराले बालवाली ही। ऊठ = उठान। अमैंठी = उमेठी हुई, मुड़ी हुई। सूधे० = सीधे तो देखती नहीं। गरैंठी = (गरिष्ठ) टेढ़ी। खरी = अत्यंत। अनखीली = थोड़े से ही चिढ़ जाने-वाली, तिनकनेवाली। नाक० = अर्थात् रोष की मुद्रा में। टैंठी = (प्राकृत 'टॅंटा' से) अस्थिर, चंचल।

* की चोटैं।

नीलमनीनि हियैलैँ वनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है॥२४७

तेरी विना ही वनाय की वानिक जीतै सची-रति-रूप-भलापन।
को कवि सो छवि क्यौँ वरनै रचि राखनि अंग सिँगार-कलापन।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति जान जवैँ कछू लागै अलापन।
नाचहि भाव के भेद वतावत है घनआनँद भौँह-चलापन ॥२४८॥

कवित्त

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करैँ कौन पै घिरैँ।
नाच की चटक लसै, अंगनि मटक-रंग,
लाड़िली लटक-संग लोयन लगे फिरै।

---

[२४७] गोरे = गौर वर्ण। सोने के डंडा = कँगना। पहुँचानि = कलाइयोँ पर। रँग्यो = अनुरक्त हो गया। पन्नजि० = पन्ना (रत्न) से जटित। पहुँची = कलाई पर पहना जानेवाला एक गहना। रयौ = लीन हो गया है। नील० = नीलमों की। हियैलैँ = कदाचित् पछेली। वनी = अच्छी। रुचि = छटा। घनीन = अनेक।

[२४८] वनाय = वनावट। वानिक = वेश। सची = इंद्राणी। भलापन = उत्तमता, अच्छाई। तेरी....कलापन = जव तेरी स्वाभाविक छटा ही इंद्राणी, रति आदि के सौंदर्य की श्रेष्ठता जीत लेती है तो फिर यदि तू रच-रचकर शरीर का शृंगार करे तो भला कौन कवि उसका वर्णन कर सकता है। कलापन = समूह। रूप० = रूप खड़ा कर देती है, प्रत्यक्ष दिखाई देती है। कान = कान के द्वारा तान का रूप दिखाती है (विरोध)। नाचहि = नृत्य में जो भाव होता है उसका रहस्य भौँह की चंचलता वता देती है। उसकी भौँहैँ ऐसी ऐसी मुद्राएँ दिखाती हैँ जिनके द्वारा नृत्य के भावोँ की वास्तविक अनुभूति हो जाती है।

[२४९] घूमरे० = नशा लानेवाले (मत्त कर देनेवाले) कटाक्ष। कटाछि = कटाक्ष। धूम० = धूम मचाए रहते हैँ। पै = निश्चय। कौन० = वे कौन हैँ जो उन्हे छेँक सकते है (नहीँ)। चटक = फुरती। अभिनै =

अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोल, सुधि-सोधौ न लहौं हिरैं।
राते तरवानि तरैं चूरे चोप चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥२४९॥

सवैया

नाच लट्टू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि, चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि।
त्यौं सुर साँच सवाद सनैं, मन भूठियैं लागति बीन की बोलनि।
नेकु हँसैं सु करोरिक चंदनि चेरो करै दुति-दंत-अमोलनि।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥२५०॥
मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैं छिनकौ न छकै को।
भूल कौं सौंपि तवै जु सवै सुधि, काहू की कानि कनौड़त कै को।

नाट्य, अभिनय। सोधौ = खोज भी। हिरैं = खो जाने पर भी। चूरे = चूरचूर हो गए। चाड़० = उत्कट इच्छा से पूर्ण। कनावड़े = दबैल।

[२५०] नाच० = नृत्य पर मुग्ध होकर। लड़ीलियै = प्यारी, सुहानेवाली ही। डोलनि = गति। सुर = स्वर। सनैं = सन जाने पर, युक्त होने पर। बीन = वीणा। दुति० = अमूल्य दाँतों की द्युति से। मैन = मदन, काम। रस० = काम की रसधारा में पड़ जाते हैं।

[२५१] मादिक = नशा। छिनकौ न = क्षण भर के लिए भी। को = कौन। भूल० = तव अपनी सारी सुध-बुध भूल (विस्मृति) को देकर। कनौड़त = दबता है, परवाह करता है। काहू० = किसी (वंश या बड़े लोगों) की मर्यादा का विचार करके उसकी परवाह फिर कौन करता है (कोई नहीं)। वारि = निछावर करके। निवारि० = लज्जा को दूर करके। बिन० = बिना कारण ही ऐसी अवस्था बन आती है कि उसे कौन सँभाल सकता है। काज = कारण। सकै को = कौन ठहर सकता है, अपने को सँभालने में समर्थ हो सकता है। बावरे० = पगले, अरसिक। बावरे० = जो अरसिक हैं उनसे (सुजान के रूप के अवलोकन से उद्भूत अत्यंत आनंददायिनी) रीझों द्वारा अपना हृदय सरस करने के अनंतर उनकी अरसिकता पर रुष्ट होकर कौन बकवाद करने जाय (उन्हे समझाने में सिर खपाना व्यर्थ है)।

प्राननि-वारि निवारि कै लाजहि, ऐसी बनै बिन काज, सकै को।
बावरे लोगन सों घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को॥२५१॥

कवित्त

चोप-चाह चाँचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-कीचि कै।
घात लै अनूठी भरैं चेटक*-चितौन-मूठी,
धूँधरि चिलक-चौंध बीच† कौंध सों टिकै।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै।
रूप-अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखैं,
ताकि छाकि मारैं हुरिहाईं न कहूँ छिकै॥२५२॥

सवैया

कोऊ न देखै न काहू दिखावत, आपनो आनन जान अमैंड़े।
बैठि सभा-मधि न्यारे रहैं पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैंड़े।

---

[२५२] चोप० = उमंग की उत्कंठा ही। चाँचरि = होली का राग है। चुहल = विनोद। चोख = अत्यंत फुरती। चुहल० = उसमें जो चटक से भरी हुई स्फूर्ति है वही विनोद की वृत्ति है। कीचि० = कर्दम से। घात० = विलक्षण दाँव साधकर। चेतक० = जादूभरी दृष्टि की मुट्ठी। धूँधरि० = बिजली की लपलपाहट की भाँति अपनी चमक की दमक से वे (होली के समय का सा) धुंध टिकाए हुए हैं। उनकी चमक देखकर लोगों का चौंधिया जाना ही धुंध का छाना है। भीजे = रस से भीँगे, रंग से सराबोर। खिलार = होली खेलनेवाले। नैसिक = थोड़ा सा। जिनकी० = जिनकी सुंदरता पर बिक जाना पड़ता है। ताकि = देखकर। छाकि = छका मारती हैं। हुरिहाईं = होली खेलनेवाली। न कहूँ० = किसी दूसरे के द्वारा छिकतीं नहीं।

[२५३] अमैंड़े = मर्यादा को न माननेवाले। बैठि० = लोगों के बीच रहकर भी सबसे पृथक् रहते हैं। चेटक = जादू। पैंड़े = मार्ग, गति। कहै =

* चेतक। † बीज।

कौन पत्याय कहैं घनआनँद हैं सब सूधे-सयान सौं ऐंड़े।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े ॥२५३॥
नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनि-दिना चित-चोप बिसेखै।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै।
जैसें सुजान लखें घनआनँद नेही न आन हियें अवरेखै।
ऐसें उजागर हैं जग मैं परि चंदहि एक चकोरहि देखै ॥२५४॥

कवित्त

नेही की बिलोकनि बिलोय सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन दव के।
चाड़ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो ह्वै,
कैसें गनै बनै जेऽब ओटपाय तब के।

कहने पर। कौन० = कहने पर भला कौन विश्वास करेगा। सूधे० = लोग तो सीधी चतुराई से ही गर्वित घूमते हैं। वे लोग इन टेढ़ी बातों को क्या समझेंगे। बैंड़े = टेढ़े। रूप० = वस्तुतः रूप का अनुपम नगर (जिसे लोग निकट समझते हैं) बहुत दूर है और इन पगले नेत्रों के मार्ग टेढ़े मेढ़े हैं, बेचारे वहाँ तक पहुँचें भी तो कैसे।

[२५४] बिसेखै = बढ़ाता है। सुधानिधि = अमृत का कोश (सुधाकर)। रचि = हर्षपूर्वक लगकर। परेखै = पछतावे को। जैसें० = ज्यों ही सुजान को देखा। अवरेखै = ठहराता है। ऐसें० = यों तो बहुत से प्रकाशपिंड हैं और बहुत से देखनेवाले हैं। परि = किंतु।

[२५५] नेही = प्रेमी ; चिकनाई से भरा। बिलोय = मथकर। सार = शरीर का सार ; तत्त्व (घृत, स्नेह आदि)। सोधि० = निकाल लेता है। दव के = (दवि कै) नम्र बनकर। चाड़० = प्रिय की उत्कंठा (प्रेमी के) सिर पर चढ़ जाती है और अत्यंत दुलारी होकर (प्रेमी में) बढ़ने लगती है। फिर उस समय वह जो जो उत्पात करने लगती है वे अब (उत्पात कर लेने के अनंतर) गिने भी जायँ तो कैसे, गिनते ही नहीं बनते (अनेक उपद्रव करती है)। ओटपाय = अठपाव, उपद्रव। अलबेले = बिलक्षण। खूँद = कुरेदते हैं,

खेल अलबेले हियो खूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के।
कहिबे कौं कोऊ किन देखौ, न परेखो, वे तौ
चाँदिनी के चोर, मोरपच्छ-अच्छ सब के ॥२५५॥

सवैया

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि।
केलि-कला-रस-आलस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि।

कुचलते हैं। भारे = भारी। सुगरब के = अत्यंत गर्व से भरे हुए (वे खेल)। खेल० = मदमत्त और अत्यंत गर्व से युक्त प्रिय सुजान के वे बड़े और विलक्षण खेल (क्रीड़ा) हृदय को ऐसा कुरेदने लगते हैं कि कुछ कहते ही नहीं बनता। किन = क्यों न। परेखो = परिणाम, फल। चाँदिनी० = खुल्लमखुल्ला चोरी करनेवाले, (छिपकर अँधेरे में नहीं) चाँदनी में चित्त चुरा लेनेवाले। अच्छ = (अक्षि) आँख। मोरपच्छ० = जिस समय वे चित्त चुराते हैं उसी समय लुटनेवालों के नेत्र मोरपंख में बनी आँखों की भाँति बनावटी बने रह जाते हैं, वे चोरी जाते माल को देखते हुए भी बचा रखने में सफल नहीं होते। कहिबे कौं० = कहने को चाहे लोग कितना भी देखते रहें पर सब निष्फल होता है। वे चाँदनी में भी चित्त चुरा लेते हैं और नेत्र वैसे ही बने रह जाते हैं जैसे मोरपंख की आँखें। यहाँ प्रिय के चित्त चुराने की विलक्षणता का वर्णन है और उसका साथ देनेवाले रूप, चाड़ अ॰, खेल आदि बतलाए गए हैं, जो ठगविद्या या चित्त चुराने में सहायक होते हैं। इसमें चित्त के चुराने की सफाई का वर्णन किया गया है।

[२५६] अंगनि० = प्रत्येक अंग, सब अंग। समोए = भीँगे हुए, रससिक्त। भोए = रँगे। रंग = आभा ; वर्ण। निस्यौं करि = निश्चिंत होकर। केलि० = कामकेलि की कला के आनंद से उत्पन्न आलस्य के मद का पान करने से नशे में चूर होकर। यौं करि = इस प्रकार, इतने अधिक। रागत = अनुराग करते हैं। पागत = पगे रहते हैं, लिप्त रहते हैं (सोए रहते हैं)। प्रेमनिसा० = प्रेम की रात्रि में लीन होते और पगते रहते हैं। लागत = जान पड़ते हैं। लागत० = हमारे अंगों को तो (हमारी इंद्रियों को तो) ऐसे जान पड़ते हैं जैसे जागते

प्रेमनिसा-मधि रागत पागत, लागत अंगनि जागत ज्यौं करि।
ऐसे सुजान-विलास-निधानहैं सोएँ जगे कहि ब्यौरियै क्यौंकरि।२५६

चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूके।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ जिन हूके।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद कौँवरे अंग सुजान-वधू के।
चोली-चुनावट-चीन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग*उतू के ॥२५७॥

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग विराजति रंगमई।
घनआनँद जोवन-मातो दसा छबि ताकत ही मति छाक छई।
वसि प्रान सलोनी सुजान रही, चित पै हित-हेरनि-छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कैं हटतार भई ॥२५८॥

कवित्त

माधुरी गहर, उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप विचारियै।
आरसी जौ सम दीजै वूझ कौं अरूझ कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आपौ न निहारियै।

हुए ही हो। ज्यौं करि = जैसे। सोएँ = सोने पर भी जग रहे हैं, स्वयं सोते हुए भी हमारे हृदय में जगे रहते हैं (बसे रहते हैं)। ब्यौरियै० = समझ भी सकूँ तो कैसे।

[२५७] आतुर = व्यग्र। जात० = चूके क्यों जाते हो। अठान = जो ठानने योग्य न हो, अकरणीय, नटखटपना। कित = क्यों, किस लिए। धीर० = धैर्य क्यों नहीं धारण करते। परौ० = पाने की घात मत लगाओ। न छियो = छूओ मत। कौँवरे = कोमल। चोली० = चोली की चुनावट के चिह्नों के चुभ जाने से (दबाव पड़ने से)। उजागर = प्रकट। उतू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं, चुनावट डालते हैं। चुनावट के भी दाग उभड़ आते हैं।

[२५८] छाक = नशा। हित० = प्रेमपूर्वक देखते हुए उसने चित्त पर उसकी छाप डाल दी। हटतार = हठपूर्वक देखने का तार (सिलसिला), टकटकी।

* होत।

मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तें प्यारियै।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान महा,
वारियै कहा, सकोच सोचन ही हारियै ॥२५९॥

सोभा-वरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै विरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान वोलनि मैं,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधें मन छूटै और ठौरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि सपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥२६०॥

जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर हौ,
जगत-उजागर विलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
विधना बनाय बाने अंग अंग लसे हौ।

---

[२५९] गहर = गहरी। लुनाई = लावण्य; सौंदर्य। पानिप = पानी; शोभा। वूझ = वुद्धि, समझ। अरूझ = उलझी हुई, अवरुद्ध। आपौ० = अपने को भी नहीं देखा जा सकता। रीझौ = स्वयं रीझ भी। वारियै० = क्या निछावर करूँ इस संकोच और सोच से परेशान हूँ।

[२६०] वरसीली = वरसानेवाली। सील = शील गुण, शिष्टता; आर्द्रता, गीलापन। रसीली = रसभरी; पानी से भरी। तपति = संताप; गरमी। प्रान० = उसके वोलने में ही प्राणों का दान मिल जाता है। पैज = प्रतिज्ञा। गुन = स्वभाव की विशेषता; डोर। छूटना = वंधन से मुक्त होना; हटना। स्वादनि = स्वादों को। संपति है = शाप देती है, अन्य स्वादों को नष्ट कर देनेवाली है। [अथवा उसकी स्वाभाविक मिठास में ही स्वादों के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है]। उकति = वाणी। ओछी = छोटी, तुच्छ। जतन = भला कोई किसी यत्न या युक्ति से चाँदनी को भी नाप सकता है (नहीं)। पै = से।

छवि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिं
आनँद के घन गूढ़ गाँसनि सौं गसे हौ।
भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाए,
एहो घरवसे आज कौन घर वसे हौ ॥२६१॥
रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू
रचना अनूपम वनाई कौन विधि है।
चलनि चितौनि वंक भौंहनि चपल हौंनि,
वोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौं सिधि है।
अंग अंग केलि-कला-संपति-विलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥२६२॥
सहज उज्यारी-रूप जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन विथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा सुभ-भरे भाल सीस की।
वीच वीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फवी,
केलि-समै उपमा लसति विसे-वीस की।

---

[२६१] आगर = आगार, संपन्न, युक्त। उजागर = प्रकाशित। रसमसे = रंग में मस्त, आनंदमग्न। सरसाने = छाए हुए, भरे हुए। विधना० = विधाता के द्वारा रच-रचकर वनाए हुए वाने से। निखरे = धुले हुए, नि + खरे ('निखरे' और 'खरे' में विरोध दिखाने के लिए)। गाँस = हथियार के फल की टूटन। गसे = भरे हुए। घरवसे = उपपति। कौन० = आज किसका घर वसाया, रातभर किसके घर रहे।

[२६२] विधि = ब्रह्मा; रीति। रसाल = रसीली। मैन० = मदन, काम। मैन = काम के मंत्रों को भी सिद्धि देनेवाली। उज्यारी० = मुख की दीप्ति। रंग = आनंद। रिधि = समृद्धि। सुख० = सुख के भी आनंद की समृद्धि है।

मानौ घनआनँद सिंगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं विलोकति वहनि रजनीस की।॥२६३॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमड़ि आछी बनि है।
मंजन कै अंजन दै भूषन-बसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंही बंक तनि है।
अंग अंग नूतन निकाई उझलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख की सुवास स्वास निसरति सनि है॥२६४॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकैं भरयौ उर कै कजरौटी।
रोम ही रोम सुजान विराजति सोचि तचै मति की मति औटी।
प्रेम बली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैं पिय कौ हिय कीनौ कसौटी॥२६५॥

[२६३] रीस = बराबरी। रति में उसकी आभा के रोम की बराबरी का भी रत्ती भर सौंदर्य नहीं। चिहुर = केश। शुभ = मंगल। भाल = माथा, पेशानी। सीस = (शीर्ष) कपाल। मरीचि = किरण। रुचि = शोभा, छटा। बिसे-बीस की = पूर्ण रूप से। सिंगार = शृंगार (कवि-परंपरा में इसका रंग श्याम माना जाता है)।

[२६४] घमड़ि = घिराव; सजाव। जुटौंही = मिली हुई। उझलनि = (पानी का) उड़िलना। भोई = मिली, युक्त। समोई = सनी हुई। सुवास० = मुख की सुगंध से सनी हुई साँस निकलती है।

[२६५] भावते = प्रिय। रस = प्रीति; वैद्यक के रस। रूप = सौंदर्य; चाँदी। सोधि लै = खोज ले; शुद्ध कर ले। कजरौटी = कज्जली रखने का पात्र (कज्जली पारा और गंधक घोटने से बनती है दोनो घुटकर काजल से काले हो जाते हैं। इसका प्रयोग वैद्यक में रसौषध बनाने में और सुनारों के यहाँ धातु शोधने में होता है)। औटी = आग में खूब तपकर। प्रेम० = बली प्रेम क्या

आनन की सुथराई* कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जौ सर।
नैन अन्यारे तिरीछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम कौ सर।
जान हियैं घनआनँद सों हँसि फैलि फबै सु चँबेली की चौसर ॥२६६॥
घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नैननि-बैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि।
देखत देखत दीसि परै नहिं यौं बरसै घनआनँद लाजनि ॥२६७॥
लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूप-लता लगि दीठि-झकोरै।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरै।
मौन भली, कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरै।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै ॥२६८॥

नहीं कर सकता। नेम० = प्रेम के नियमों का मार्ग उलटा है। सरोवर = तालाब, मानसरोवर। प्रिय० = अपनी सुवर्ण दीप्ति को परखने के लिए प्रिय का हृदय तू ने कसौटी बना रखा है। बराबर प्रिय के हृदय में बसी रहती है।

[२६६] सुथराई = बनावट की सफाई। सर = समता, उपमा। अन्यारे = तीखे। रतिप्रीतम = काम। सर = बाण। चौसर = चार लड़ी की माला।

[२६७] काढ़ि = निकालकर, (परदा करके) । सकेलति = समेटती है। लाजहि = लज्जा (बेचारी) स्वतः लज्जित हो जाती है और वह भी बिना प्रयोजन, उसका उद्देश्य लज्जा को लज्जित करना तो होता ही नहीं, पर वह लज्जित हो जाती है। नैननि० = नेत्रों की वाणी में तो उसका घर है ही, वस्त्र सजाने से (घूँघट डालने से) क्या हुआ। छाज = रमणीयता। लाजनि = लावा ; लज्जा। देखत० = 'लाज' (लावा ; लज्जा) की इतनी अधिक वृष्टि हो जाती है कि वह देखते देखते उसकी राशि से ढक जाती है।

[२६८] लाड़ = प्यार। लहकै = हिलती है। महकै = सुगंध फैलाती है। अंग = शरीर में। दीठि० = दृष्टि के झकोरे लगने से सौंदर्यरूपी लता हिल उठती और महकने लगती है। रस = आनंद। कंद = जड़। मौन = चुप रह जाना ही

राई।

कवित्त

रूप-गुन-ऐंठी सु अमैठी उर पैठी वैठी,
लाड़नि निरैठी, मति बोलनि हरैं हरी ;
जोवन-गहेली अलवेली अति ही नवेली,
हेली है सुरति बौरी आँचर टरैं टरी।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेई हियरा अरैं अरी।
फंद सी हँसनि घनआनँद दगनि गरैं,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैं परी ॥२६९॥

चारु चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखें लेखियति है।
उपमा विचारी न विचारी, नहिं जान प्यारी
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई-तेज-अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनँद उजास लियें,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥२७०॥

अच्छा। नाक = जब वह नाक सिकोड़ती है। विलोएई० = मथे डाल रही है। अकोरै = आलिंगन की मुद्रा। टोहति = टटोलती हैं।

[२६९] गुन = गुण ; डोर। ऐंठी = गर्वीली ; कसी हुई। अमैठी = वटी हुई ; शानदार बनी। निरैठी = मस्त। हरैं = धीरे से। लाड़नि० = प्यार के कारण मस्त। मति० = उसने धीरे से ही बोलकर मेरी बुद्धि हर ली। जोवन० = यौवन से युक्त। हेली = क्रीड़ाशील (अथवा हे अली, हे सखी)। है० = आँचल टालते ही स्मृति पगली होकर (शरीर से) भाग खड़ी हुई। छकाए = नष्ट कर दिए। अरैं० = अड़, ज्ञान की मुद्राएँ। दगनि० = नेत्रों के गले में। मंद = थोड़ा सा। मुख० = सुखमूल उसके मुख के थोड़ा सा खुलने से ही नेत्रों के गले में हँसी-रूपी फंदा पड़ गया।

[२७०] चामीकर = सोना। चोखी = उत्कृष्ट। चटक = शोभा, रंग।

रूप-खिलार दिवारी किथैं नित जोवन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि सैन छलै चित सौं चित-चाव भर्यौ निज दाव विचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान विसारै।
जीव विचारो पर्यौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै।२७१।
पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैं।
लाज-लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं।
अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखी न आवति मोपैं।२७२।

कवित्त

कंठ-काँच-घटी तैं वचन चोखो आसव लै,
अधर पियालैं पूरि राखति सहेत है।

कौन = किस गिनती में गिनूँ। विचारी = बेचारी। विचारी० = सोची ही नहीं। औरैं = किसी अन्य में। अवरेखियति० = ठहराई जा सकती हैं। सनेह = प्रेम; चिकनाई। रवाँनी = रमानेवाली। दसा = दशा, अवस्था, स्थिति; बत्ती। उजास = प्रकाश।

[२७१] खिलार = जुआ खेलनेवाला; क्रीड़ाशील। छाकि = शराब पीकर; मदमस्त होकर। सैन = कटाक्ष; इशारा। चित = कौड़ी का चित पड़ना। चित = चित्त, हृदय। चसको = अभ्यास; आदत। चेटक = जादू। चेटक० = सुजान (प्रिय) के जादू में अपने को भूल जाता हूँ। सयान = चतुरता। हारि० = मुग्ध हो गया है; पराजित ही होता जाता है। जीव० = जीव स्वयं ही अपने को हार गया है (निछावर कर बैठा है) अब दाँव में लगाकर क्या हारे, इसी सोच में पड़ा है।

[२७२] पानिप = पानी; शोभा। खरी = उत्कृष्ट रूप से। निखरी = धुली हुई। रस = प्रेम। रोप = डालती हैं। रस० = नेत्रों में प्रीति की जो राशि दिखाई देती है वह अच्छाई की नींव डालती है। लड़ी = दुलराई हुई। सील० = शील से भरी। अंजित = अँजी हुई। श्री = शोभा। ओपैं = चमकती हैं (अपनी श्री से)। सौं = शपथ। ये० = ये मेरी आँखें मेरे पास लौटती ही नहीं, तेरी आँखों की शोभा ही देखती रह जाती हैं।

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी
कानिनि ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है।
छकेई रहत रैन-द्यौस प्रेम-प्यास-आस,
कीनी नेम-धरम-कहानी उपनेत है।
ऐसे रस-बस क्यौं न सोवै और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्यौई करत मीनकेत है ॥२७३॥

सवैया

उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि बैठी विराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सौं सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।
रसना-अली कान-गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥२७४॥

कवित्त

याहि आएँ आवन की आसा उर आय बसै,
चाहै निरवाहै नित हित-कुसरात कौं।

[२७३] कंठ = कंठरूपी शीशे के घड़े से। चोखो = अच्छा, तीव्र। आसव = शराब। सहेत = सप्रयोजन, सकारण। ह्वै = द्वारा। चेत = चेतना। पी० = चेतना पी लेती है, चेतना नहीं रह जाती। छकेई० = मतवाले ही बने रहते हैं। नेम = प्रेम के नियमों की कर्त्तव्य-कहानी। कीनी उपनेत = उत्पन्न कर ली है। ऐसे० = ऐसे रस के वश में होकर और स्वाद क्यों न सो जायँ (और सब आनंद भूल जाते हैं)। मीनकेत = काम।

[२७४] मौन० = मौन का घूँघट डालकर, मौन की साधना करके। बनी = दूल्हन। दुरि० = बातरूपी दुलहिन छिपी बैठी है, बात हृदय के भीतर मौन की आड़ में ही रह जाती है। पदारथ = रत्न; पद के अर्थ। रस० = प्रीति-पूर्ण रूप की मणि। भूषन = उपमा आदि अलंकार; गहने। रस = शृंगार आदि रस; प्रीति। रसना = वाणी। अली = सखी। पधरावति = प्रविष्ट कराती है, ले आती है। ठनी = सजी हुई। रसना० = वाणीरूपी सखी कान की गली से (प्रिय को) चित्त की सजी हुई शय्या पर ला बैठाती है। बूझनि = बुद्धि, मति। अंक० = गोद में बसते हैं। बूझनि० = मति की गोद में (प्रिय) बसते हैं। धनी = प्रिय।

हैं री वह वैरी घैरी उघरयौ विगोवनि पै,
ओछो जरि गयौ गोवै कहा भेद-बात कौं।
मधुर सरूप याहि देखिये अनंदघन,
पोखै जान प्यारे संग रंग-मनजात कौं।
साँझ सही साथिनि सँजोगहि सजाय देति,
लाग्यौ रहै गोहन ही प्रात प्रान-घात कौं ॥२७५॥

मुख देखें गोहन लगेई फिरैं भौंर-भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति-रीझे चायनि सौं पायन-परस-काजैं,
रसलोभी विवस मराल-जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसे हूँ निगोड़े नैन कैसें चैन पावहीं।
सींचिये अनंदघन जान प्यारी जैसें जानौं,
दुसह दसा की बातैं बरनी न आवहीं ॥२७६॥

---

[२७५] याहि० = इस संध्या के आने से (प्रिय के) आने की आशा हृदय में होती है। हित = प्रिय। कुसरात = (कुशलात) कुशल-क्षेम। चाहि० = यह प्रिय के कुशल-क्षेम को ही नित्य देखती और उसका निर्वाह करती है। वह = प्रभात। घैरी = बदनामी करने योग्य, अपयशी। उघरयौ = प्रकट हुआ है। विगोवनि पै = नष्ट कर डालने के लिए। ओछो = नीच। जरि० = जला हुआ (गाली)। गोवै = छिपाए। भेद = रहस्य, हृदय की गुप्त बातें। मधुर = आकर्षक। याहि = संध्या को। मनजात = काम। रंग = वर्ण; शान। सही = सचमुच। साँझ = संध्या संगिनी सा सचमुच संयोग सजाती है, मिलने का निश्चय होता है। गोहन ही = साथ में। प्रात० = उस संध्या के साथ (पीछे-पीछे) यह प्रभात प्राण-घात के लिए लगा रहता है।

[२७६] गोहन = साथ। छूटे० = खुले केशों को बादल समझकर। गति० = गति पर मुग्ध होकर। पायनि० = पैरों को छूने के लिए। विवस = भावमुग्ध, लोभ-विवश। मन० = इच्छा होती है। प्रान० = प्राण (प्रिय)

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौंनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छवि-हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैनन पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२७७॥

सवैया

मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रस-रंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यौ है।
ह्वै उर एक भए छुरि कै घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रवाह वह्यौ है ॥२७८॥

के संपुट (डिब्बे में)। गोपि० = छिपा रखूँ। नैन० = नेत्र भी कैसे चैन पाएँ। उन्हें भी मछली समझकर वगले खाने दौड़ते हैं।

[२७७] द्रवित = घुलकर ; द्रवीभूत होकर। स्रवित० = टपककर ; प्रस्वेद-युक्त होकर। सचि० = एकत्र कर ली। सौंज = सामग्री। रसाल = रसमयी। रोम० = अपने एक एक रोएँ से जिस मूर्ति की छटा देखी गई है। प्रवाह० = आँसुओं के प्रवाह से युक्त। लही० = समझ में नहीं आती। ऊलट = वैपरीत्य। अनेरे = विलक्षण। लिखि० = आपकी मूर्ति का स्थिर चित्र निरंतर प्रवाहित होनेवाले नेत्रों पर मैंने वना रखा है। इस अनोखे वैपरीत्य की वात समझ में ही नहीं आती। रूप० = न जाने यह आपके सौंदर्य की करतूत है अथवा मेरे चितेरे चित्त की विचित्रता है। चित्र की इस विलक्षण स्थिति के कारण आप हैं, आपकी प्रकृति है या मैं हूँ (मेरा ही स्वभाव है)।

[२७८] भोय = भिगाकर। समोय० = मिल गया है, समा गया है। स्वाद० = रस के रंग से युक्त ऐसे स्वाद जगे। आनंद का ऐसा स्वाद मिला। वेई = वे अंग ही। न जात० = अंग उनका अनुभव ही कर सकते हैं, उसे वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता (वह सुख अनिर्वचनीय है) छुरि० =

अति रूप की रासि रसीलिये मूरति जोहौं जबै तब रीझि छकौं।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-बिचित्र दसा सौं थकौं।
अनदेखें दई जु कछू गति देखिये जीव ही जानै न ब्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि बिचारि बिचारि जकौं॥२७२॥
स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
धूप के पुंज मैं ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुख-कारी।
कै छवि छायौ सिंगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सौं पहिरी चुनि साँवरी सारी॥२८०॥
कित जाउँ लै जान-सजीवन!प्रान कौं आन के लेखैं न छाहौं धिजौं।
इहि साल दहौं नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-बारि भिजौं।
दुरि आप नए हू इकौसें मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौं सुअनोखिये रीझि पै रीझि खिजौं॥२८१

घुलकर, एक में मिल गए। सुद्ध = शुद्ध सामीप्य की प्राप्ति हुई। रूप० = रूप की अनुपम तरंगों को नेत्रों से देखते ही रहते हैं, फिर भी चित्त प्रेम के प्रवाह में बहा जा रहा है, सौंदर्य देखते ही चित्त प्रेम में लीन हो जाता है।

[२७९] जोहौं = देखती हूँ। छकौं = मतवाली हो जाती हूँ। रंग = वर्ण ; क्रीड़ा। चित्र० = विलक्षण चित्र। अनदेखें = उन्हें न देखने पर। दई = हे दैव। जु कछू० = जैसी कुछ दशा दिखाई पड़ती है। जीव० = हृदय ही जानता है, उसे समझना कठिन ही है। सदेह० = शरीरधारी होकर भी बिना शरीर के हो जाती हूँ। पचि = परेशान होकर। हारि = हार मानकर। जकौं = बकती रहती हूँ।

[२८०] थिर० = स्थिर बिजली पर। अमावस० = अमावस्या की गोद में चाँदनी शोभित है। ज्वाल = अग्नि की लपट। कै छवि० = अथवा सुजान के शरीर की प्यारी दीप्ति देखकर उस पर शृंगार ने अपनी छटा छा दी है। शृंगार का रंग कविसमय में श्याम है। चोपनि० = उत्साहपूर्वक। साँवरी = नीली।

[२८१] लेखैं = गणना में। छाहौं = छायामात्र भी। न धिजौं = नहीं समझा जाता। साल = पीड़ा। बारि = जल, आँसू। भिजौं = भींगता हूँ। दुरि = छिपकर। इकौसें = अकेले में। अनखानि = झुँझलाहट। छिजौं = छीजता

तुम साँची कहौ हित के चित की कित भूल-भरे इत आयपरे ।
कि कहूँ पहिली-परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे ।
वलि वैठौ सुजान तौ को वरजै धरि पावन पावन नैन करे ।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौं जिहि रंग-तरंग तरे॥२८२॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे ।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे ।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तैं अखंडित लोभ लगे ।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे॥२८३
रिस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै लागति, जागति जोति महा ।
अनबोलनि पै वलि कीजियै वानी, सु बोलनि की कहियै धौं कहा ।

रहता हूँ, क्षीण होता जाता हूँ । डर० = डीठ लग जाने के भय से । नीठि = किसी प्रकार भी, कठिनाई से । अनोखियै० = अपनी अनोखी रीझ पर पहले रीझता हूँ फिर खीझता हूँ ।

[२८२] भूल-भरे = भूलकर ; मेरी सुध को भूलने की वान धारण किए हुए । सुभाय = स्वभावतः । ढरे = द्रवीभूत हुए । को० = कौन मना करता है । पावन० = पैरों को यहाँ धरकर (आकर) नेत्र पवित्र कर दिए । जकि से = भौंचक्के से । निरखौं० = देखूँ और समझूँ । सुनिहौं० = प्रेम की जिन तरंगों को पार करके आ रहे हैं उनकी कथा भी सुनूँ ।

[२८३] छाक = नशे की मस्ती । कर चाँपि = हाथ से दबाकर कपोल के स्वाद में लिप्त हुए, कपोलों का चुंबन किया । घन० = आनंद की वृष्टि में ये रीझनेवाले भीग रहे हैं । आनंद में मग्न हैं । खगे० = सब अंगों से लग गए । अनंग० = काम से दग्ध । करि० = गंडस्थल अर्थात् कपोलपाली को दंत के आघात से सुशोभित किए हुए । अखंडित = पूर्ण । आरसी = आलसी । सुजान० = मेरे महा आलसी भाग्य उसी प्रकार जागे जैसे प्रभात के समय सुजान आलस्य से भरी जगती है ।

[२८४] रिस० = रोषपूर्वक झुँझलाने से ही । ऊठ = उमंग । रुखियै० = रुखाई से भरी हुई उमंग भी । अनूठियै० = अनूठी ही जान पड़ती है । जागति० = और उससे हृदय में अत्यंत प्रकाश छा जाता है । अनबोलनि० =

ननिहारनि हेरनि हारति दीठि औ पीठि दियेँ समुहात लहा।
घनआनँद प्यारी सुजान दै कान अहा सुनियै हित-बात हहा ॥२८४॥

कवित्त

कौन की सुजन-जोन्ह अमल अपूरव को,
जग मैँ उदोत देखियत दिन-रैन है।
जाकी जोति जागै रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कवि मित्रन कौँ पोखै मन-चैन है।
नेह-निधि बाढ्यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौँ कहूँ मैँ न है।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सींचौगे स्रवन कहि सुधा-सने बैन है ॥२८५॥
नीके नैन ऐन पाय चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरेँ हिय सियरात है।

न बोलने पर ही मैंने वाणी निछावर कर दी है। फिर बोलने का कहना ही क्या है। ननिहारनि० = आपके न देखने को भी देखकर मेरी दृष्टि थकती नहीँ है। औ० = पीठ दिए खड़ी रहने पर भी लाभ मेरे संमुख होता है। पीठ फेरकर खड़ी होने की छटा पर मैँ मुग्ध हो जाता हूँ। दै कान० = कान देकर, ध्यान देकर (कम से कम) प्रेम की बातेँ ही सुन लीजिए।

[२८५] जोन्ह = (ज्योत्स्ना) चाँदनी। अमल = कलंकरहित ; स्वच्छ। अपूरब = जो पूर्व दिशा मेँ न उगे ; अद्वितीय। उदोत = उदय ; प्रकाश। दिन रैन० = दिनरात (चंद्रमा की भाँति केवल रात मेँ ही नहीँ)। चकोर० = चकोर के नेत्र ; नेत्ररूपी चकोर। बुध = बुध ग्रह ; पंडित। कवि = शुक्र ग्रह; कविता करनेवाला। मित्र = सूर्य ; सखा। निधि = समुद्र। न सो० = ऐसा तो मैँने कहीँ देखा ही नहीँ। बिरह = ताप ; वियोग का संताप। दुख० = दुःखरूपी अंधकार।

[२८६] ऐन = घर। लड़ीली = दुलारी। अरबीली = हठी। लाड़ो० = प्यार भी बहल जाता है। लड़काना = प्यार पाकर बहल जाना। गँधेली =

एरी मेरी सहज लड़ीली अरवीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहे लाड़ौ लड़कात है।
रूप-मद-छाके तें गँवेली गरवीली ग्वारि,
तोहि ताकैं रूपौ उमगनि उमदात है।
आनँद के घन सौं न कीजै मान जान प्यारी,
दान दीजै पिय सौं न मानें यौं ही जात है ॥२८६॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुन-रासि है हूजत क्यौं करुवे गहि दोसनि ।
आपुन त्यौं तकियै सकियै कहि हाहा हठीले न रूसियै रोसनि ।
तासौं इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि ।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हौं ऐ परि यौं मरियैगो मसोसनि॥२८७॥
उर आवति है अपने कर द्वै वर वेनी विसाल* सौं नीके कसौं†।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि किये अनखौंहैं सुभाय के त्रास त्रसौं।
घनआनँद यौं वहु भाँतिनि हौं सुखदान सुजान-समीप वसौं।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायन ऊपर सीस घसौं॥२८८॥

गाँव की रहनेवाली। उमदात है = उन्मत्त होता है। पिय० = प्रिय से इस प्रकार का व्यवहार नहीं किया जाता।

[२८७] मीठे = (मिष्ट) मधुर ; प्रिय। गरुवे = भारी। करुवे = कड़वे ; विमुख। आपुन० = अपने गुणों की ओर देखिए। सकियै = मुझपर कृपा करने का उपाय कीजिए। कहि = दोषों को कहकर। जो० = जिसे भरोसा देकर सरस कर रखा है। वारियै० = हे सुजान मैं आप पर अपनी ओर से करोड़ों वार प्राण निछावर करती हूँ, किंतु क्या इतने पर भी मुझे मसोसते ही मरना होगा। ऐ परि = फिर भी।

[२८८] उर० = हृदय में यह वात आती है। अपने० = अपने दोनों हाथों को सुजान की सुंदर विशाल वेणी से भली भाँति वँधवा दूँ। हित० = प्रेम की उमंगों से आँसू वहाते हुए। नै = झुककर। समष्टि में यह कि स्वतः उनका वंदी वन जाऊँ।

* विलास। † गसौं।

जान प्रवीन के हाथ को वीन है मो चित-राग-भरयौ नित राजै।
सो सुर साँच कहूँ नहिं छाड़त, ज्यौं ही बजावै लियें मन वाजै।
भावती मीड़ मरोर दियें घनआनँद सौगुने रंग सौं गाजै।
प्यार सौं तार सु ऐंचि कै तोरत क्यौं सुघराइयै लाजत लाजै॥२८९॥

कवित्त

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखैं,
लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की।
निपट नवेली नेह-झेली लाड़-अलबेली,
मोह-ढरहरी भरी विरह-रितौन की।
लोने लोने कोने ह्वै छवीली अँखियान की सु,
रंचको न चूकै घात औसर-वितौन की।
एरी घनआनँद बरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की॥२९०॥
तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौंहैं न निहारियो।

[२८९] वीन = वीणा। मन = हृदय। मीड़ = गमक। गाजै = तीव्र ध्वनि करता है। सुघराइयै = चतुरता को। लाजत० = लज्जा से चतुरता को भी लज्जित करते हुए।

[२९०] उघरि = उघड़ना, खुलना, प्रकट होना। हितौन = प्यार करना। नेह० = स्नेह से भरी। लाड़ = प्यार से विलक्षण वनी। मोह = अपनायत, ममता। ढरहरी = द्रवणशील। रितौन = खाली करना, दूर करना। भरी० = विरह-दुःख दूर करने में लगी हुई। लोने = सुंदर। रंचको = थोड़ा भी। औसर० = अवसर को ठीक व्यतीत करना, अवसर पर अनुकूल कार्य करना। न चूकै० = अवसर पर अपनी घात चूकती नहीं। वरसि = आनंद की वर्षा करके।

[२९१] अनमाननि = न मानना। मेरे मन० = मेरा मन स्वीकृत कर रहा है। लोचननि० = संमुख न देखने पर ही मेरे नेत्र निछावर हैं। हारैं = हम निछावर करते हैं। सौंहैं = संमुख। झुकि = खीझकर। खिसकारियो =

कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तेँ मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहौ लहै तेरे हठ हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तेँ टरै न ये अनखि कर टारिबो ॥२९१॥
ललित लसौँहीँ सु ढरौँहीँ नैक सौँहीँ भएँ,
त्यौँ ही रहि गईँ गौँही डोलति न डीठि है।
हठ पटरानी प्रान पैठिबे कौँ फिरि बैठै,
देखी बिन बोलनि मैँ रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति मुरि दीनेँ कीनेँ मान,
जान प्यारी बिरचैँ हू राचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिँ यौँ बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥२९२॥

झटक देना। कोरि० = खीझकर मुझे झटक देना (ही इतना भाता है कि) (मिलनेवाले) करोड़ोँ आदरोँ का भी निरादर करता है, रुखाई के सामने करोड़ोँ आदरोँ को कुछ नहीँ समझता। ज्यारी = जिलानेवाली। जीव० = तेरे हठ से हारा हुआ मेरा जीव जीत का लाभ प्राप्त करता है। रूखी० = तेरी रूखी बातोँ से भी उत्कृष्ट स्नेह बढ़ता है। अनखि = झुँझलाकर। हिये० = झुँझलाकर हाथ हटा देना ही हृदय से नहीँ हटता।

[२९२] ढरौँहीँ = ढलनेवाली, द्रवीभूत होनेवाली। नैक० = थोड़ी भी संमुख होने पर। गौँही = घात को ही। डोलति० = दृष्टि (वह छटा देखने से) हिलती (हटती) ही नहीँ। हठ० = जब तुम मुँह फेरकर बैठ जाती हो तब हठरूपी पटरानी प्राणोँ मेँ घुसकर बैठ जाती है। रस० = रस का दूतत्व प्राप्त होता है, रस की बातेँ समा जाती हैँ। मुरि० = मुड़कर (मुँह फेरकर) खड़ी होना। कीनेँ = मान करना, रूठ जाना। बिरचैँ हू = उदासीन होने पर भी, विमुख होने पर भी। राँचनि० = मजीठ की भाँति (कभी न मिटनेवाला)

कवित्त

रिसभरी भोरिबे कौँ देखी सुनी प्रीति नीति,
　　नायक रसीलो त्रिनै विनती महा करै।
चोप चाय दायनि सौँ अमित उपायनि लौँ,
　　ज्यौँ ही वनै त्यौँ ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौँ अधीन है अनंदघन,
　　जान प्यारी पायनि पै कव को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारैँ न टरति नेको,
　　हारयौ सब भाँति जो विचारो सो कहा करै ॥२९३॥
सीस लाय, दृग छाय, हिये पै वसाय राखौँ,
　　इते मान मान आवै प्रानन मैँ लै धरौँ।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
　　परसि कपोलन सौँ मंजन कियौ करौँ।
केलि-कला-कंदिर विलास-निधि-मंदिर ये,
　　इन ही के वल हौँ मनोज-सिंधु कौँ तरौँ।
यातैँ घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
　　उमगि उमगि वेर वेर तेरे पा परौँ ॥२९४॥

अनुराग छा जाता है। सो न० = उस मन को फिर नहीँ पाता। विमन = मन से रहित, मुग्ध, वेहोश।

[२९३] भोरिबे कौँ = वश मैँ करने के लिए। रिसभरी० = तेरी प्रीति की नीति रोषभरी होकर भी वश मैँ करनेवाली दिखाई और सुनाई देती है। लौँ = द्वारा। प्रापति० = लाभ की प्राप्ति करता है। हहा = हाय हाय (वेदना का उद्घाटन)। नई = विलक्षण।

[२९४] इते मान = इतना अधिक। मान० = संमान, श्रद्धा। घूमि० = मस्त होकर। मंजन० = घिसा करूँ, सहलाया करूँ। केलि० = क्रीड़ा की मिठास से भरा। भीजि = सिक्त होकर, युक्त होकर।

सवैया

राधे सुजान चितै* चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है।
माखन तैं मन कौंवरो है यह वानि न जानति कैसैं कठोर है।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिवे कौं न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है ब्रजचंद पै तेरो चकोर है॥ २९५॥

कवित्त

हाहा करि हारी न निहारी रूखियै महा री,
मोहूँ सौं चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करै न हूँ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावैं न धरैये नावँ ऐसे औ कहाय हूँ।
राकानिसि आली व्याली भई घनआनँद कौं,
ढरि चल्यौ चंदा पै न ढरी चंद मुख हूँ॥२९६॥

सवैया

मनमानिवोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सौं कछु वोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौं अंतर खोलति है।

[२९५] दै = देकर। कौंवरो = कोमल। ह्वै = होकर, होने पर भी।

[२९६] न निहारी = न देखा। चिन्हारी = पहचान। अरहि = हठ को। हूँ = हाँ। प्रानपति = प्रिय। आरति = दुःख, वेदना। ऐसे० = ऐसे नामवाली होकर और ऐसी कही जाकर। व्याली = नागिन। ढरि० = चंद्रमा डूब रहा है। न ढरी = द्रवीभूत न हुई, पिघली नहीं। चंद मुख हूँ = चंद्र के से मुखवाली होकर भी (चंद्रमा से ही ढलने की बात सीख लेती)।

[२९७] अनमानिवोई = न स्वीकार करना, अस्वीकार करना। मन० = तेरे मन ने स्वीकार किया है। ननिहारनि० = प्रिय को न देखने की ओर ही तू देख रही है, उन्हें तू देखना ही नहीं चाहती है। उर० = हृदय की

* इतै, खतै।

रिस-संग महा रसरंग बढ्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनँद जान पिया के हियेँ कितकौ फिरि बैठि कलोलति है॥२९७॥
कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी।
परतीति दै कीनी अनीति महा, विष दीनौ दिखाय मिठास-डरी।
इत काहू सौँ मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैँड़े परी॥२९८॥
अब यौँ उर आवति है सजनी उन सौँ सपने हूँ न बोलियै री।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलैँ तौ मिलौँ, मन तैँ गस-गूज न खोलियै री।
दृग देखन की कछु सौँ हैँ नहीँ, इन गौहन भूलि न डोलियै री।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहेँ परेखनि छोलियै री॥२९९॥
बारनि भौँर-कुमार भजैँ, पुहुपावलि हास-विकासहि पूजति।
पाठ कियै करै आठ हू जाम, सु बोलनि सीखियैँ कोकिल कूजति।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छवि आन क्यौँ आँखिन छूजति।
एरी*बसंत-लजावनि कंत सौँ जान ह्वै मानमई कित हूजति॥३००॥

गाँठ की ओर ही तेरा हृदय खुला (लगा) है। रिस० = रोष से ही तेरा प्रेम बढ़ता है। गौहन = साथ। जड़ताइयै० = जड़ताई के साथ ही घूम रहा (जंगम) है। कितकौ = न जाने कितना। फिरि बैठि = मुँह फेरकर बैठी हुई। कलोलति० = क्रीड़ा कर रही है। तेरा मुँह फेरना ही उनके हृदय में बस गया है।

[२९८] डरी = डली, टुकड़ा। इत = हमने तो सबसे नाता तोड़ लिया। उन० = वहाँ उन्होंने सारी बातेँ खेल की भाँति तुरंत समाप्त कर दीं। भुराई = भोलापन। पैँड़े० = पीछे पड़ी है।

[२९९] गस = गाँस, गाँठ। गूज = लपेट। मन० = मिलने पर भी मन की गाँठ की लपेट न खोलूँ। गौहन = साथ। परेखा = पछतावा। चित० = चित्त को पछतावे से क्यौँ छीलूँ।

[३००] भजैँ = सेवा करते हैँ। पूजति = पूजा करती है। सीखियैँ = सीखने के लिए। कूजति = कुहकती है। आन० = तेरी छवि देखकर आँखें दूसरे की छवि कैसे छूएँ (देखने का प्रयास भी नहीं करतीं)।

* और।

कवित्त

हमैं तुम्हैं आजु लौं न अंतर हो प्रान प्यारे,
कहाँ तें दुर्‍यौ सो वैरी आड़ैं आनि है भयौ।
जियरा विचारो इन सोचनि समय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयो।
रावरे हू रंचक विचारि देखौ जानमनि,
कौन के सहाय आय महादुख या दयौ।
मारि टारि दीजै ऐसो नीच वीच भलो नाहिं-
वहै रस भीनौ घनआनँद रहै छयौ ॥२०१॥

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्राननि खरे खगौ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठौ आय,
महा निरमोही मढ़े मोह सौं हियो ठगौ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई-भरे रोम रोमहि अमी पगौ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करैं हू प्यारे निपट भले लगौ ॥२०२॥

विष को डवा* है कै उदेग को अँवा है, कल
पलकौ न चाहै अथवा है चक्र वात को।

---

[२०१] सो वैरी = वह शत्रु (अंतर)। आड़ैं० = सामने आ पड़ा है। इन० = बेचारा जी इन्हीं सोचों में डूबा रहता है। उजार = उजाड़। कौन० = किसकी सहायता में आकर (लगकर)। नीच० = ऐसे बीच (पार्थक्य) रूपी नीच का बीच में रहना ठीक नहीं।

[२०२] अंतर = भीतर के कसे हुए। ढीले० = शिथिल, उदासीनता के। खरे० = अत्यंत। खगौ = धँसते हो। मोह = ममता; भ्रांति। साँच और भ्रांति में विरोध। उघरे = पृथक् हो गए हो। अमी० = अमृत (मधुरता) युक्त। 'कटुताई' और 'अमी' में विरोध।

* डिब्बा।

बीजुरी को बंधु, किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
महामोह-अंध दंड अतन-अलात को।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को।
बैरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
कैसैं हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥३०३॥

सवैया

रूप छक्यौ तुम्है देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन को दब।
मोहि लियौ हँसि हेरि छबीले कहीं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब।
आस-भरयौ गहि द्वार परयौ जिय, या घर आय कै जाय कहाँ अब३०४

कवित्त

चाहत ही रीझि लालसानि भीजि सुख सीझि,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनि-द्यौस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागैं पागैं चंचलता च्वै गईं।

---

[३०३] डवा = थैला। अँवा = आँवाँ। कल = चैन। पलकौ० = क्षणभर भी चैन नहीं पाता। चक्र० = वायु का चक्र है, बवंडर है। महा० = अत्यंत मोह से अंधा। अतन = कामदेव। अलात = आलातचक्र। दंड० = कामदेव के आलातचक्र का दंड है। उजार = उजाड़पन। जंत्र० = सुखों को मारने का यंत्र है।

[३०४] रूप० = सौंदर्य से परिपूर्ण। समाजन = समूह। दब = दबाव। साज = सजावट की सामग्री। सोच० = सोच-विचार एकदम त्याग दिए।

[३०५] चाहत० = देखते ही। लालसानि० = लालसाओं से युक्त होकर। सुख० = सुख से भरकर। भ्वै० = लीन हो गईं। लगीं = तेरे रूप के दर्शन में ऐसी अनुरक्त हुईं। कहूँ० = कहीं नहीं लगतीं, किसी दूसरे को देखना ही नहीं चाहती हैं। पन = प्रतिज्ञा (तेरे देखने की)। पागैं = मग्न हैं, लीन हैं। चंचलता० = चंचलता एकदम त्याग दी है, स्थिर भाव से देखती हैं।

हित की कनौंड़ी लौंड़ी भई ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग डग द्वै गईं ।
माधुरी-निधान प्रान-ज्यारी जान प्यारी तेरो
रूप-रस चाखें आँखें मधुमाखी ह्वै गईं ॥२०५॥

आँखें रूप-रस चाखैं, चाहैं उर संचि राखैं,
लोभ-लागी लाखैं अभिलाखैं निवरैं नहीं ।
तोहि जैसी भाँति लसै, बरनिबो मन बसै,
बानी गुन गसै, मति-गति विथकै तहीं ।
जान प्यारी सुधि हूँ अपुनपौ बिसरि जाय,
माधुरी-निधान तेरी नैसिक मुहाचहीं ।
क्यौं करि अनंदघन लहियै सँजोग-सुख,
लालसानि भीजि रीझि बातैं न परैं कहीं ॥२०६॥

जो कछू निहारै नैन, कैसें सो बखानै बैन,
बिना देखी कहैं तौ, कहा तिन्हैं प्रतीति है ।
रूप के सवाद-भीनै बापुरे अबोल कीनै,
बिधि बुधि-हीनै की अनैसी यह रीति है ।
सुख दुख साखी मिलें बिछुरें अनंदघन,
जान-प्रानप्यारे सौं नवेली इन्हैं प्रीति है ।

हित = प्रेम । कनौंड़ी = दबैल, उपकृत । पिछौंड़ी = पीछे की ओर । नेह० = प्रेम के मार्ग में दो कदम चल चुकी हैं, प्रेम करना आरंभ कर दिया है ॥ ज्यारी = जिलानेवाली ।

[३०६] संचि० = हृदय में इकट्ठा कर रखना चाहती हैं । लागी = लगी हुई । निवरैं० = दूर नहीं होतीं । भाँति = ढंग, मुद्रा । बानी० = मेरी वाणी उन्हीं गुणों में लगती है । मति० = बुद्धि की गति रुक जाती है, बुद्धि काम नहीं करती । सुधि० = सुध करते ही अपनत्व को भूल जाना पड़ता है ॥ नैसिक = थोड़ा । मुहाचहीं = मुख का देखना, दर्शन ।

[३०७] प्रतीति० = विश्वास या सत्यता का निश्चय कैसे हो । बापुरे = बेचारे नेत्रों को । अनैसी = बुरी । सुख० = उन अवस्थाओं के क्रमशः सुख और

औरहि न चाहैं पन पूरो नित लै निबाहैं,
हारे हँसि आपौ, जीति मानैं नेह-नीति हैं ॥३०७॥
साखा-कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि द्वै पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ै,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौं,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।
प्रिय-मनसा लौं वारी मिहँदी अनंदघन,
परी जाल प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥३०८॥
आरति के ऐन द्यौस-रैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि तो अचूक।
पूरे पन-राचे छाकि, पाकि चूरे मत काचे,
ताचे साँच आँच के, टरैं न टक तैं कछूक।

दुःख ही साक्षी हैं जो उनको आपके मिलने और बिछुड़ने पर होता है। नवेली = नूतन, विलक्षण। हारे० = अपनत्व को ये हँसते हुए हारते हैं। जीति० = केवल प्रेमनीति की ही जीत स्वीकार करते हैं।

[३०८] मनोवृत्ति और मेहँदी की एकता दिखाई गई है। साखा० = कुलरूपी शाखा से टूटती है। पखान = पाषाण, पत्थर; पक्ष (प्रिय और प्रेमिका के)। घसनि = घिसा जाना; वृत्ति की स्वच्छंदता का दबना। सोच० = सोच के कारण इतनी सूख गई है कि इसे पानी (आँसुओं की धारा) में डूबना पड़ता है। घुरि० = इच्छाओं में ही घुली जा रही है। दुखहाई = दुःख की मारी। सलाक = शलाका, वह पतली सींक जिसके सहारे मेहँदी लगाई जाती है; कटाक्ष। परख = परीक्षा। अहै = है। मनसा० = मनोवृत्ति की भाँति। वारी = निछावर हूँ। मिहँदी = (सं० मेंधी) मेहँदी।

[३०९] ऐन = घर। चढ़े० = उमंग से मस्त होकर। साजैं = अंगीकार करते हैं। ईठि = इष्ट, प्रिय। तो = तव, तेरी। राचे = रचे हुए, अनुरक्त; लाल। पाकि = प्रेम में पककर। मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। ये पककर लाल (अनु-

रूप-उजियारे जान प्यारे हैं निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक।
नेमी अंध हौंस मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसे अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥३०६॥

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, विचार
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ
नेही हरि राधा, जिन्हैं देखें सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायौ है ॥३१०॥

रक्त) हो गए हैं। इन्होंने कच्चे मतवाद त्याग दिए हैं। ताचे = आग में पके हुए। कछूक = कुछ भी। जिन = जिन नेत्रों ने। कनौड़ = संकोच। ऊक = लुक। भीजे० = ये नेत्र संकोच में आग लगाकर आनंद के घन की वृष्टि से भीँग रहे हैं। नेमी = केवल परिपाटी या नियम का पालन करनेवाले। अंध = अंधे। नेमी० = केवल नेम का पालन करनेवाले अंधे नेत्र। हौंस = उत्कंठा। रीस० = बराबरी करना चाहते हैं। अरबरैं = हड़बड़ी मचाते हैं। ज्यौं० = जैसे उल्लू चकोर होना चाहे।

[३१०] वार = इस ओर का तट। विचार० = बेचारा विचार तो तट से ही घबड़ाकर लौट आया है। ताही० = उस प्रेमसागर में एक रस होकर। बिबस० = डूबकर, मग्न होकर। अवगाहैं = स्नान करते हैं। जिन्हैं० = जिन हरि-राधा को देखकर वह प्रेमसमुद्र उमंगित होता रहता है। छूट्यौ = छटककर गिरा हुआ। पूरि० = उस प्रेमसमुद्र से छटककर गिरा एक कण (बिंदु) ही सब लोकों में उमड़ता और छाता रहता है। सोई० = वही प्रेम सुजान (प्रेमिका) से लगकर सांसारिक प्रेम के रूप में व्यक्त होता है। ऐसें० = मन को इस प्रकार मथकर उसके स्वरूप का निश्चय करता हूँ।

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सौं पागि जगाए।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डर ढीलियै लागौ सुहाए।
भोर हू ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३११॥
अंगनि पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोबन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे-भरी छतिया-उथराई।
जान-महा-गरबे-गुन मैं घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई।
पैने कटाछिन-ओज मनोज के बानन बीच बिथी मुथराई ॥३१२॥
रस-रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सौं अंगनि मोरति है।
मुख-ओप अनूप बिराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है।
अँखियानि मैं छाकनि की अरुनाई, हियैं अनुराग लै बोरति है।
घनआनँद प्यारी सुजान लखेँ डरि डीठि हितू तिन तोरति है ॥३१३

---

[३११] लोयनि० = इन नेत्रों में (होली का अवसर होने से) लाल लाल गुलाल भरा है या इन्हें अनुराग में डुबाकर रातभर जगाया है ? रस = प्रीति; आनंद। चाँचरि = होली पर गाया जानेवाला राग विशेष, फाग के गान। चौचँद = क्रीड़ा। नख० = नख का घाव। स्रम० = स्वेद के जल से भींग रहे हैं। ढीलियै = शिथिल। भोर हू० = प्रभात हो जाने पर भी उस होली खेलनेवाली से। का = किस। का० = भला किस छल से छूटकर यहाँ तक आ सके, यह तो बताइए।

[३१२] खरी = उत्कृष्ट। सुथराई = स्वच्छता। 'खरी निखरी' में विरोध। रूप के० = सौंदर्य (रूपी समुद्र) के आवर्त में। उथराई = उथलापन, थोड़ी उठान। रत्यौ० = काम की पत्नी रति भी। थुथराई = हलकी या थोड़ी पड़ गई। पैने = तीखे। मुथराई = कुंद होना। बानन० = बाणों में कुंदता आ गई, उनकी धार कुंद हो गई।

[३१३] वारने = निछावर हैं। को० = रति उसके सामने क्या है, कुछ नहीं। छाकनि = मस्ती के नशे की ललाई। हियै = हृदय को प्रेम में डुबो

सुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद-जोवन, रूप-छकीं अँखियाँ, अवलोकनि आरस-रंग-रली।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज जी ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-वेलि फली ३१४

हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।
छुटीं अलकैं मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै।
बड़ी अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियें रस पागै।
सुहाग सौं ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै ॥३१५॥

राधा नवेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजैं अति सोहै।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै।
दीठि मिलैं मुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है।
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि मोहै ॥३१६॥

रस-चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी ज्रु चकी।
समुहाय तहाँ हरि भामिनि त्यौं पिचकी भरि ताक तकी कुच की।

देती है। तिन० = कहीं सौंदर्य देखकर डीठ न लग जाय इसलिए वह (दृष्टि) तिनका तोड़ती है।

[३१४] कनी = बूँदें। रली = युक्त, भरी। ओपित = ओप से युक्त। चोज = उमंग। ओज = प्रताप, प्रभाव। ढीली = शिथिल। मनोरथ० = मनोरथ की फली हुई लता के समान दिखाई देती है।

[३१५] हुलास = उल्लास, उमंग। अधरानि० = होंठों से आगे बढ़कर कपोलों पर मुसकान छाती है। मिहीं = पतली। स्रुति० = कान के मूल में। छलानि० = घुँघराले बालों के छल्ले मुड़ी हुई अनी की भाँति लगे हैं। ओपित = दमदमाता हुआ।

[३१६] मुरि० = मुड़कर प्रिय की ओर पीठ करके खड़ी हो गई। भीजनि० = रंग से भींगने पर स्वयं रंग ही रीझकर मोहित हो रहा है।

[३१७] चौचँद = विनोद, क्रीड़ा-कौतुक। चाँचरि = होली के गान। रीझि = रीझने और बिक जाने के भाव से स्थकित और चकित हो गई। त्यौं = ओर। पिचकी = पिचकारी। ताक० = स्तनों को लक्ष्य करके देखा। उठैं =

उत मूठि-गुलाल उठे उकसेँ सु लगेँ पहिलेँ छतिया दुचकी।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकाँ उचकी ॥३१७॥
वह माधुरियै सौँ भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौँ विचारो अमी।
अरु बंक विसाल रँगीले रसाल विलोचन मैँ न कटाछि कमी।
घनआनँद जान अनूपम रूप तेँ रीति नई जिय माँझ रमी।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरैँई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३१८॥
मंजुल वंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महारस-मेह तेँ।
द्यौस मैँ रैन सो चैन को ऐन, पै जोति-पग्यो जगि दंपति-देह तेँ।
हास-विकास विलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तेँ।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर ढुलै बिजना भरि नेह तेँ ॥३१९॥

कवित्त

मद-उनमाद-स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अवारि लौँ सँवारि सुख सोए हैँ।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौँ समोए हैँ।

उठने पर। उकसैँ = उभड़ने पर। दुचकी = हिल उठी। घूमनि = नशे में चक्कर काटना। गुलचाइल = गालों पर आघात करने के लिए मुट्ठी बाँधना। अचकाँ = अचानक।

[३१८] अमी = अमृत। मिठास० = वैसी मिठास बेचारे अमृत को कैसे मिल सकती है। लछमी = शोभा। चित० = सौंदर्य की शोभा चित्त को चुराए ले रही है।

[३१९] वंजुल = अशोक। अछेह = (अछेद्य) अखंड। रस = जल; आनंद। रस० = रस की वृष्टि से। द्यौस० = जहाँ दिन में ही रात्रि का आभास है। ऐन = घर। जोति० = प्रकास से युक्त। हास० = हँसी से विकसित होने से। विलास० = शृंगार के विलास के प्रकाश से। अदेह = काम। तेह = अभिमान, रोष, प्रचंडता। समीर = वायु प्रेमपूर्वक पंखा झल रही है।

[३२०] अवारि० = देर तक। उसीसो० = सिर के नीचे रखकर। अंतर = अंतरपट। समोए = लीन। जागैँ = जगते हैँ; दीप्तिमान् हैँ। सोए = सुप्त।

सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुराग,
सोए हू सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं।
छूटे वार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३२०॥

सवैया

खंजन ऐसे महा मनरंजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सौं।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सौं।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सौं।
मीत सुजान सिरावन मो दृग छ्वै घनआनँद रंग अपार सौं ॥३२१॥
पीठि दियेँ सब दीठि परैं निमुहैं, जग ईठिनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही तिनहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि काननि सौंहीं सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥३२२॥

कवित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भर्यौ,
पानिप अपार धरैं जोवन अदेह को।
उठ्यौ काहू भाँति धीर औरनि अपूरव पै,
इते पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को।

---

[३२१] रसढार० = प्रेम की ढलनशीलता। ये = नेत्र। बान० = काम के बाणों ने काम से इस प्रकार (कटाक्षों की भाँति) आघात करके जिलाना नहीं सीखा। छै = छाकर।

[३२२] पीठि० = तेरे पीठ देने पर सभी विमुख दिखाई पड़ते हैं। निमुहैं = बिना मुँहवाले; विमुख। ईठिनि = इष्ट। सकेरै = संग्रह करे। हित = कल्याण; प्रेम। कागर० = कागज का मकान बनाकर (हवाई किले बाँधकर)। आगर = अत्यंत। बात० = मन में बसी हुई बात से। नैननि० = जिनके नेत्रों में ही कान हों (जो देखकर ही मौन पुकार सुन लें) उनके ही यह संमुख होता है।

[३२३] नेही० = मेरे प्रेमी नेत्ररूपी दुखी चातकों की चाह से भरा हुआ। पानिप = पानी; शोभा। जोवन० = रूपरहित यौवन। उठ्यौ = उमड़ा।

दोऊ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिं देहिं स्वाद-सुख आनँद अछेह को।
मोहिं नीको लागत री राधे तेरे लोने
इन अंग अंग अररात रंग नेह-मेह को ॥३२३॥

सवैया

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न, कहूँ दरसैं इहि छाक छई।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजीं अभिलाषनि लाख जई।
घनआनँद ही उनए इनि मैं बहु भाँतिनि ये उन रंग रई।
रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी अँखियाँ रसरासि भई ॥३२४॥
आयौ महारस-पुंज-भरयौ घनआनँद रूप-सिँगार के मौरें।
सींचत है हिय देस-सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरें।

ओरनि = ओर ; दिशा। अपूरब = (अपूर्व) अनुपम ; पूर्व दिशा से इतर दिशा से। उठ्यौ० = यह धैर्यरूपी अपूर्व दिशा से किसी प्रकार (धीरे धीरे) उमड़ता हुआ छाया है। फुही = वृष्टि के अति छोटे जलकण। इते० = इतने पर भी यह अपनी फुहियों से ही प्राण को, मन को और शरीर को सुख दे रहा है। दोऊ = प्रिय और प्रेमी। अछेह = अखंड। लोने० = सलावण्य, सुंदर। अररात = टूटा पड़ रहा है ; मूसलधार बरस रहा है। रंग० = प्रेमरूपी बादल का रंग बरस रहा है। प्रेम की छटा अंग अंग में छा गई है।

[३२४] बरसैं = आँसू बहाती हैं। तरसैं = त्रस्त होती हैं। सरसैं = उमंगित होती हैं। अरसैं = निराश होती हैं। दरसैं = देखती हैं। छहि० = तुम्हारे प्रेम के नशे में चूर होकर। निरखैं = ध्यान से देखती हैं। परखैं = परीक्षा करती हैं (अभिलाष के अंकुरों की)। करखैं = खींचती हैं, तोड़ लेती हैं। उपजीं० = अभिलाषों के लाखों अंकुर फूट निकले हैं। घन० = आनंद के बादल प्रिय ही इन आँखों में छाए हैं। रईं = रँग गईं। रस० = प्रेम-मूर्ति। रसरासि० = जल की राशि, अश्रुधारा की वृष्टि करने लगीं।

[३२५] रस = जल ; आनंद। मौरें = मुकुट से। रूप० = रूप के ·गार का मुकुट धारण किए हुए। हिय० = हृदयरूपी सुंदर प्रदेश। सुदेस = उत्तम, अच्छा। अपूरब = अपूर्व, अद्वितीय ; पूर्वातिरिक्त दिशा। ठौरें = स्थान।

मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजैं धुनि मैं मति बोरै।
आज की मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरै॥३२५॥

कवित्त

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनँद बिलोकि प्यारे,
प्राननि सिहाय मोह-मादक महा छकै।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चाड़नि लुभाय रहि ना सकै।
परसि सरस बिधि रुचिर चिबुक त्यौं ही,
कंपित करनि केलि-भाव-दाँव ही तकै।
लाजनि लसौंहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै॥३२६॥

पानिप अनूप रूप जल कौं निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे कौं चाय ढरि कै।

अपूरब० = आँखों में अपूर्व स्थान बना लेता है। मोहन० = उसके मधुर (मंद) गरजने में मोहन की बाँसुरी सी बजती है। जिसकी ध्वनि से बुद्धि पगली हो जाती है। आज की० = देखो न आज मयूर की बोली कुछ और ही है, प्रिय के संयोग के कारण मयूर की वाणी विशिष्ट (सुखदायिनी) जान पड़ती है।

[३२६] ओप्यौ = देदीप्यमान। प्राननि० = प्राणों द्वारा लालायित होकर। मोह० = मोहरूपी मदिरा से प्रिय खूब छक जाता है (अत्यंत मोहित हो जाता है)। पीत० = अपने पीतांबर के छोर से। ढोरत = हवा करते हैं। चाड़ = उत्कंठा। परसि = छूकर। सरस = रसीले ढंग से। चिबुक = ठुड्डी। दाँव = अवसर। चाहि = देखकर। भरीन = भरन, पानी का भराव, घोर वृष्टि। सींचति० = आनंद के बादलरूपी हास से वारिधारा गिराकर (हृदय को) सींचती है।

[३२७] पानिप = शोभा; पानी। बिहार० = जलक्रीड़ा करने। चाय० = चाव से द्रवीभूत होकर। कैसैं० = कैसे पार कर सके। धीर० = धैर्यरूप तट दिखाई ही नहीं पड़ता। हहरि = घबराकर। लेस० = थोड़ा भी सहारा नहीं

परयौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मैं,
अति ही अपार ताहि कैसैं सकै तरि कै।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौं,
बिबस बिचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िबे तैं बच्यौ को सिवार कौं पकरि कै ॥३२७॥

नेकु उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बिन ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लै कै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद है,
मूढ़ हू प्रगट गूढ़-छंदन कृपा करै।
आरति-निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करै ॥३२८॥

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।

मिलता ; कुछ भी सँभाल नहीं है। बूड़िबे० = भला कोई कभी सिवार (केश) को पकड़कर डूबने से बच सका है ? मन उस शोभा के समुद्र में आखिर डूब ही गया।

[३२८] ताप० = कृपा स्वयं उसका ताप चंदन सदृश (शीतल ; शांत) कर देती है। लगनि = प्रीति। लागनि = लगने की उमंग। पाग० = अनुराग में लीन होने की वृत्ति। जागनि० = विबोध का आविर्भाव करके। लै कै० = मंद बुद्धिवालों को। बानी० = वाणी के विलास की वृष्टि करती है। मूढ़ हू = मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति० = क्लेश को दूर करनेवाले। आनँदनि = आनंदपूर्वक मेरी बुद्धि उनका वंदन करती है। यह सब 'कृपा' ही करती है।

[३२९] अमल = स्वच्छ ; कलंकरहित। अपूरब = अपूर्व, अनुपम, पूर्व से भिन्न दिशा। अखंड = निरंतर, रातदिन। चितारिबो = चित्रित करना, ध्यान

तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मंडन है,
वन-घन राजै रस-नायक निसंक है।
आनँद-अमृत-कंद, वंदनीय प्रानन को,
सुषमा-संपत्ति हेरैं काम कौन रंक है।
चाहते चकोरन कौं चोपन सौं लखि लेत,
कृपा-चंद्रिका मैं नंदनंदन मयंक है ॥३२९॥

सवैया

दृग दीजियै दीसि परौं जिन सौं इन मोर-पखौवनि कौ भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपुनहीं जु तहीं अटकै न कहूँ मटकै।
करि वंदन दीन भनै सुनियै भ्रम-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय कौ खटकै॥३३०॥
क्यौं हठ कै सठ ! साधन सोधत, होत कहा, मन यौं तरसे तैं।
हाथ चढ़ैं जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं।

मैं ले आना। कलंक = दोष। तारनि = नेत्र के तारे; आकाश के तारे। मित्र = सखा; सूर्य। वन० = वनरूपी बादलों में भी सुशोभित रहता है। रसनायक = प्रिय; रसेश। आनँद = आनंदरूपी अमृत का बादल है। काम० = उसके सामने दरिद्र काम क्या है? चाहते = चाहनेवाले, प्रेमी, भक्त। चोपन० = उत्साहपूर्वक देखता है। कृपा० = कृपारूपी चाँदनी से युक्त। मयंक = मृगांक, चंद्र।

[३३०] दृग = ऐसे नेत्र दीजिए जिनसे आप दिखाई पड़ें, ये मोरपंख की सी (दृष्टिहीन) आँखें लेकर मैं कहाँ तक भटकता फिरूँ। मन० = मुझे सच्चा मन दीजिए और अपनापन ले लीजिए। न मटकै = कहीं चंचल होकर न घूमे। भ्रम० = भ्रम के फंदों में कब तक लटकता रहूँ। जिय० = चित्तरूपी चातक के हृदय की सारी खटक (चिंता) दूर कर दूँ।

[३३१] सोधत = ढूँढ़ता फिरता है। हाथ० = जिन चरणों के छूने से सुजान श्याम हाथ पर चढ़ जाते हैं (वश में हो जाते हैं) उन्हें कभी तूने स्पर्श किया? मानस = मन; मानसरोवर। रसरासि = आनंदराशि; जल-

नीरस मानस है रसरासि बिराजत नैसिक जा सरसे तेँ ।
ऊसर हू सर होत लखे घनआनँद रूप-कृपा बरसे तेँ ॥३३१॥
साधन-पुंज परे अनलेखे पै मैँ अपने मन एकौ न लेख्यौ ।
जे निरखे उरझे तिन मैँ, किनहूँ बिन सोच कछू न बिसेख्यौ ।
तातेँ सबै तजि स्याम सुजान सोँ साहस औरै हियेँ अवरेख्यौ ।
प्रान-पपीहन को घनआनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ ॥३३२॥
ज्यौं परसै, नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनि धोइबो ।
त्यौँ मन कौँ तिनके दरसे बिन बादि बिचारनि बीच घँघोइबो ।
वे घनआनँद क्यौँ लहियै स्रम कै भरि भार अपारहि ढोइबो ।
जागत भाग कृपा-रस पागत, दीसत यौँ सहजै सुख सोइबो ॥३३३॥
आय जौ छाय तौ धूरि सबै सुख, जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीँ ।
ताहि महागति तोहिं कहा गति बैठेँ बनैगी बिचारत क्यौं नहीँ ।

राशि । नैसिक = थोड़ा । जा० = जिसके सरसने से (हृदय में आने से) । सर = तालाव । घन० = आनंद के बादलरूप कृपा की वृष्टि से ।

[३३२] अनलेखे = अगणित, अनेक । न लेख्यौ = नहीं माना । जे निरखे = जिन्होंने इन साधनों को देखा, जो इनके चक्कर में पड़े । उरझे० = वे उन्हीं में उलझ गए । किनहूँ० = किसी ने भी सोच के अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीं पाया । औरै = विलक्षण, न्यारा । अवरेख्यौ = धारण किया । घन-आनँद = आनंद के घन, श्रीकृष्ण । पोष० = पोषण (पुष्टि) से रसमयी ।

[३३३] ज्यौं० = यदि चित्त सुजान श्याम में न लगे तो । बादि = व्यर्थ । घँघोइबो = डुबोना । वे० = आनंदघन स्वरूप उन (श्रीकृष्ण) को इस प्रकार प्राप्त नहीं किया जा सकता । केवल अपार बोझ ढोने का श्रम करना होगा । वे विचारगम्य नहीं, अनुभवगम्य हैं । जगत० = यदि भाग्य जगे और वे कृपा के रस में पगें तो सहज ही में दृष्टिगम्य हो जाते हैं । उनके दर्शन से सुखपूर्वक सोने का आनंद (समाधि का आनंद) प्राप्त हो जाता है ।

[३३४] आय० = यदि वह आकर हृदय में छा जाए । जीवन० = ऐसे जीवनमूल (श्रीकृष्ण) को क्यों नहीं सँभालता (उनका ध्यान क्यों नहीं करता) । ताहि = उसके पास । महागति = परमगति । तो॰

नैननि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहन पारत क्यौं नहीं ॥३३४॥
बलकै झलकै मुख रंग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै।
मन-बाढ़ चढ़ै अति ऊरध कौं, टक-टेक सौं स्याम सुजान तकै।
जक एक न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीली कृपा-मधुपान छकै ॥३३५॥

कवित्त

परे रहौ करम, धरम सब धरे रहौ,
डरे रहौ डर, कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जौ कछू हैं तौ न छूहैं हम,
छीलर रुचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।

परमपद तक पहुँचने को तुझमें क्या शक्ति है। बैठें० = यदि उनका ध्यान किया जाय तो तेरी बैठे ही बैठे (सहज ही) बन जायगी। पल० = पलकें मूँद कर, ध्यानावस्थित होकर। सरूप = श्रीकृष्ण का रूप। पारत० = पालता क्यों नहीं, जिलाता क्यों नहीं।

[३३५] कृपामधु और मदिरा की एकता दिखाई गई है। अतः कृपा का मधुपान करनेवाले में मदपान करनेवाले की चेष्टाएँ श्लेष से दर्शाई गई हैं। बलकै = बकबक करे; वाणी का कोश खुल जाए। झलकै० = मुख में ललाई झलकने लगे; मुख में ओज छा जाए। उघरै० = भेद खुल जाएं; गुण-गौरव उद्घाटित हो जाए। सील० = शिष्टता न रह जाए; शील से आवृत हो जाए। बाढ़ = जोश; उमंग। टक० = टकटकी लगाकर देखने की टेक। जक = रट। घन० = आनंद की वृष्टि से भींगकर प्रेम में पक्का हो जाए। मधु = शराब। दृग० = यदि नेत्रों से उन्हें देखकर तृप्त हो जाए तो उनकी कृपारूपी मदिरा पीने से जो नशा चढ़ेगा वह कभी उतरेगा ही नहीं।

[३३६] परे रहौ० = सब कर्म पड़े रहें। डरे० = फेंके रहें। लाहे = लाभ। लोक० = लोक या परलोक भी यदि कुछ है तो इनमें से किसी को छूएँगे भी नहीं, लौकिक या पारलौकिक समृद्धि की कोई चिंता नहीं। छीलर० = क्षीरसिंधु में स्नान करनेवाले को तलैया नहीं रुच सकती। ढंख = ढाक, पलाश

महा घनआनँद घुमड़ पाइयत जहाँ,
सोच सूखा परौ करौ कर्म-ढंख दाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपा-दिखवैया काहू दिसि देखे काहे कौं ॥३३६॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं जु वसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि वैननि है मुसक्यानि सौं रंग महा लहियै।
घनआनँद प्रान-पपीहन कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है वहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥३३७॥

स्याम सुजान हियैं वसियै रहै, नैननि त्यौं लसियै भरि भाइनि।
वैननि वीच विलास करै मुसक्यानि सखी सौं रची चित-चाइनि।
है वस जाके सदा घनआनँद, ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा-ठकुराइनि ॥३३८॥

वैन कृपा, फिरि मौन कृपा द्दग दृष्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई।
ज्ञान कृपा, गुन-गान कृपा, मन-ध्यान कृपा, हरै आधि कृपाई।

का वन। महा० = उस आनंद के घन की घुमड़ उपलब्ध होने पर फिर चाहे सोच (चिंतन) का सूखा पड़ जाय और कर्म का पलाश-वन भस्म हो जाय। रस० = आनंदराशि। उलह्यौ० = उल्लसित। कृपा० = भगवत्कृपा की ओर देखनेवाला दूसरे किसी की ओर देखे ही क्यों।

[३३७] हरि० = जो कृपा हरि के हृदय में वसती है उसकी और महिमा क्या कही जाय। नैननि० = वह (हरि के) नेत्रों और वचनों द्वारा दर्शन देती है। ज्यावनि = जिलानेवाली। वहियै = वही। जीवनि = संजीवनी।

[३३८] भरि० = भावों से भरकर। मुसक्यानि० = (वह कृपा) मुसकानरूपी सखी से। रची = अनुरक्त। सील० = शील की छटा से युक्त। ठकुराइनि = रानी, स्वामिनी।

[३३९] वैन० = मेरी वाणी वह कृपा ही है, मौन भी वही कृपा है और नेत्रों की ज्योति भी वही है। आधि = मानसिक क्लेश। ठौं = स्थान। भीजि = सिक्त होकर, युक्त होकर।

लोक कृपा, परलोक कृपा, लहियै सुख-संपति साधि कृपाई।
यौं सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ॥३३९॥

कवित्त

मंजु गुंज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेम-पुंज छवि धरै हरै दरप मनोज को।
चाव-मतवारो, भाव-भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन ऐन चोपनि के चोज को।
और फूल भूलि, रीझ भीजि घनआनँद यौं,
बंदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को।
बानी रससानी ता मधुब्रत की, लह्यौ जिन,
कृपा-मकरंद स्याम-हृदय-सरोज को ॥३४०॥

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब, ऐसो कछू रसपान कृपा को।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहिँ मिल्यौ मन मान कृपा को।
रीझनि लै भिजयौ हियरा, घनआनँद स्याम सुजान कृपा को।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम पदारथ-दान कृपा को ॥३४१॥
नेम लियौ सब बातनि तैँ, अब बैठो है साधि कै ज्ञान महातप।
प्रेम थप्यौ घनआनँद-रूप सोँ, देखि तप्यौ जग-बाद के आतप।

---

[३४०] राग = वह भ्रमर अर्थात् भक्त राग से युक्त स्वर भरने लगता है। चैन० = आनंद का घर। चोज = उमंग। और० = अन्य पुष्पों को त्याग कर। मकरंद = पुष्परस।

[३४१] सवाद = संसार के अन्य स्वाद। नीरस० = जब से कृपा का मान मन को मोह कर मिला है तब से वह गति (मोक्ष) को नीरस मानकर उसे ग्रहण नहीँ कर रहा है। भिजयौ = रससिक्त कर दिया। घन० = सुजान स्याम की कृपा के आनंदघन से।

[३४२] नेम० = सब बातों का नियम ले लिया है, और सब बातेँ त्याग दी हैँ। प्रेम० = प्रेम स्थापित कर लिया है। देखि० = सारे जगत् को

कैसें कहैं कछु भोई सवाद मिलै बड़ी बेर सौं याहि मिल्यौ टप ।
मौन हूँ जाकी पुकार करै, गुन-माल गहे जपै एक कृपा-जप ॥३४२॥

कवित्त

चाहियै न कछू जाकी, चाह तासौं फल पायौ,
याते वाही वन के सरूप नैन कीनौ घरु ।
जहाँ राधा-केलि-बेलि-कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिंदी सुदेस थरु ।
महा-घनआनँद-फुहार-सुखसार सींचे हित-
उतसवनि लगाय रंग-भर्‌यौ झरु ।
प्रेम-रस-मूल-फूल-मूरति बिराजौ मेरे मन,
आलवाल कृष्ण-कृपा को कलपतरु ॥३४३॥

सवैया

काहे कौं सोचि मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है ।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं, सुख जीहै ।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सठ ! साधन-छीलर छीहै ।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें वौरे बचाय ही लीहै ॥३४४॥

वादों की धूप से तप्त देखकर । भोई = मिली । टप = शीघ्र । मौन हूँ = जिसका मौन भी पुकार करता है । माल = माला ; समूह ।

[३४३] चाहियै० = जिसकी इच्छा करने से ऐसे फल की प्राप्ति हुई कि अब किसी वस्तु की इच्छा नहीं रही । वन = वृंदावन । सरूप० = उस वृंदावन के रूप में नेत्रों ने घर बना लिया, उसे ही देखता रहता है । केलि० = जिस कल्पवृक्ष पर राधिका की क्रीड़ारूपी लता छाई रहती है । छायौ = छाया हुआ । सुदेस = सुंदर । हित = प्रेम के !उत्सवों ने, उमंगों ने । रंग = आनंद । झरु = झड़ी । आलवाल = थाला ।

[३४४] बिधि० = बातों की विधि में क्यों पड़ा है ? सुख० = सुखपूर्वक जिएगा । साधन० = साधनाओं की तलैया कौन छूए । लीहै = लेगा ।

[३४५] रंग = वर्ण (श्याम) । रंग = प्रेम । दरस० = दर्शन और स्पर्श की प्रतिज्ञा पूर्ण करनेवाली । बसीठि = दूती । एक = एक भी, एकदम ।

साँवरे-सुजान-रंग-संग मति रंग-भीजी,
दरस-परस-पैज-पूरन बलीठि है।
एक गुनहीन नहीँ सूझत सरूप जाकोँ,
कृपा-मद-अंध तिन्हैँ सपने न नीठि है।
सदा घनआनँद बरसि प्रान चातकनि,
पोखति पुकार बिन ऐसी सुद्ध ईठि है।
साधन असाधन त्योँ सनमुख होति कैसैँ,
सब दिसि पीठि कृपा-मन-तन दीठि है ॥३४५॥

सवैया

चातिक-चित्तकृपा-घनआनँद चोँच की खोँच सु क्योँ करि धारौँ।
त्योँ रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा लै पसारौँ।
पै गुन ताके अनेक लखौँ निहचै उर आनि कै एक विचारौँ।
कूल बढ़ाय प्रवाह बढ़ै योँ कृपा-बल पाय कृपाहि सहारौँ ॥३४६॥

गुनहीन=गुण से रहित; निर्गुण। कृपा०=कृपा के मद से जो अंधे हैँ। सपने=स्वप्न मेँ भी। नीठि=कठिन। एक०=जिसके रूप का आभास आँखेँ रहते भी मिलना कठिन है वह निर्गुण ही है, पर जो कृपा के मद से अंधे (नेत्रहीन) हो जाते हैँ उन्हैँ उस (सगुण) के रूप की प्राप्ति स्वप्न मेँ भी कठिन नहीँ है (प्रत्यक्ष की बात ही फिर क्या)। साधन०=साधन केवल असाधन हैँ, वास्तविक साधन नहीँ।

[३४६] खोँच=कोँछ, छोटी झोली। चातिक०=मेरे चित्त का चातक आपकी कृपा के आनंददायक बादल की वृष्टि चोँचरूपी छोटे पात्र मेँ कैसे ले। रतनाकर०=रत्नाकर (रत्नोँ का समूह; समुद्र) का दान लेते समय बुद्धि का पुराना वस्त्र क्या फैलाऊँ (बुद्धि छोटे-बड़े का, अधिक या न्यून का विवेक करने लगेगी)। एक०=योँ तो उस कृपा के गुण अनेक हैँ पर यहाँ एक का ही विचार करना है। कूल०=जैसे कूल का विस्तार करता हुआ प्रवाह बढ़ता है उसी प्रकार कृपा के ही द्वारा कृपा के उस बढ़ते हुए प्रवाह को हृदय के विस्तृत हो जाने से सँभाल लूँगा।

कवित्त

हरि हू को जोतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे विन बढ़ै दातुरी।
दीनता न आवै तौलौं बंधु करि कौन पावै,
साँच सौं निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी।
गुननि बँधे हैं निरगुन हू अनंदघन,
मति बीर यहै गति चाहैं धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर विचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही के एक आतुरी ॥३४७॥

सवैया

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही, गुनहीनन तैं सब दोष प्रमानैं।
हाहा बुरौ जिन मानिये जू विन जाँचैं कहा किन दानि बखानैं।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं, हैं हमहूँ कहूँ रीझि बिकानैं।
बूझौ कहैं कहा एक कृपा करि रावरे जौ मन के मन मानैं ॥३४८॥

कवित्त

रही ना कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तैं बचाय राखैं सुखनि सौं सानि हैं।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैं।

---

[३४७] जोतिक = जो कुछ, जैसा। दातुरी = दान की वृत्ति। बंधु० = दीनता आने ही से ईश्वर दीनबंधु होकर मिलता है। साँच० = सत्य से वह निकट है, पर चतुरता देखकर दूर भागता है। गुनि० = वे आनंदघन (ईश्वर) निर्गुण होकर भी गुणों में बँधे हैं (सगुण हैं)। बीर = हे सखी। यहै० = यह गति देखकर धैर्य चला जाता है। आतुर० = ऐ मेरी मति तू चतुरतापूर्ण विचारों से थककर उतावली मत बन और सब तो ढीले (सुस्त) पड़ गए हैं केवल 'कृपा' में ही आतुरता (फुर्ती) है।

[३४८] प्रमानैं = मानते हैं, समझते हैं। मन के० = मेरे मन के मन आप यदि मान जायँ तो।

ताप वापुरेनि की सिरानी आय नैक ही मैं,
छाए घनआनँद सुवात-वात आनि हैं।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू संग,
विन पहचानि कृपा लीनें पहचानिहैं ॥३४९॥

सवैया

जल मैं थल मैं भरिपूरि रहो सम कै दिखरावति है विसमैं।
सम रूप सदा गुनहीनन सौं निज तेज ते त्रासति ताप-तमैं।
घनआनँद जीवनिरासि महा वरसै सरसै अरसै न गमैं।
तिन प्रानिन संगम रंग अभंग कृपा दरसो सव ठौर हमैं ॥३५०॥
कोऊ कृपा-बल-दूबरो ह्वै करि क्यौं नहिं साधन के सव*साधो।
लीन कै लोयन प्रान मनौ किन कोऊ समाधिहि पैंचि अराधो।
मेरें कृपा-घनआनँद है रस भीजैं सदा जिहिं राधिका-माधो।
ता विन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सु न एक न आधो ॥३५१॥

---

[३४९] तापु० = वेचारे ताप तो थोड़े ही में ठंढे पड़ गए। वात = वायु; वचन।

[३५०] सम० = विपम को भी सम करके ही दिखाती है, वैपम्य दूर हो जाता है। तमैं = अंधकार को। अरसै० = चलने में आलस्य नहीं करती। संगम = साथ।

[३५१] क्यौं० = कृपा के वल की प्राप्ति से दुर्वल (रहित) होकर कोई चाहे साधन के शवों की साधना ही क्यों न करे। पर सव व्यर्थ है। समाधिहि० = समाधि में स्थित होकर नेत्र, प्राण और मन को उनमें लीन करके उनकी आराधना कोई किया करे। वह परोक्ष की साधना मेरी प्रत्यक्ष साधना से भिन्न है। ता विन० = विना उस कृपा के साधन के श्रमों का शूल ही सहना पड़ता है। भ्रम और भूल की ही प्राप्ति होती है। उन्हें एक (पूर्ण) क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती।

* सव, सत।

कवित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महातम-सार गहि ताहि तू।
प्रेम सो रतन जातेँ पायहै सहज ही मैँ,
वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौँ चकोर कै सु,
बाढ़त अमंद यौँ तरंगनि उमाहि तू।
बोहित-बिसास हू चढ़ाय लैहै सोई हाहा,
कृस्न-कृपासिंधु मेरे मन अवगाहि तू॥३५२॥

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है
मिलेँ अनमिले कछू करि न सकौँ तरक।
जियौँ तुमहीँ तेँ बिना तुम्हैँ मरि मरि जावँ,
एक गावैँ बसि ऐसी जियै राखियै मरक।
देखि देखि हूँढ़ौँ दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत औ बिसासी यहै कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौँ,
आरस जग्यौ है कैसेँ सोई है कृपा-ढरक॥३५३॥

---

[३५२] नेग लगना = किसी की भेँट हो जाना, वश मेँ होना। साधन० = साधन के लिए तू महामत का सार ग्रहण कर। उमाहि = उमंगित हो। बोहित = जहाज। अवगाहि = थाह ले।

[३५३] मिलन० = आपका मिलन अमिलन से मिलाता है। आप मिलने पर भी न मिले हुए रहते हैँ। मिलेँ० = मिले रहने पर भी जो अमिल रहता है उसके संबंध मेँ मैँ कोई तर्क कर ही नहीँ पाता, उसका सुसंगत विचार करने मेँ अपने को असमर्थ पाता हूँ। मरक = तनाव, खिंचाव। बिसासी = विश्वासघाती। करक = पीड़ा। ढरक = ढलनशीलता।

मन की जनाऊँ ताके मोह नाहिँ है हो कान्ह,
जानराय गुनहिँ लगाऊँ कैसेँ दोष जू।
विना ही कहेँ करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहेँ क्यौँ न करौ दीन-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैँ रिझवार जानि, खीझ सौँ कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन भूमि भूमि कित तरसावौ,
वरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥३५४॥

सवैया

सुधि भूलि रही, मिलि ज्यौं जल पै अव यौँ मन क्यौँ करि फूलिहै जू।
मिटिहै तव ही तिहि ताप, जवै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौँ मति वावरी ह्वै रही झूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन वातन की कवहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३५५॥

कवित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छवीले घन-
आनँद रसीले भरे महा सुख-सार हैँ।
कृपा-घन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
सूरति सनेही विना वूझेँ रिझवार हैँ।
चाह-आलवाल औ अचाह को कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैँ।

---

[३५४] मन की० = अपने मन की वात क्या कहूँ वह तो केवल मोहित होना जानता है। विना० = विना कहे ही कृपा करेँ तो कहने की कोई आवश्यकता ही नहीँ। पर आप कहने पर भी कृपा क्यौँ नहीँ करते। खीझ सौँ = खीझपूर्वक।

[३५५] सुधि० = मेरे याद आने की भी स्मृति आपको न रह जायगी। झूलिहै० = झूल जायगी, समाप्त हो जायगी।

[३५६] चाह० = चाह के थाले में अचाह व्यक्ति के कल्पवृक्ष की भाँति दिखाई देते हैँ।

नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥३५६॥

सवैया।

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारैं।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंरु मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारैं।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-सूरति कौन सँभारैं।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारैं ॥३५७॥

जिहिं पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करैं इहि भाय कौं गौन-समै।
तिहि दूरि किती, कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छिपै किहि या सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिसमै ॥३५८॥

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भऱ्यौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता, सरस्यौ नित पै अरस्यौ सु कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख सावत मीच मैं।
ज्वाल-जऱ्यौ अब होत हऱ्यौ हरि नेकु कृपा-घनआनँद-सीच मैं ॥३५९॥

[३५७] भरौं० = किस प्रकार दिन बिताऊँ। मसोस = पछतावा। सम्हारैं० = सहारा दे। प्रिय० = प्रिय के पैरों पर ले जाकर गिराए।

[३५८] करै० = जाने के समय इस प्रकार (जैसे आँधी या तूफ़ान) का वेग करके भी। औधि = सीमा। गति० = अपनी मंद चाल से वहाँ तक पहुँचना समझ में आया? कहिबो० = उसे सुगम कहना कैसे ठीक है। नियरो = निकट। आहि० = पर वही कृपा से निकट और सुगम होता है। रसमै = आनंदमय ; प्रेमस्वरूप। बिसमै = विषमय ; विषम।

[३५९] उत्तम = अत्यधिक। नीच० = इस नीच मन में। पै = निश्चय ही। अरस्यौ० = आलस्य के कीचड़ में फँसकर पड़ा रह गया। उस नीरसता से कभी पृथक् नहीं हुआ। साँच० = भ्रम को ही सच्चा मान लिया। मीच = मृत्यु। जीवन० = जीने के सुख की साधना मृत्यु में करता है। ज्वाल० = ज्वाला में जला हुआ यह अब हरा-भरा (आनंदित) हो रहा है। सीच० = सींचने से।

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाई जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद है सरस सींचै रोम रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-गहभरे हौ।
जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रस ररे हौ।
ऐसें क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हर्‌यौ कै हरी,
जैसें या पपीहा-दीठि नींठि हू न परे हौ ॥३६०॥

डगमगी डगनि-धरनि छवि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुंदर वदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकस्यौ अचानक ह्वै,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥३६१॥

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भर्‌यौ,
काल्हि मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।

---

[३६०] ढरनि = ढलना, पिघलना, द्रवीभूत होना। ढरहरे = ढलनेवाले, कृपालु। आँनद० = आनंद के बादल; आनंदघन, घनआनंद। निर-भर = निर्भर, पूर्ण; जो भरा न हो। सुभाव० = अपने कृपालु स्वभाव से भली भाँति भरे हुए। रस० = रसयुक्त। दीठि० = कठिनाई से भी, किसी प्रकार भी नहीं दिखाई पड़े।

[३६१] डगनि० = कदम रखना। भार = बोझ से। ढरनि = हिलना। छबीले० = सुशोभित वक्षस्थल पर। बनमाल = लंबी माला, बड़ी माला।

[३६२] ऐन = घर। सो = वह चित्त। लूट० = लूट सी करके चला गया।

वड़े वाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब तैं न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछू मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी वितै गयौ ॥२६२॥

जाके उर वसी रसमसी छवि साँवरे की,
ताहि और वात नीकी कैसें करि लागिहै।
चखनि चपक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसें सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसें कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को वदन हेरें सीरे होत,
और वात आली सव लागति ज्यौं आगि है ॥२६३॥

हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट विकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि विसूरनि उदेग-वाढ़ी,
चित चटपटो मति चिंता पागियै रहै।
ज्यौं ज्यौं वहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥२६४॥

---

[२६३] रसमसी = रसयुक्त। चपक = प्याला। रस = अमृत; आनंद। धूम० = धुएँ का धुंध।

[२६४] हिलग = लगन। मरूरनि = मरोर, पीड़ा। उदेग = उद्वेग से बढ़ी हुई चित्त की आतुरता। दुख० = दुःख के दाह से दग्ध ही होता रहता है।

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।
चौचँद-चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं, बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥३६५

अलि! जो विधना ब्रजवास न देतौ न नेह को गेह हियो करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीं रूखियै दीठि सों लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद के छैल छबीलो सु क्यौं कोउ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख कौ लौं सहौं घुटि कैसें रहौं भयौ भाकसी देखे बिना घर तौ ॥३६६

होते हरे हरे रूखे जो दूखे, किते गई सो चिकनानि तिहारी।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कढ़ी छतिया छिदि बंक बिहारी।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होति दुखारी।
एहो कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै एक ही बार चिन्हारि बिसारी॥ ३६७

कवित्त

छवि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आयगौ।
चटक-मटक-भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखें मो मन बिकायगौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन दुरायगौ।

[३६५] गाँसी = फाँस, काँटा। चौचँद-चार = बदनामी की चर्चा। चवाइन = बदनामी करनेवाली स्त्रियाँ। बिरचैं = विशेष रूप से फैल रहे हैं। भरियै = दिन कैसे काटूँ।

[३६६] रूखियै० = उन आँखों को भी रूखी दृष्टि से ही भरता। उनमें स्नेह न देता। भाकसी = (भस्त्री = भाथी) भट्ठी।

[३६७] होते० = रूखे दूखे भी जिससे हरे हो जाते थे वह तुम्हारी चिकनाई कहाँ गई। रूखे = नीरस; रूक्ष। दूखे = दुखी, पीड़ित। हरे = हरेभरे; प्रसन्न। हूकनि = वेदना से। चिन्हारि = पहचान।

तब तें रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी हैं,
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसायगो ॥३६८॥

छवि की निकाई एहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
बारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे,
रूप-रेलहि सकेलैं तऊ दीठि तरसनि है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप ओरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥३६९॥

सुंदर सरस लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोवन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।
लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद-उमंग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छवि छलक्यौ करति है ॥३७०॥

बैस है नवेली अलबेली ऊठ अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग पैंड़त चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उभलत है।

---

[३६८] घूमि = मस्त होकर।

[३६९] सरसति० = बढ़ती है। रूप० = रूप की अधिकता। सकेलैं = संग्रह करते हैं। चाहनि० = देखने में उत्कंठा की वृद्धि होती है। देखने की लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

[३७०] सुठौन = सुंदर।

छके छुवैं कान वारौं कोटि तीखे वान, ऐसे
    नैननि विहँसि हेरि मैन निदलत है।
कारी घुँघरारी अलकनि के छलानि, छैल
    ताननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है॥३७१॥

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िलो सु,
    दृग-मग उररयौ परत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत एरी वीर!
    ऐसो कछू गावत मधुर वंसी-सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
    पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जाजै, बसि कीजै कहा, महा सोच,
    चारयो ओर चलत चवाव लघु-गुर मैं॥३७२॥

पीरे पीरे फूलनि की माला रचि हियें धारि,
    वारि वारि ताही कौं सफल करै काय कौं।
ऐसे धीर काचे, पूरे प्रेम-रंग-राचे वीर!
    पीरे फल चाखैं अभिलाखैं नीके दाय कौं।
डोलैं वन वन वावरे ह्वै साँवरे सुजान,
    धाय धाय भेंटैं भावती हो दिसि वाय कौं।
उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं
    गौरी गाय ढौरी सौं बुलावैं गोरी गाय कौं॥३७३॥

---

[३७१] ऊठ = उभाड़, उठान। उझलत० = उड़ेलता है। छके = यौवन के मद से मस्त। मैन = काम। निदलत० = दबा देता है, पराजित करता है। छला = वालों के छल्ले।

[३७२] उररयौ० = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै० = साथ लगने के धक्के से लज्जा का निरादर करके। याही० = यही शोरगुल। चवाव = वदनामी। लघु० = छोटे वड़े सबमें।

[३७३] वारि = निछावर करके। धीरे० = धैर्य में कच्चे। दाय = दाँव। बाय = वायु। भेंटैं० = आँखें मूँदकर प्रेमिका की ओर मुँह करके वायु में ही

तेरे हित हेली ! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज भूमि भूमि सरसत हैं।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सों पट
पीत कों उमगि लै लै हियें परसत हैं।
चाह के समीर की झकोरनि अधीर है है,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत हैं।
लोचन सजल क्यों हूँ उघरैं न एकौ पल,
ऐसें नेह-नीर घनस्याम बरसत हैं ॥३७४॥

आई आन गाँव तें नवेली पास पायसें जु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यौ ता कहूँ,
दीठि के मिलत बढ़ि पर्यो चित चाव री।
रीझि-परबस पर बस न चलत कछू,
ऐसें ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कों मानत बिभावरी ॥३७५॥

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सों।
बाँयें पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सों।

(शून्य में ही) आलिंगन किया करते हैं। गौरी = एक राग। ढौरी॰ = ढंग से। गोरी = धौरी, सफेद ; गौर वर्णवाली।

[३७४] सखी का वचन राधा से। हेली = हे सखी। मुरली॰ = मुरली की ध्वनिरूपी गर्जना। चंचला = बिजली। घनस्याम = श्रीकृष्ण ; बादल। रूपकालंकार।

[३७५] पायसें = जेवनार में। पास = पड़ोस। पास॰ = पास-पड़ोस (के गाँव) में। आवरी = व्याकुल। परबस = पराधीनता। रँगीलो = रँगीला ;

कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सों।
मीड़िवे के लेखे कर मीड़िवोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सों ॥३७६॥

नीकि नई केसरि को गारौ हू गरव गारैं,
फीकी रोरि, गारि सी निहारैं रूप गोरी को।
चारु चुहचुही मँजी एड़िनि ललाई लखे,
चपरि चलत च्वै वरन बूकी बोरी को।
हँसि बोलैं कोरिक कपूर सौंधे वारि ढारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक इन्हैं चोरी को।
प्यारे घनआनँद के राग-भाग फाग देखौ,
रस-भीजें अंगनि अनूठो खेल होरी को ॥३७७॥

सवैया

वैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी।
कौंवरे हाथ रची मिहँदी डफ नीकैं वजाय हरै हियरा री।

रंगवाला। तिन = तृण के समान। कानि = मर्यादा। धूँधरि० = अबीर की धुंध को। विभावरी = रात।

[३७६] उठान = उमंग। वायें० = वाँएँ हाथ में घूँघट को पकड़े हुए। चाहनि० = घूँघट की ओट से देखकर चोट करती हैं। दलनि = समूह। पाय० = दाँव पाकर और जीतकर। सयान = चतुरता। मीड़िवे० = मलने के लिए केवल हाथ मलना (पछताना) ही हाथ लगा।

[३७७] गारौ = गौरव। गारैं = दूर करता है। फीकी० = गोरी (राधा) का रूप देखकर रोली का रंग फीका पड़ जाता है। वह रोली गाली (दूषण) सी जान पड़ती है। चुहचुही = जिनमें रक्त छलक सा रहा हो। मँजी = स्वच्छ। चपरि = शीघ्रता से। वरन = वर्ण, रंग। बूकी० = लाल बुकनी में डुबोए वस्त्र का। सौंधे = सुगंधित पदार्थ, इत्र आदि। वारि० = निछावर करके, फेंक देकर। कलंक० = इन कपूर आदि को चुराने का कलंक लगाओ। राग = अनुराग ; गाने का राग।

साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौनि मैं दीसति न्यारी।
कान ह्वै पोखति प्रानपियैं मुख-अंबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥३७८॥

पिय के अनुराग सुहाग-भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि गवावति गारि बजाय डफै।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरैं मधुरी डग लंक लफै।
लपटै घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥३७९॥

कवित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद-सुधाधर-उदोत-आभा रद की।
अंग अति लोनी लसै ललित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बेंदी मृगमद की।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग-बोरी,
छैल-मति छकै छवि हेरैं रदछद की।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौं रली भली कली कोकनद की ॥३८०॥

सवैया

घूँघट-ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सुघात बनावै।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर! छरा धरि हूकति आवै।

---

[३७८] वैस = (वयस्) उम्र। कोँवरे = कोमल। सौनि० = अबीर की ललाई से भरे मुँहवाली होकर। न्यारी = अद्भुत। मकरंद = पुष्परस।

[३७९] रफै = ढंग। मधुरी = बढ़िया। डग = कदम। लंक = कमर। लफै = लचकती है। पायल = पायजेब, नूपुर। दृग० = नेत्ररूपी नूपुर। गुजरी = (गुर्जरी) गोपी। गुलफै = एड़ी के ऊपर की गाँठ, टखना।

[३८०] रद० = नष्ट कर दी। तिलोनी = सुगंधित फुलेल से युक्त। बेंदी = बिंदी, बिंदु। रदछद = होँठ। रली = भरी। कोकनद = लाल कमल।

[३८१] उसारि = वस्त्र में से निकलकर। बर = श्रेष्ठ, मनोहर। बरा = भुज पर पहनने का गहना। छरा = माला की लड़। हूकति० = निकट

कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौंकति छाँह न छ्वावै।
वाल अनूठियै ऊठ गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥३८१॥
दाँव तकै, रस-रूप छकै, विथकै मति पै अति चोपनि धावै।
चौंकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट वितै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौं-वस ह्वै रसिया हिय-हौंसनि सौं सनि आँखि अँजावै ३८२
पिय-नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली।
अति ही गति धीर समीर लगें, मृदु हेमलता जिमि जात डुली।
घनआनँद खेल-अलेल-दसै विलसै, सु लसै लट झूमि झुली।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ३८३
आछी-तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की वेलि विराजति लोइन।
साँवरी पोति-छरा छलकै छवि गोरी अँगेट लखें सम कोइ न।

आ रही है। कौंधि = चमककर। चौकस = सावधानीपूर्वक। मूठि चलावै = जादू करती है।

[३८२] ठठि = ठटकर, शान से मोरचा लेने के लिए डटकर। छराय लौं = छले जाने (पकड़ी जाने) की आशंका से। चोट० = चोट करके। गौं = घात।

[३८३] अछेह = परिपूर्ण। तेह = रोष, जोश। तुली = समन्वित होकर। अलेल = खेल में अत्यंत मग्न होकर किलोल करना। दसै = दशा में। झूमि = मस्ती के साथ हिलती हुई। झुली = लटकती हुई। सुठि = सुंदर, (यहाँ पूर्वी अर्थ में प्रयुक्त) अत्यंत। खुली = शोभित होती है, फबती है।

[३८४] तिलौनी = सुगंधित अर्थात् फुलेल-लगी। अँगिया = चोली। गसि = भिनकर, स्निग्ध होकर। चोवा = सुगंधित द्रव्य, बहुत सुगंधित इत्र। वेलि = इत्र आदि रखने का बर्तन, वेला। लोइन = सुंदर। साँवरी = नीली। पोति = काँच की गुरिया। छरा = माला की लड़ी। गोरी = सफेद। अँगेट = कांति। सम० = कोई समतावाला नहीं दिखाई देता। झवेलिनि = झाँवें से रगड़ी हुई (एड़ी)। थकै = स्थकित हो जाता है। डग० = उसका दो डग चलना देखकर ही। भावती = प्रिय लगनेवाली। गौं = घात, ढंग।

एड़ी झवैंलिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै डग दोइन।
भावती गौं पगि लावनि सौं लगि डोलैं लला के लगौंहें ई लोइन॥३८४॥

कवित्त

चिहुँटि जगाई अधराति औटपाई आनि,
जानि भहराई सम्हराई मुँह चाँपि कै।
संकट सनेह को विचारें प्रान जात घुटे,
उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै।
दिन होरी-खेल की हराहर भर्यौ हो सु तौ,
भाग जागे सोयौ निधरक नैन ढाँपि कै।
सपने की संपति लौं दुख दैन जान्यौ घन-
आनँद कहा धौं सुख पायौ पंथ नाँपि कै॥३८५॥

भावती सहेट अंक भरि भेंटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आप कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी वीर!
वानियौ सिरानी, क्यौं वखानियै मिलाप कौं।
आगें कहा बीती, भई तबहीं सुरति-रीती,
जैसें सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।
सोभा-रस चाखैं अभिलाखैं हुतीं आँखैं,
घनआनँद उछरि ओछी फूलीं भूलीं जाप कौं॥३८६॥

लावनि = पैर रखना, चलना [या लावण्य, सौंदर्य]। लगि० = लगे घूमते हैं। लगौंहें ई = लगनेवाले।

[३८५] चिहुँटि = चुटकी काटकर। औटपाई = नटखट। जानि० = गिरती हुई जानकर मुँह पकड़कर सँभाला। उरे = दूर (हो जाने पर)। नाहर = सिंह। दिन = दिन में। हराहर = छीना-झपटी, रसक्रीड़ा। जागे० = जागते हुए भी सो गया। नैन० = नेत्र मूँदकर। पंथ० = रास्ता नापने में क्या सुख मिला, अच्छा होता आप आए ही न होते।

[३८६] सहेट = संकेतस्थल, मिलन का स्थान। थाती = पूँजी। रहे० = सब अंगों को अपनी अपनी पड़ी थी। निपट = अत्यंत। हेरत० = देखते देखते

सवैया

प्रेम - अमी - मकरंद - भरे बहुरंग प्रसूननि की रुचि - राजी ।
देखत आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप बिराजी ।
राग-रच्यौ अनुराग-जच्यौ सुनि हे घनआनँद बाँसुरी बाजी ।
मैन-महीप बसंत-समीप मतौ करि कानन सैन है साजी ॥३८७॥

कवित्त

एड़ी तेँ सिखा लौँ है अनूठियै अँगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैँ रही है सनि ।
सहज सुछबि देखेँ दबि जाहिँ सबै बाम,
बिन ही सिँगार औरै बानिक बिराजै बनि ।
गति लै चलत लखेँ मति-गति पंगु होति,
दरसति अंग-रंग-माधुरी बसन छनि ।
हँसनि - लसनि घनआनँद जुन्हाई छाई,
लागै चौंध चेटक अमेठ-ओपी भौँहैँ तनि ॥३८८॥

सवैया

पातरे गात किए नवसात, निकाई सोँ नाक चढ़ाएँई बोलै ।
राचे महावर पायनि त्यौँ तकि चायनि आय गऱ्यारेई डोलै ।

खो गई । बानियौ = वचन भी नहीँ निकलते । सुरति-रीरी = सुध-बुधरहित । सोभा० = शोभा का रस चखने की अनेक अभिलाषाएँ थीँ, किंतु आँखेँ आनंद से उछलकर मतवाली होकर फूल उठीँ और अपना जप भूल बैठीँ ।

[३८७] रुचि-राजी = सुंदर पंक्ति । बनराज = श्रेष्ठ वन, वृंदावन । ओप = छटा । राग० = गाने के रागोँ से संयुक्त । अनुराग० = प्रेम से जँची हुई, प्रेम से सिद्ध । मैन = मदन, काम । मतौ० = सलाह करके । कानन = वन मेँ; कानोँ मेँ । सैन = सेना ।

[३८८] अँगेट = दीप्ति । बानिक = रूप की छटा, मुद्रा । बसन० = वस्त्रोँ से छनकर । अमेठ० = तनाव से चमकती और खिंची भौँहोँ से जादू की सी चौंध आ लगती है । तनी भौँहेँ जादू सा प्रभाव उत्पन्न करती हैँ ।

स्यामहि चाहि चलै तिरछी, मनु खेल खिलारि न घूँघट खोलै।
आली सौं आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोलै ॥३८९॥
हरि-नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सौं काज करै।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यौं आनि भटू अँखियानि अरै।
घनआनँद रूप-गरूर-भरी धरनी पर सूधे न पाव परै।
पिय को हिय ताहि लखैं अभिलापनि लाखनि लाखनि भाँति भरै॥३९०

कवित्त

रही मिलि भीति पै सभीति लोक-लाज-भरी,
    रीझी कहूँ स्यामैं देखि दसा ताकी को कहै।
फंद की मृगी लौं छंद छूटिबे को नेकौ नाहिं,
    चार्‍यौ ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है।
मोहन को बोल सुनैं धुनै सीस, मन ही मैं
    घुनै सोच भारी, गुनै गहि बूड़ै सोक है।
उघरै न वास गुरुजन आस-पास घन-
    आनँद बतास कहा अहा नेह-झोक है ॥ ३९१ ॥
तरुनाई-वारुनी-छकनि-मतवारे भारे,
    झुकि धुकि धाय रीझि उरझि गिरत हैं।
सम्हरि उठत घनआनँद मनोज-ओज,
    विफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं।

[३८९] पातरे = पतले, दुबले। नवसात = सोलहो शृंगार। गरवारेई = गलियारे में ही। घामरी = बेहोशी, गश।

[३९०] मिस = बहाना। रहठानि = रहने का स्थान, वासस्थान।

[३९१] भीति = दीवार। रही० = दीवार से सटी जा रही है। सभीति = भययुक्त। फंद० = फंदे में पड़ी। छंद = उपाय। धुनै० = सिर पटक रही है। घुनै = भीतर ही भीतर क्षीण होती है। वास = घर, परदा, भेद, रहस्य। बतास = वायु। झोक = झोंका।

[३९२] झुकि = क्रुद्ध होकर। धुकि० = तेजी से दौड़कर। रीझि० = रीझ से उलझकर गिर पड़ते हैं। ओज = दल। विफरत = उत्पात करते हैं।

सुघराई सान सौँ सुधारि मसि असि कसि,
कर ही मैँ लियेँ निसवासर फिरत हैँ।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागेँ वीर,
गिरिधर-धीरता के किरचा करत हैँ ॥३९२॥

सवैया

चाल-निकाई लखेँ बिलखै पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति।
पाय परेँ न परै मति पाय सची तरसै थरसै, न कछू रति।
घूँघट-बीच मरीचनि की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति।
लाजनि सौँ लपटी घनआनँद साजन के हिय मैँ हित पूरति ॥३९३॥

कवित्त

सिसुताई-निसि सिथराई बाल-ख्यालन मैँ,
जोवन-बिभाकर-उदोत-आभा रली।
गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तेँ अधिक अब लागन लगी भली।
सकुच-बिकच-दसा देखौँ मन आई मनौ,
चाहति कमल होन कौन रूप की कली।

मसि = अंजन। असि = तलवार। चुहट० = कसक रूपी चोट। किरचा = टुकड़े।

[३९३] पचि = परेशान होकर। मरालिनि० = हंसियोँ की पंक्ति सोच करने लगती है। पाय० = पैरोँ के रखने पर। न परै० = बुद्धि उसे समझ नहीँ सकती। सची = इंद्राणी। तरसै = लालायित होती है। थरसै = त्रस्त होती है। न कछू० = रति कुछ भी नहीँ है। रति = काम की पत्नी। मरीच = ज्योति, किरण। रुचि = शोभा, छटा। चंदन = चंद्रोँ का। हित = प्रेम।

[३९४] सिसुताई० = शैशवरूपी रात्रि बीत गई। ख्यालन० = खेल मैँ ही। बिभाकर = सूर्य। उदोत = उदय। आभा = प्रकाश। रली = छाई है। गमागम = जाना (शैशव का) और आना (यौवन का)। रस = आनंद। समागम = मिलन। आगे तेँ = पहले से। सकुच = संकोच। बिकच = खिलना, विकास। सकुच० = संकोच के खिलने की दशा आ गई है, संकोच बढ़ गया है। कमल० = मानोँ कोई रूप की कली खिलकर कमल होना चाहती

बड़भागी रागी अलि ! ऐहै घनआनँद सों,
आँखिन सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ॥३९४॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं बिधि-बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नमि साँक है।
चलि चित चोरै मुरि मनहिं मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है ॥३९५॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब मुख भोर ही सिंदूरा की सी फैल है।
जोबन गरूर गरुवाई सौं भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है।
सुंदर सलोने लोने अंगनि की दुति आगैं,
मन मुरझानौ मंद मैन को सो मैल है।

है। रागी = प्रेमी। सिरैहै = शीतल करेगा। मधु = मकरंद, पुष्परस ; आनंद। भावतो = प्रिय। अली = भ्रमर।

[३९५] अलप = सूक्ष्म। लटपटी = टेढ़ी। लपेटी = चारों ओर घूमी हुई। सूध = सीधा। बाँक = वक्रता। सोधौं = खोजूँ। बिधि० = ब्रह्मा की बुद्धि दरिद्र है। नीठि = कठिनाई से। साँक = सशंक, शंकित। चलि = चलकर, हिलकर। सुठि = अत्यंत (पूर्वा अर्थ)। सुदेश = सुव्यवस्थित। लाँक = लंक, कमर।

[३९६] सिंदूरा = ललाई, उषा की रक्तिमा। गरुवाई = गुरुता। सलोने = सलावण्य, प्रिय कृष्ण। लोने = रमणीय। मैन = मदन ; मोम। मन० = मन मुरझाकर काम (मोम) में मैल सा रह जाता है। द्युति में उज्ज्वलता है और मन में मलिनता है ; उसके प्रकाश में मन की मैल दिखाई

दूहूँ हाथ अंसनि तें पीरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है ॥३९६॥
मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की।
दारिम-कुसुम के बरन झीने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत दहाँ मन बनितान के,
निहारि मोती-मालहि विचारि धारा गंग की।
आनँदनि भरो खरो मुरली बजावै, मीठी
धुनि उपजावै राग-रागिनी-तरंग की ॥३९७॥

सवैया

नैन के सैन मैं कोटिक मैन लजैऽरु भजै तजि कै सर पाँचनि।
आनँदमै मुसक्यानि लखैं पचिल्योई परै हित चाह की आँचनि।
ता पिय के हिय कौं हँसि हेरि लई सु रई सी नई गति नाचनि।
नूपुर-बीन सौं लीन कै प्यारी प्रवीन अधीन किये सुर साँचनि ॥३९८॥
जात नए नए नेह के भार विँधे उर ओर घनी बरुनी के।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैं होत हैं रोल तमोल अमी के।

पड़ने लगती है। अंस = कंधा। सिंहपौरि = सदर फाटक। रौरि० = शोर-गुल मचाते हुए भीड़ लगकर। थाकी = गली रुक गई है।

[३९७] नीमा = नीचे पहनने की कुरती। मंजन० = स्नान करते हैं।

[३९८] सर = अपने पाँचों बाणों को। आनँद० = आनंदयुक्त। हित = प्रेम। लई = उसने ले लिया। नूपुर० = नूपुर की वीणा से उसने मुग्ध करके वास्तविक स्वरों को अपने अधीन कर रखा है। प्रवीन = (वीणा बजाने में) निपुण।

[३९९] जात० = घनी बरौनियों में नए स्नेह का ऐसा बोझ है कि आप इस बोझ से मेरे हृदय की ओर धँसते ही जा रहे हैं। रोल० = तांबूल के अमृत का प्रवाह दिखाई देने लगता है। अँकोर = भेंट। प्रान० = आप जहाँ से आ रहे हैं वहाँ प्राण भेंट कर आए हैं। तिन० = रूपवान् को नजर न लगे इस

भोर की आवनि प्रान अँकोर किये तित ही चलि आए जहीं के।
डारियै जू तिन तोरिकै लालन औंर दिनान तें लागत नीके॥३९९॥
नैन किये नरजी दिनरैन रती-वल कंचन-रूपहि तोलैं।
बारह वानि वनी ठनी षोड़स प्यारी के प्रेम छकी नित डोलैं।
श्रीवन-रानी के छत्र की छाँह करैं सुख-वारिधि माँहि कलोलैं।
चाड़ न काहू की, लाड़-लड़ीं हम गोरी गरूर-भरी नहिं बोलैं॥४००॥
पूरन चंद के चूरन कौं तट-धूरि हँसै सु कपूर किती पति।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽव कहा परसै पय की मति।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखैं सविता-दुहिता अति॥४०१॥
गोपी—
छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत का पै अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत वैन रचावत मैन-तए हौ।

लिए तिनका तोड़कर टुटका करते हैं। डारियै० = आपके रूप पर मैं तिनका तोड़ती हूँ, आप बड़े रूपवान् लगते हैं (व्यंग्य)।

[४००] नरजी = नाप-तौल करनेवाला। सूरदास ने 'नरजना' का प्रयोग नापने के अर्थ में किया है—

जा दिन तें तुम प्रीति करी ही घटति न, वढ़ति तूल देह नरजी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन विन तन भयो व्योंत, विरह भयो दरजी।
—भ्रमरगीत-सार, ३५९।

रती = रति (प्रेम); घुँघची जिसकी तौल माशे के अठमांश (रत्ती) भर होती है। कंचन० = रूप (सौंदर्य) रूपी सोना। वारह० = वारहवानी सोना, कुंदन; वारह आभूषण। षोड़स = सोलह शृंगार। श्रीवन = एक वन। श्रीवन० = श्रीवन की रानी, राधा। चाड़ = उत्कट लालसा।

[४०१] चूरन = चूर्ण। पति = प्रतिष्ठा। मघवा० = इंद्रमणि, इंद्र-नीलमणि, नीलम। सतु = सत्त्व। जौ० = यदि नीलम का सत्त्व शोधकर (निकालकर) एकत्र किया जाय। पय = जल। मति = समता। आनँद० = आनंद में स्नान करने की स्थिति। सविता० = सूर्य की पुत्री, यमुना।

लाज अँचै बिन काज खगौ तिनहीं सौं पगौ जिन रंग-रए हौ।
ऐंड़ सबै निकसैगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥४०२॥

श्रीकृष्ण—

हैं उनए सु नए न कछू, उघटै कत ऐंड़ अमेड़ अमानी।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति क्यौं है इती इतरानी।
दान दियैं बिन जान न पाइहै आइहै जौ चलि खोरि बिरानी।
आगें अछूती गई सु गई घनआनँद आज भई मनमानी ॥४०३॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ बढ़ाय बढ़ाय किये इतने जिन।
भीत की दौरनि खोरनि है सठता हठ ओरनि सौं समझे बिन।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे कौ कौन दयौ सु लयौ किन।
टोंड़िक है घनआनँद डाँटत काटत क्यौं नहीं दीनता सौं दिन ॥४०४॥

श्रीकृष्ण—

दैहैगी दान जु ऐहै इतै, नहीं, पैहै अबै सु किये कौ सबै फल।
बाबा दुहाई, सुहाई कहौ जिय, जानि कै मानि छुटै न किये छल।

[४०२] अरैल = अड़नेवाले। मैन० = कामतप्त, काम से तपे। लाज० = लज्जा को पीकर। खगौ = अड़ते हो। पगौ = लगो। रत = अनुरक्त। ऐंड़ = शान, शेखी।

[४०३] उनए = छाए (छंद ४०२ के 'घनआनँद आनि कहा उनए हो' के सिलसिले में कथित)। उघटै० = मेरी ऐंड़ को क्यों उघटती है, मेरी ऐंड़ पर क्या ताना मारती है। अमेड़ = मर्यादा को न माननेवाला। अमानी = किसी की मान-प्रतिष्ठा का विचार न करनेवाला। बैन० = बड़ी बड़ी बातें। नैननि० = बड़े नेत्र होने के कारण बातें भी बड़ी बड़ी करने लगी। दान = कर। खोरि = गली। बिरानी = पराई। अछूती = कोरी, बिना कर दिए। मन० = मनचाही।

[४०४] लाड़ = दुलार। भीत० = गली में भीत की दौर करना, गली में छेंकना। हठ० = हठ के कारण। समझे० = बिना समझे। टोंड़िक = (तुंदिक) पेटवाला, पेटू।

एकहि बोल, दै जाहु चली झगरो सगरो मिटि बात परै सल।
नावँ पर्‌यौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौंह किते बल ॥४०५॥

गोपी—

जीभ सँभारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यौँ अब खायो थपेरैँ।
ज्यौँ ज्यौँ करी कछु कानि-कनौड़ त्यौँ मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरैँ।
खाय कहा फल माय जने, जिय देखौ बिचारि पिता तन तेरैँ।
कंज कनेरहि फेर बड़ो घनआनँद न्यारे रहौ कहौँ टेरैँ ॥४०६॥

श्रीकृष्ण—

लेहु भया! गहि सीसन तैँ दधि की मटुकी अब कानि करौ कित।
जैसे सौँ तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित की तित।
एकहि एक बराबरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौँ दुहूँ हाथ सकेरियै, जौ बिधिना घर बैठैँ दयौ बित ॥४०७॥

गोपी—

गोद भरै, बित धाय कै जाय धरौ गहि मोद सौँ माय के आगै।
पेट परे को लखै फल ज्यौँ, निपजे हौ सपूत सुभागनि जागै।

---

[४०५] नहीँ = नहीँ तो। सुहाई = रुचनेवाली। जानि० = जान-बूझ कर तो हम तुम्हारे छल करने से अपना मान छोड़ न देंगे। एकहि० = सौ बात की एक बात कि दान (कर) देकर चली जाओ। बात० = बात में परत पड़े, बात दबे, समाप्त हो। नावँ० = नाम तो है 'अबला' (बलहीन) पर देखो तो भौंहों में कितने बल (टेढ़ेपन) पड़ रहे हैँ। ऐंठति० = टेढ़ी-मेढ़ी होती है।

[४०६] थपेरैँ = थप्पड़। करी = की। कानि० = मर्यादा और एहसान का विचार। नेरैँ = निकट। खाय० = न जाने कौन सा फल खाकर तुम्हेँ माता ने उत्पन्न किया कि तुम ऐसे नटखट पैदा हुए। पिता० = अपने पिता की ओर देखो (कौन बड़े धन्ना सेठ हैँ)। फेर = अर्थात् अंतर। न्यारे = दूर।

[४०७] भया = हे भाई, हे मित्र। कानि० = प्रतिष्ठा का विचार क्यों करते हो। एक० = एक के साथ एक ग्वाल भिड़ जाय। हित = चाही बात। सकेरियै = संचित करो। बित = धन।

बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जातें महापति पागै।
बास दियें को यहै फल है घनआनँद जो छिन दोष न लागै ॥४०८॥

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सोँ ललिता! रिस की सलिता न बढ़ैये।
नागरि आगरि हौ बहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैये।
चोखन तोष नहीँ उपजै घनआनँद क्योँ गुन दोष कढ़ैये।
नेकु ढरैं सुधरैं सब काज, अकाज इतो अपलोक चढ़ैये ॥४०९॥

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठि है।
कर ओड़ि, दिखाय दया, मृदु ह्वै चलियै बहु भाँति बिनै करि है।
घनआनँद ओठ अमेठ कियें कहियै कहा पै अब पैंठति है।
रिझवारिनि पै गुन गाय रिझावहु देहिँ लली की निछावरि है ॥४१०॥

सखा—

स्याम सुजान सबै गुन-खानि बजावत बैन महा सुर साँचनि।
अंग त्रिभंग, अनंग-भरे दृग भौँह नचाय नचावत नाँचनि।
कीरतिदा-कुलमंडन ज्यौँ निरखै भरि नैन बढ़ै सुख-माँचनि।
दान हँसें चुकिहै घनआनँद रीझन ही रुकिहैं हित-आँचनि ॥४११॥

[४०८] बित = धन। बाँटिहै० = तुम्हारी कमाई की वह बधाई बाँटेगी। पति = प्रतिष्ठा। बास० = बसाने का।

[४०९] सलिता = नदी। आगरि = चतुर। चोखन = तेश से। तोष० = संतोष नहीँ होता। गुन० = गुण-दोष जीभ पर लाने से क्या लाभ। नेकु० = थोड़ा सा नम्र पड़ने से। अकाज = व्यर्थ ही इतना दोष लगाने से क्या लाभ।

[४१०] मधुमंगल = एक कृष्णसखा। ओड़ि = फैलाकर। अमेठ० = टेढ़ा करने से। देहि० = यदि तुम रीझनेवाली राधा के सामने उनके गुण गाओ और उन्हेँ प्रसन्न करो तो उनकी निछावर मेँ हम गोरस दे सकती हैँ।

[४११] कीरतिदा = यशोदा। ज्यौँ = ज्योँ ही। बढ़ै० = अत्यंत सुख मिले। दान० = दान हँस देने से चुक जायगा। घन० = आनंद के बादल। रीझ० = रीझने से प्रेम की आग शांत होगी।

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखैं घनआनँद की सुघराई।
पैठन देहि न एक सखै, अकिले इन्है छेकि करैं मन भाई।
भावती टेक रही बहु भाँति, किये न बनै, अति ही कठिनाई।
लेति हौं राधे बलाय, कह्यौ करि, आज मनौ इतनी हम पाई॥४१२॥

राजदुलार-भरी इकसार, सुभाय मथैं मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली-सँग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचन कोरनि छोरनि छ्वै मुसक्यानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लखैं घनआनँद रूप लली को॥४१३॥

रंग रह्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
केलि पर्‌यौ रस को झगरो अति ही अगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सम्हारि रही न भटू तनकौ तन मैं घनआनँद छाएँ।
प्रेम पगे रिझवारिन की तहाँ रीझि कै रीझहि लेत बलाएँ॥४१४॥

आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी॥४१५॥

रूपनिधान सुजान लखें बिन, आँखिन दीठि की पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।

[४१२] सुघराई = चतुरता। भावती = मनचाही। रही = मन में ही रह गई। लेति० = तेरी बलैया लेती हूँ।

[४१३] इकसार = एक ढंग से ही, समान रूप से। ही० = हृदय का।

[४१४] अगरो = अधिक। निबरै० = झगड़ा बंद करने पर भी रस-धारा समाप्त नहीं होती। रीझि० = स्वयं रीझ को भी रीझकर।

[४१५] अनेरी = विलक्षण। नेरी = निकटवालों को भी। चायनि = चाव से। बेरी = बेड़ी।

[४१६] आँखिन० = आँखों ने दृष्टि को ही पीठ दे दी है, दृष्टि ही त्याग दी है। ऊखिल० = अपरिचित; अप्रिय। सलाक = शलाका (अंजन की)।

टौर कहूँ न लहै ठहरानि कौं, मूँदैं महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौं घनआनँद सोच, दई विधि व्याधि असाधि नई है ॥४१६॥

रसमूरति स्याम सुजान लखैं जिय जो गति होति सु कासौं कहौं।
चित चुंबक लोह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटै नहिं जेतौ गहौं।
थिर काज या लाज-समाज के साजनि क्यौं घनआनँद देह दहौं।
उर आवति यौं छवि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥४१७॥

मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं।
जिहि बानक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासौं कहौं।
अब तौ सपने-निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक आँच दहौं।
उर आवति यौं छवि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥४१८

रस-सागर नागर स्याम लखैं अभिलाषनि धार-मझार बहौं।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हू बूड़त कासौं कहौं।
उर आवति यौं छवि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥४१९

सजनी रजनी-दिन देखैं बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं।
अँसुवा हिय पै घिय-धार परै उठि स्वास झरै सुठि आस गहौं।

बूड़त० = चित्त सोच में डूब रहा है। दई० = ब्रह्मा ने असाध्य और नई व्याधि उत्पन्न कर दी है।

[४१७] चुहटै = चिपकता है, लिपटता है। उहटै० = हटता नहीं। जेतौ = चाहे जितना पकड़कर खींचूँ (हटाऊँ)। छवि = उनकी छवि की छाया होकर।

[४१८] मु० = उनके हाथों को छूकर कमल को हाथ से नहीं छूती, कमल में वैसी कोमलता नहीं। बानक = छटा। चेटक = जादू, माया।

[४१९] गुन० = डोर के हाथ में होते हुए भी। 'गुण' का दूसरा अर्थ है 'विशेषता'।

[४२०] घिय० = घी की धारा की भाँति। अर्थात् आँसू गिरने से आग बढ़ती है, बुझती नहीं (मिलाइए आधुनिक नूतन काव्यधारा की इन पंक्तियों से—शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का। यह व्यर्थ श्वास चल-

घनआनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं ।
उर आवति यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥४२०॥

मन पारद कूप लौँ रूप चहेँ उमहै सु रहै नहिँ जेतौ गहौँ ।
गुन गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौँ ।
घनआनँद चेटक-धूम मैँ प्रान घुटैँ न छुटैँ गति कासौँ कहौँ ।
उर आवति यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥४२१॥

कवित्त

तरसि तरसि प्रान जानमनि दरस कौँ,
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत हैं ।
बिषम बिरह के बिसिख हियेँ घायल ह्वै,
गहबरि घूमि घूमि सोचनि ससत हैं ।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन सुख,
कटनि सौँ आसा-पट कटि लै कसत हैं ।

चलकर करती है काम अनिल का—'आँसू')। समीर = वायु, आँधी से युक्त; समाचार।

[४२१] पारद = पारा। कूप = कुप्पी। पारे को उड़ाने के लिए काच की शीशी रखते हैं उसे कूप, कूपी या कूपिका कहते हैं। आँच से पारा उड़कर ऊपर जा चिपकता है। यहाँ इसी क्रिया को लक्ष्य करके मन के प्रिय के पास चले जाने की बात कही गई है।

(१) विश्वामित्र कपाले वा काचकूप्यामथापि वा ।
सूते जलं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधिः ॥—रसेंद्रसारसंग्रह, १-४५

(२) जलसैन्धवसूतपूरितां क्षितिगर्त्ते खलु काचकूपिकाम् ।
विनिधाय दिनत्रयं ततो गतपाण्डयः सचलो रसो भवेत् ॥
—रसतरंगिणी, ५-८४

रूप = सौंदर्य; चाँदी। गाड़० = गड्ढा। चेटक = जादू।

[४२२] ससत है० = साँस नहीं ले पाता है। कटनि = काट; आसक्ति। कसत० = फँसता है।

निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
सुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है ॥४२२॥
मेरी मति बावरी है जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।
देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय।
विरह विषाद छाय आँसुन की झर लाय,
मारै मुरझाय मैन तावरेन ताय ताय।
ऐसैं घनआनँद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय कहौं हाय हाय ॥४२३॥
ललित तमालनि सों वलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसि लह्यौ सुखसार है।
मधुर विनोद स्वेद*-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है।
घन की घनक देखि कठिन बनी है आनि,
बनमाली दूर आली सुनै को पुकार है।
बिन घनआनँद सुजान अंग पोरे परि,
फूलत बसंत हमैं होत पतझार है ॥४२४॥

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु† निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।

[४२३] राखौं = बहलाकर रखता हूँ। निगोड़े = बुरे (गाली); जिन्हें पैर न हो। तावरेन = विरहाग्निरूपी ज्वर की मूर्छा में व्याकुल विरहियों को जला-जलाकर। न बसाय० = कोई घात नहीं लगती।

[४२४] वलित = लिपटी। मोद = आनंद ; सुगंध। पतझार = पतझड़ ; प्रतिष्ठा की हानि।

[४२५] तारे = आँख की पुतली। तारे = ताले।

* स्रम। † नीके।

एक अचंभो भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारे टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥४२५॥

मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सौं कहनो है।
आँखिन हूँ पहचानि तजी कछु ऐसो ही भागनि को लहनो है।
आस तिहारियै हौं घनआनँद कैसैं उदास भएँ रहनो है।
जान है होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ॥४२६॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैं उपहास-कहानी।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी।
यौं उघरे घनआनँद छाय सु हाय परी पहचानि पुरानी ॥४२७॥

अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा।
चपि चायनि चूर है एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छबि छाय छवा।
घनआनँद यौं रस-रीझनि भींजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि परयौ न टरयौ मन मेरो भवा ४२८

गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही, फिरि खेल कियौ अति ही उरझै।
गसि गौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौं न दुरी गुरझै।
अब याही परेखैं उदेग-भरयौ दुख-ज्वाल जरयौ झुरझै मुरझै ॥४२९॥

---

[४२६] जान = सुजान ; ज्ञानवान्।

[४२७] उघरे = प्रकट हुए ; हट गए।

[४२८] धपि = शीघ्रता से। छवा = एँड़ी के पीछे का भाग। झवा = झाँवा, जली हुई ईंट, जिससे रगड़कर पैर साफ किया जाता है। पायनि० = पैर के हाथ पड़ गया, उनके वश में हो गया।

[४२९] उरझै = उलझनवाला। गसि गौ = पकड़ लिया गया। छंदनि० = छल-कपट से। गुरझै = गाँठ। परेखैं = पछतावे से। झुरझै = तपता है।

कवित्त

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखौ सुनै।
मति अति छाकी गति थाकी रति-रस भीजि,
रीझि की उझलि घनआनँद रह्यौ उनै।
नैन बैन चित-चैन हैं न मेरे बस, मेरी
दसा अचिरज देखौ बूड़ति गहैं गुनै।
नेह लाय कैसैं अब रूखे ह्वजियत हाय,
चंद ही के चाय च्वै चकोर चिनगी चुनै ॥४३०॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने, जानैं
फूले रस भूले घनआनँद अनत ही।
कैसैं सुधि आवै बिसरे हू हौ हमारी उन्हैं,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मज तही।
कहा करौं जी तैं निकसति न निगोड़ी आस,
कौनैं समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतै तमी तारनि कौं तारनि गनत ही ॥४३१॥

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद, कैसैं सुहाति बसी तहाँ नासी।
जा हिय तैं हतियै नहिं तू हँसि बोलनि को कत कीजत हाँसी।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं, गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी।
हाहा सुजान अचंभो अजान ज्यौं भेदि कै गाँसहि बेधत गाँसी ॥४३२॥

[४३०] न सिखौ० = सीख (शिक्षा) भी नहीं सुनता। उझलि = उलेड़ना। रह्यौ० = छा रहा है। गहैं० = गुण (डोर ; विशेषता) को पकड़े हुए भी डूब रही हूँ।

[४३१] ऐसी० = ऐसी बुरी स्थिति आ जायगी। तमी = रात्रि। तारनि० = तारों को। तारनि = आँखों की पुतलियों से।

[४३२] नासी = विषाद, दुःख। हतियै० = तू दूर नहीं हुआ। भेदि कै =

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान, न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी।
मेरी ह्वै मोहिं कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह, नेकौं अघाति न आँखि निपेटी ॥४३३॥
चाह-बढ़्यौ चित चाक-चढ़्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै।
नैन थकै छवि-पान छकै घनआनँद लाज त्यौं रीझनि भीजै।
मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सोख सुनै न दसा-दुख छीजै।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै ॥४३४॥
रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागति नाहिँ सुभाय निमेखै।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहीँ पेखियै लाखनि लेखै।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहैं दुखदाई परेखै।
आँखिन आपनी आँखि न देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखै ॥४३५॥
पीर की भीर अधीर भईं अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।
रोकि रही डर-मैंड वही इन टेक यही जु गही सु दही हौं।

काटकर। गाँस = फंदा। गाँसी = हथियार की नोक। भेदि कै० = फंदा काटकर फिर भाले की नोक चुभोते हैं।

[४३३] आड़ = परदा; ओट। लाग = प्रीति। ईठि = इष्ट, प्रिय। सहेटी = सहेट में जानेवाली, संकेतस्थल से चाव रखनेवाली, प्रिय से मिलनेवाली। निपेटी = अत्यंत पेटू, भुक्खड़।

[४३४] इत० = इधर तो जरा भी नहीं आता। चाक = चक्र। धीजना = मन में लाना अर्थात् आना। इत० = इधर आने की बात ही नहीं सोचता। आवरी = व्याकुल। छीजै = घटती है (दुःख से)।

[४३५] आँखिन० = अपनी आँखों से अपनी ही आँखों को तो देख लिया (अपनी आँखों से अपनी ही आँखों का देखना असंभव है, फिर भी यह असंभव कार्य कर लिया), पर अपनी करनी स्वप्न में भी नहीं देखते।

[४३६] भीर = भीड़; अधिकता। डर-मैंड़ = भय की मेंड़ यह गई, लोकलज्जा का भय नहीं रहा। कहा० = किस घात से।

भीजि परें घिय-धार परें हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं।
आनँद के घन मीत सुजान हैं प्रीति मैं कीनी अनीति कहा गौं ॥४३६॥

फैलि रही धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति।
भौंर-भरी उफनाति खरी, सु उपाय की नाव तरेरनि तोरति।
क्यौं बचियै भजि हूँ घनआनँद बैठि रहैं घर पैठि ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति ॥४३७॥

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगौ जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-बियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जे सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ॥४३८॥

कवित्त

जल बूड़ी जरैं डीठि पाई हू न सूझि परे,
अमी पियें मरैं मोहिं अचिरज अति है।
चीर सौं न ढकैं, बानी बिन बिथा बकैं,
दौरि परैं न निगोड़ी थकैं, बड़ी भूतागति है।
लगे तारे खुलैं, आखैं तारी त्यौं न पगैं, पिय
नींद-भरी जगैं इन्हैं अनोखियै रति है।
गुन बँधैं कुल छूटैं आपौं दै उदेग लूटैं,
उत जुरैं इत टूटैं आनँद बिपति है ॥४३९॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै,
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को।

---

[४३७] धर = पृथ्वी। अंबर = आकाश। मरीचि = किरण। बीचि = लहर। तरेर = तोड़, धारा का वेग। भजि हूँ = भागकर भी। ढँढोरना = तिल तिल ढूँढ़ना, ध्यान से ढूँढ़ना।

[४३८] चुगौ = चारा। गुन = गुण; डोर। हतियै = मारते हैं। औधि० = अवधिरूपी सूर्य। आथन० = डूबने लगा।

[४३९] अमी = अमृत। तारे = ताले; पुतली। तारी = ताली; ध्यान। चीर० = वस्त्र से परदा नहीं होता। भूतागति = विलक्षण स्थिति।

भूपन दगत, गुन दूपन लगत गात,
पूपन मुकुर अंग सोखै संग चीर को।
जीवौ विप-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौं,
वन भौन कौन है धरैया अब धीर को।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस विन,
तीर तैं सरस वहै परस समीर को ॥४४०॥

बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौं।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखत हैं दै दै सनमान कौं।
झूठी बतियानि की पत्यानि तैं उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौं ॥४४१॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लिये अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछिन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।

[४४०] अंजन० = नेत्रों में अंजन लगाने से दृष्टि नष्ट हो जाती है। मंजन = मार्जन, स्नान। रंजन = मनोरंजन। भूपन० = गहने शरीर को दागते हैं। गुन० = गुण दोष से लगते हैं। पूपन० = दर्पण सूर्य हो रहा है, उसकी ओर देखा नहीं जाता। अंग० = वस्त्र का संग शरीर को सोख रहा है, पत्र से शरीर और भी दुर्बल होता जाता है। जीवो = जीने ने विप की ज्वाला को भी जीत लिया है। जीना विप से भी भयंकर हो गया है। बीतै = ऐसी बीत रही है। रंग० = आनंद और हर्ष की वृष्टि करनेवाले। सरस = बढ़कर।

[४४१] दिनान के...परे = अवधि की आशा के पाश में बहुत दिनों से पड़े हैं। खरे० = अत्यंत हड़बड़ी से। निदान कौं = अंत में। अधर = होंठों पर आ लगे हैं।

ओट भएँ फिर या जिय की गति जानत जीवनि है जु जनावत ।
मोत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥४४२॥
लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं ।
लाड़लो आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं ।
यौं रस-भीजे रहैं घनआनँद रीझै सुजान सरूप तिहारैं ।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं ॥४४३॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे ।
नेह-निधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे ।
सौतिन तैं पिय पाय इकौसैं भरे भुज सोच-सकोच निवारे ।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिय लै पल-पाट उघारे ॥४४४॥
है निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव-मिठासहि पागैं ।
आनँद जान कहौ तुव आनन लागि न आन सौं लोयन लागैं ।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तैं भावते भाग जौ तो मिलि जागैं ।
रंग रचैं सुठि संग सबैं घनआनँद अंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥४४५॥

कवित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी ।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकैं,
लोचन-चकोर सेवैं आरति-परब री ।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी ।
बूड़ि बूड़ि तरैं ओधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ॥४४६॥

---

[४४२] भीजे = रससिक्त ।

[४४४] इकौसैं = अकेले । पल० = पलकरूप किवाड़ ।

[४४५] निसवादिल = स्वादहीन, नीरस । है० = रस भी नीरस (फीका) हो जाता है । चैन० = सब प्रकार से आराम की नींद सोता है । सुठि = सुंदर ।

[४४६] अरबरी = उत्कंठा । आरति = लालसा । परब = पर्व, पूर्णिमा ;

देखें अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठि न परत जानि दीठि किधौं छल है।
दीपति-समीप की बिछोह माहिँ पोहियति,
आरसी-दरस लौं परस ध्यान जल है।
पटी* अटपटी-दसा सोच-चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै।
कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥४४७॥

तू ही गति मेरे, मति नौछावरि करी, तेरे
रूप हेरे चोप-कूप गिरी लेजु लाज की।
सुनिहौ सुजान आन तेरोयै, पखेरू-प्रान
परे प्रीति-सिंधु आस तो हित जहाज की।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की।
हाहा दीन जानि, याकी बीनतीयै लीजै मानि,
दीजै आनि औषद बियोग-रोगराज की ॥४४८॥

सब सौं चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिं,
इक टक जोहिबे की जक जागियै रहै।

अवसर, समय। हरबरी = हड़बड़ी। सरबरी = शर्वरी, रात्रि। ज्यौं० = ज्यौं ज्यौं रात बीतती जाती है।

[४४७] दीठि = प्रत्यक्ष। छल = माया, जादू, भ्रांति। आरसी = दर्पण। अनमिले० = अभिलाप का ही कल्याण होता है, अभिलाप ही बना रहता है।

[४४८] लेजु = रस्सी। हित० = हित (अपनायत) रूपी जहाज को पा जाने की आशा से। बीनतीयै = केवल विनय ही।

* निपट।

देखि देखि सुख-भोय हँसि परैँ रोय रोय,
चौँकैँ चकि चाहनि मैँ चिंता पागिये रहै।
तोरि लाज-साँकरैँ, बिरैहैँ सोभा-साँकरैँ सु,
क्योँ हूँ न निकास आस-पास खागिये रहै।
ऐसी कछू बानि चाह-बावरे दृगनि आली,
दरस-मुकुंद-लालसाई लागिये रहै ॥४४९॥

सपने कौ संपति लौँ भई है मलोले-मई,
मीत को मिलन-मोद जानौँ न कहाँ गयौ।
जकी है थकी है जड़ताई जागि पागि बीर,
धीर कैसेँ धरौँ मन सो धन झरौँ गयौ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौँ कहौँ,
गए न लगेई संग रंग ह्वै जहाँ गयौ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पह के फटत क्योँ रे हिये फटि नाँ गयौ ॥४५०॥

हित कै हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि बिडारौ तौ बिचारो न कछू कहै।
पाल्यौ प्यार को तिहारो नीके तुम ही निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियेँ कहौँ,
मान दै न कीजै मान दान दीजियै यहै।
देखेँ रूप रावरो भयौ है जीव बावरौ,
उमंगनि उतावरौ ह्वै अंगनि परयौ दहै ॥४५१॥

---

[४४९] जक = धुन। साँकरैँ = श्रृंखलाएँ, बंधन। साँकरैँ = संकट में। लागियै० = आशा का पाश गले में पड़ा ही रहता है।

[४५०] लौँ = पाने के लिए। मलोले० = कचोट से युक्त। झरौँ० = साफ हो गया, चोरी चला गया। पह = पौ, प्रातःकाल पूर्व दिशा में सूर्य के उदय के पूर्व प्रकाश का उद्भास होना।

[४५१] आन = शपथ। मान दै न० = संमान देकर (अपनाकर)

विरह-दवागिनि उठी है तन-वन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसेँ नीचियै परै।
अंतर-पुढ़ाई फटै, चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सोँ जरै।
दुख-धूम-धूँधरि मैँ घिरे छुटैँ प्रान-खग,
अब लौँ बचे हैँ जो सुजान तनको ढरै।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही दरै ॥४५२॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियो जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है।
उघरि नचाय आपु चाय मैँ रचाय हाय,
क्यौँ करि बचाय दीठि यौँ करि दुरति है।
तुम हूँ तैँ न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तेँ गरे* गाँठि सी घुरति है।
कैसेँ घनआनँद अदोपनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिखार की परेखनि मुरति है ॥४५३॥

सवैया

आपु न अंगन संग को रंग, भऱ्यौ रिस आनि कै अंग पजारत।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैन-दिना यह मैन उजारत।

मान न कीजिए (रूठिए मत) यही दान चाहती हूँ, यही माँगती हूँ।

[४५२] जतन० = जल के उपाय से, जल द्वारा। नीचियै० = मंद पड़े। अंतर० = हृदय की दृढ़ता दूर होती जा रही है। साँस० = श्वासरूपी बाँस। अरस = (अलस) आलस्य। दरै = नष्ट कर दे।

[४५३] जानी = समझी। ढीले० = उदासीन। गाँठि० = गाँठ फस जाती है। परेखा = पश्चात्ताप।

[४५४] आपु न० = उस (काम) के पास आपके अंगों की सी बनावट

* पै हियेँ।

और अनीत कहा लौं कहौं घनआनँद जो कछु आपदा पारत।
कैसें सुहाति सुजान, तुम्हैं हितू मानि दई कोऊ ऐसें बिसारत ॥४५४
हित-भूलनि आवति है सुधि क्यौं हूँ, सुधौं हू हमें सुधि कीजत है।
चित-भूल तो भूलत नाहिं सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है।
दृढ़ आस की पासनि कंठतें फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है।
अब देखियै कौ लौं घिरै घनआनँद आव कौ दाव सो दीजत है ॥४५५
मुख-चाहनि-चाह-उमाहन कौ घनआनँद लाग्यौ रहैई झरै।
मनभावन मीत सुजान-सँयोग बने बिन कैसें बियोग टरै।
कबहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीज भरै।
मिलिहू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि ब्यौरि परै ॥४५६
दुख-धूम की धूँधरि मैं घनआनँद जौ यह जीव घिर्‍यौ घुटिहै।
मनभावन मीत सुजान सौं नातो लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै।
बन-जीवन प्रान कौ ध्यान रहौ, इक सोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै।
घुरि आस की पास उसास-गरे जु परी सु मरेहू कहा छुटिहै ॥४५७॥

कहाँ, वह अनंग है। आपको मैं हृदय में बसाती हूँ तो वह इसके भीतर पहुँचकर क्रोध से भरकर जलाने लगता है। ऐन = घर। पारत = डालता है।

[४५५] हित = प्रेम को। भूल० = इस प्रकार भूल जाना चित्त नहीं भूलता। ज्यौ = जी। धीजत = स्थिर होता है। पास = फाँस, डोर। आव = आयु, जिंदगी। दाव = दावाग्नि, वन की भीषण आग। आव० = मैं ने तो अपने जीवन-वन में दावाग्नि प्रज्वलित कर रखी है, देखूँ आनंद के घन उसे बुझाने के लिए कब घिरते हैं।

[४५६] मुख० = मुँह देखना, दर्शन। झरै = झड़ी ही, आँसू का प्रवाह। दई-गति = दैवगति से, कदाचित्। मनोरथ० = मनोरथ की आर्द्रता से हृदय गीला हो जाता है। ब्यौरि० = सुलझे।

[४५७] बन-जीवन = श्रीकृष्ण। प्रान = प्रिय। इक सोच = यही एक सोच है। अब० = अब प्रिय का ध्यान भी लुट जानेवाला है। मरते समय यह सोच नहीं है कि मर रही हूँ, सोच यही है कि चेतना के लोप में उनका ध्यान कैसे कर सकूँगी। घुरि० = आशा के पाश में कसा हुआ उसास का

ए मन मेरे कहा करी तै तजि दीन दल्यौ जु प्रवीन है तो सौ।
ल्यायौ न काहुवै आँखि तरैं हौं कहूँ कवहूँ करि हेरो भरोसौ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली करी वावरे मो सौं भरयौ कित रोसौ।
सोचत हौं अपने जिय मैं सपने न लहौं घनआनँद दोसौ ॥४५८॥
रीझि विकाय निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति।
जोवन-घूमरे नैन लखैं मतवारी भई मति वारि कै मोमति।
वानी विलानी सुबोलनि मैं, अनचाहनी चाह जिवावति है हति।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तैं होति कहा अति॥४५९॥

कवित्त

कोऊ मुँह मोरौ, जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ, करि सोरौ मेरैं को सुनै।
नेह-रस-हीन-दीन अंतर मलीन, लीन
दोप ही मैं रहै, गहै कौन भाँति वे गुनै।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे, न्यारे कैसैं धौं करौं उनै।
टरै नहीं टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥४६०॥

गला क्या मरने पर भी छूटेगा। मरने पर भी आशा साँसों के साथ ही लगी रहेगी।

[४५८] दीन = मुझ दीन को। दोसो = दोप भी।

[४५९] रीझि० = रीझ के हाथों विककर। निकाई = सुंदरता। थकी० = देखने की गति (दृष्टि) उनकी गति (ढंग) देखते देखते थक गई। घूमरे = मत्त। वारि० = निछावर करके। मोमति = अपनत्व। बानी० = उनके बोलने में मेरी वाणी विलीन हो गई, उनकी वाणी सुनकर मैं मौन हूँ। अनचाहनी = न चाहने योग्य, अप्राप्य। हति = मारकर। अति = ज्यादती।

[४६०] चवाई = बदनामी करनेवाले। तोरौ० = संबंध तोड़ लें। करि० = मेरे शोर करने पर भी कौन सुनता है। वे गुनै = उन गुणों को। खीसनि० = लज्जा में पड़ा केवल अपना सिर पीटता है।

सवैया

रावरे रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन।
देखे कहा, जौ न दीसौ इते पर, हाहा सुजान तिहारियै सोहन॥४६१॥

रीझि तिहारी न बूझि परै, अहो बूझति हौं कहौ रीझत काहे।
बूझि कै रीझत हौ जु सुजान किधौं बिन बूझ की रीझ सराहैं।
रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत, बूझि न रीझे हू ओर निबाहैं।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौं, घनआनँद रीझ औ बूझहि चाहैं॥४६२॥

कवित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकें हियो,
गहकि गहकि गहबरनि हियें मचै।
चहकि चहकि डारे चपला चखनि चाहैं,
कैसें घनआनँद सुजान बिन ज्यौ बचै।
महकि महकि मारै पावस प्रसून-बास,
आसनि उसास दैया कौ लौं रहियै अचै॥४६३॥

---

[४६१] जोहन० = देखने मात्र से ही पकड़कर अपने साथ रख लेता है। दीठि० = दृष्टि को दुह लेता है। सूझ० = कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। बूझि = मति को अत्यंत मोहनेवाला वह रूप कुछ समझ ही में नहीं आता। देखे० = यदि इतने पर भी दिखाई नहीं पड़ते तो क्या देखूँ।

[४६२] बूझति० = पूछती हूँ। बूझ = समझ-बूझकर। बूझ = बुद्धि, समझ। रीझ = मेरी रीझ को समझते नहीं, स्वीकार नहीं करते। बूझि न० = बिना समझे रीझ जाने पर भी अंत तक निर्वाह करने की प्रतिज्ञा है। मूझत० = मन बेहोश हो जाता है। रीझ० = आप की यह रीझ और बूझ देखकर।

[४६३] लहकि० = झोंके के साथ। ताँवरे = ताप से। गहकि = बारंबार लालायित होने से। गहबरनि = व्याकुलता। हियें० = हृदय पर छा जाती है।

सवैया

लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान, पै वारिबे की अभिलाष मरौं।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं।
घनआनँद कीजै विचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं, हहराय हिराय कै हारि परौं॥४६४॥
घूँटैं घटा चहुँघा घिरि कै, गहि काढैं करेजो कलापिन कूकैं।
सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं।
एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि ध्यावस सूकैं।
ह्वै घनआनँद जीवन-मूल, धरौ चित मैं कित चातिक-चूकैं॥४६५॥
मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-लाहो।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान ये चाहैं परे तुम नेकौ न चाहौ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ।
कै विपरीति मिलौ घनआनँद या विधि आपनी रीति निबाहौ॥४६६॥

कवित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै।
उठी है उदेग-आगि, जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै।

चहकि॰ = जला देती है। चखनि॰ = नेत्रों से देखने पर। ज्यौ = जी। त्रासनि॰ = त्रास के कारण साँसों को पीकर कब तक प्राण बचाए जायँ।

[४६४] लखि॰ = उन्हें देखने से लाखों प्राण मिल जाते हैं। वारिबे॰ = (प्राण) निछावर करने की इच्छा से ही मरती हूँ। ररौं = रटती हूँ। चौचँद = शोर। हहराय = घबराकर। हिराय॰ = खोकर। हारि॰ = हार मान बैठती हूँ।

[४६५] घूँटैं॰ = घूँटे जा रही हैं। कलापिन॰ = मयूरों की ध्वनियाँ। चहकै = जला देती है। लै करि॰ = उल्का लेकर, लुक लेकर। ध्यावस = धैर्य, ढारस।

[४६६] लाहो = लाभ ही। चाहैं॰ = चाह में पड़े हैं। नेकौ॰ = जरा सा भी नहीं देखते।

निपट कठोर कियौ हियो, मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ कित दूरि कै।
तरफौं विसूरि कै विथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीरै घनआनँद यौं धूरि कै ॥४६७॥
मोहिं दीठि-कारन हौ, दुख-तम-टारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं जसै।
लोचननि तारे, अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तें पियत तिहारे रूप के रसै।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
भटभटी लागै जौ पै बीच बरुनी बसै।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं विचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै ॥४६८॥
अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैं।
दरस-दुखारे चैन-वंचित विचारे हारे,
आँखिन के मारे आय तहीं मड़रात हैं।

---

[४६७] ऊतर० = आपकी ओर से उत्तर और संदेश पाकर मैं आपको अपने अनुकूल (अपना स्नेही) समझ लेती थी। पर अब उसका भी खटका है। नेरे० = निकट जाकर अनुकूल होकर फिर दूर होकर क्यों मारते हो। मूरि कै = मूल से, जड़ से। उड़ायहौं = आपसे मिलने के लिए अब शरीर को धूल करके उड़ाऊँगी।

[४६८] दीठि० = दृष्टि देनेवाले। तुम ही० = आपके पिलाने पर ही नेत्र आपके रूप-रस को पीते हैं। भटभटी० = यदि आपको देखते समय बीच में बरौनी भी पड़ जाय तो उसका व्यवधान भी आँखों में भटभटी (देखते हुए भी न देख सकना) उत्पन्न कर देता है।

[४६९] सिराएँ = बीत जाने पर। ताप० = संताप से उत्तप्त होकर। कलमलाय = व्याकुल होकर। उमहि = उमंगित होकर। उफनात० = निकल जाने के लिए उतावले होते हैं। दरस० = दर्शन के लिए दुःखी। चैन० = सुख-

इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, उर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैं ;
जानि अनखौंहीं बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैं ॥४६९॥

साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैं सुजान,
तब ही सबनि तजी, अब हौं कहा तजौं ।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान
यौं ही इन काज, लाज बिन हौं खरी लजौं ।
ऐसी कै बिसारी, गौं तिहारी न विचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौं ।
कौन बिधि कीजै कैसें जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौं ॥४७०॥

घेर्‌यौ घट आय, अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे पानस के दीप हौ ।
लोचन-पतंग संग तजै न तऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौं धरे ध्यान-सीप हौ ।

रहित । हारे० = आँखों के कारण विवश, आँखों की दर्शन-लालसा के कारण व्यग्र । आय० = आँखों में आकर वहीं मड़राते रहते हैं । थहरि = काँपकर । अनखौंहीं = थोड़े में ही चिढ़ जाने की, रूठनेवाली । करि हूँ० = प्रस्थान करके भी प्राण फिर लौट पड़ते हैं ।

[४७०] साहस० = तुम्हें देखते रहने से मुझे साहस, चातुर्य और ज्ञान इन सबने छोड़ दिया । अब मुझे त्यागने के लिए कुछ रह ही नहीं गया । दहे = जले । निदान = अंत में । गौं = घात । न विचारी० = समझ में नहीं आती । ढरौ = कृपा करो, पिघलो, द्रवीभूत होओ । अजौं = अब भी । भाजत = भागते हो । भजौं = तुम्हें ही भजती हूँ ।

[४७१] अंतराय = विघ्न । पटनि० = परत पर परत करके लिपटे दरु । पानस = फानूस । पतंग = फतिंगा । प्रान० = प्राणरूपी हंस को जिलाने के

ऐसेँ कहौ कैसेँ घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरत-महीप हौ।
दीठि आगै डोलौ, जौ न बोलौ कहा बस लागै,
मोहिं तौ वियोग हू मैं दीसत समीप हौ ॥४७१॥

सवैया

हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि हैं जु सुजान सदा उर आनत हौ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौँ जु पै भूलि ही कौँ ठिक ठानत हौ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनी किन मानत हौ ॥४७२॥

कवित्त

अलग भयौ है लगि तुम्हैँ औंर ठौरन तैँ,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै।
क्यौँ हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियै।
खरक दुहेली हो असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन विधि टोहियै।

लिए ध्यानरूपी मोती को धारण करनेवाली सीप हो। सुरत० = स्मृति के शासक। लागै० = जान पड़ता है।

[४७२] हित० = प्रेम के भूलने पर क्यों मग्न हैं। भूलि हू० = आपको भूलना भी ठीक ठीक नहीं आता, प्रेम का भूलना कोई अच्छा भूलना नहीं। उहि० = तुम्हारे उस भूलने में ही मेरी सुध लगी है, उसी का स्मरण करती हूँ। न भूलत० = यदि आपने भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो भूलने को ही क्यों नहीं भूल जाते। तब० = ऐसा करने से यदि जानते-बूझते नहीं, तो भूले-भटके तो मेरी सुध आ जायगी।

[४७३] सुलग्यौ = सुलगता ही रहता है, भली भाँति लगता है। खरक = खटक। दुहेली = दुखद। दीठि० = दृष्टि पाकर भी यदि लगा काँटा खोजा न जा सका तो व्यर्थ है।

जब तेँ सुजान प्रान प्यारे पुतरीनि-तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै ॥४७३॥

जब तेँ निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तेँ गही है उर आन देखिबे की आन।
रस-भीजै बैननि लुभाय कै रचे हैँ तहाँ,
मधु-मकरंद-सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुनिन कथा,
रसनौ रसीली निसिबासर करत गान।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिंघासन पै बिराजै तिन ही को ध्यान ॥४७४॥

सवैया

ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैँ घर कै दुख को सुख दोहत है।
दृग आगे तेँ बैरी टरै न कहूँ जगि जोहन अंतर जोहत है।
घनआनँद मीत सुजान मिलेँ, बसि बीच तऊ मति मोहत है।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौँहू बिछोहत है ॥४७५॥

कवित्त

गहेँ एक टेक, टारि दीने हैँ बिबेक सब,
कौन प्यास पीर-पूरे नीरहि रितैात हैँ।
कैसेँ कही जाय हेली इनकी दुहेली दसा,
जैसेँ ये बियोगी निसिबासर बितैात हैँ।

---

[४७४] उर० = हृदय ने दूसरे को देखने की शपथ ले ली है, अर्थात् दूसरे को न देखने की प्रतिज्ञा कर ली है। मधु० = अमृत से भरी अपनी वाणी सुनाओ तो ये सुनेँ, नहीँ तो इन्होँने सुनना भी छोड़ दिया है। ज्यारी = जिलानेवाली।

[४७५] ढिग० = उनके पास बैठे रहने पर भी वह (वियोग) हृदय मेँ धँसा रहता है। जगि० = (वह वियोग) देखने के बीच मेँ प्रकट होकर देखने लगता है। बसि० = व्यवधान के रूप मेँ आकर मन को मूर्छित (बेहोश) कर देता है।

कहिबे को मेरे, पै अनेरे ये रे जाहिँ नाहिँ,
अति ही अमोही मोहिँ नेको न हितौत हैँ।
जब तेँ निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तेँ अनोखे नैन काहि न चितौत हैँ ॥४७६॥

बेध्यौ लै बिसासी मोहिँ गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि मेरो घनो मरम महा पिराय।
होत न लखाय क्यौँ हूँ घाय हाय कहा करौँ,
जरौँ विष-ज्वाल पै न काल कैसेँ हूँ निराय।
जीवन की मूरि जाहि मान्यौ तिन चूरि करी,
खरी विपरीति दई हेरि हौँ गई हिराय।
हैं री घनआनँद सुजान वैरी पैँड़े परयौ,
दै री अब ऊतर यौँ धीर ह्वै चल्यौ धिराय ॥४७७॥

सवैया

जिन ही बरुनीन सोँ बेध्यौ हियो तिनही दृग-हाथ सिवावत हौ।
विष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ।
अनबोले रहौ जू अनोखे अजौँ रस मैँ अब रोष दिवावत हौ।
घनआनँद चूकौन दाव कहूँ फिरि मार न-चाव जिवावत हौ ॥४७८॥

कवित्त

मोहिँ दुख-दोष सोखै, पोखै सुख तोहि, मोहिँ
चिंता-चिता चूरि तोहि राखै निधरक है।

---

[४७६] रितौत० = टपकाते हैँ। हेली = हे सखी। दुहेली = कष्टदायक। अनेरे = विलक्षण, अपरिचित। न हितौत० = भलाई नहीँ करते हैँ। काहि = किसी को भी।

[४७७] घूमि० = मत्त होकर। मरम = मर्मस्थल, कलेजा। घाय = घाव। न निराय = निकट नहीँ आता। हेरि० = देखने मेँ मैं खो गई। पैँड़े० = पीछे पड़ा। दै री० = अब जवाब देकर धैर्य भी धैर्यपूर्वक चला जा रहा है।

[४७८] जिन ही० = तुम्हारे जिन नेत्रोँ ने बरौनी के बाण से हृदय विद्ध किया उन्हीँ नेत्रोँ के हाथ से तुम मेरा हृदय सीते हो। विष-भोए = विषयुक्त।

रुवाय कै जगावै मोहिँ, विहँसावै स्वावै तोहि,
तेरे भूल भरै मोहिँ सालै ज्यौं करक है।
तोहि चैत-चाँदनी मै सरसै हरष-सुधा,
मोहिँ जारै मारै ह्वै विषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमड़ उघरत कहूँ,
नेह की विषमता सुजान अतरक है ॥४७९॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
वरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं अति सोच बाढ़्यौ,
बिना तुम्हैँ कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
बानिक-निकाई नीके हेरिबै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोऽब दीजियै बताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सुख-दुख कैसैँ,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥४८०॥

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तैँ टरी।
बोलनि चितौनि चारु डोलनि कलोलनि सौँ,
चाहि चाहि रंक लौँ सु संपति हियेँ धरी।
ऐसैँ ही मैँ असह विरह कित हू तैँ आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी।

मारन० = आप अपना मारने का उत्साह दिखाकर मुझे जिलाते हैं।

[४७९] निधरक = निश्चिंत। स्वावै = सुख की नींद सुलाता है। सालै० = गाँस की भाँति पीड़ा करता है। अरक = अर्क, सूर्य। अतरक = अतर्क्य।

[४८०] छाय० = भली भाँति, लबालब। ठौर० = स्थान की कमी के कारण। बानिक = छटा, मुद्रा। सुरस = जल; आनंद।

[४८१] लागि = लिए। प्रान० = प्राण का दान करनेवाले। सुरि० = बुद्धिमान्।

अब घनआनद सुजान प्रान-दान भेटौं,
विधि बुधि-आगर पै जाचत वहै घरी ॥४८१॥

प्रानन के प्रान, एहो सुंदर सुजान, सुनौ
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै।
रूप दरसाय, चोप-चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैं बिसास हरि ता हियै।
भीजे घनआनँद बिराजौ निवरक तुम,
ताहि चिंता-चिता-बीच ऐसैं अब दाहियै।
सब विधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहा लौं रसीले गुन-गननि सराहियै ॥४८२॥

सवैया

देखि सुजान छए घनआनँद, ढीठ भए सु न नीठ सकोचत।
चाह के दाह भरे कित तैं नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौं लोचत।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत॥४८३॥

कवित्त

मोहिं मेरे जिय की जनाइबो अजनता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रवीन।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारो,
आप त्यौं निहारौ पन पारौजू सँभारौ दीन।
जतन कहा बताऊँ तुम ही तैं तुम्हैं पाऊँ,
रावरोई जस गाऊँ बावरे लौं हित-लीन।

---

[४८२] बिसास = विश्वासघात। ता हियै = उसके हृदय को।

[४८३] नीठ = किसी प्रकार भी। नीरद० = बादल की (सी) वृष्टि करते हैं। पानिप० = सौंदर्य के पानी (आब) के लेश मात्र के लिए चिंतित रहते हैं। असोची० = किसी बात का विचार न करनेवाले।

[४८४] अजानता = अज्ञान, मूर्खता। पारौ = पालो। रसरासि = आनंद की राशि; समुद्र।

रहौँ लगि आस घनआनँद मिलन-प्यास,
एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥४८४॥

सब विधि लायक असेष सुखदायक हो,
तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो।
निघटत नाहिँ मो बटाई, उघटत क्यौं हूँ,
रावरी बड़ाई आहि प्रीति-पन-पारिबो।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक ही सौँ,
चातिक बिचारे को है जीवनि बिचारिबो।
यातेँ निसदिन सब रस दरसाएँ और,
टक जक लाएँ लोभी करत निहारिबो ॥४८५॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौँ मेरी दौर,
नाहीँ और ठौर, काहि साँकरे सँभारियै।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे
आसा लागि प्रान आन बोलत निहारियै।
गुन-माला फेरौँ निगुनी हौं नित हित हेरौँ,
बिरह-अधार टेरौँ पीरहि निवारियै।
पन-तन ताकौ जो हो काचो सो तौ आहि पाकौ,
आनँद के घन प्रीति-साकौ न बिगारियै ॥४८६॥

बैनन मैँ बोलै, नैन-ऐन चैन सौँ कलोलै,
गैन-संग डोलै पै न परस-परोस है।
हेरति हिरावँ एक ठौर हू न लहौँ ठावँ,
भुरि मुरि भावदार ऐसी पीर को नहैं।

---

[४८५] निघटत = घटती नहीं। उघटत = प्रकट करने से। सब० = सब प्रकार की वृत्तियाँ दिखाता हुआ। टक = टकटकी। जक = धुन।

[४८६] साँकरे० = संकट में किसका ध्यान करूँ। आन = दुहाई। माला = समूह ; जपने की माला। हित = प्रेम। पन० = अपनी प्रतिज्ञा की ओर देखिए। जो हो० = जो पहले प्रेम में कच्चा था वह (मैं) प्रेम में पक्का हो गया हूँ। प्रीति० = प्रेम की ख्याति मत बिगाड़िए।

पाय न परति बात, प्रान पोढ़ि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेलो रस-रोस है।
अपने किये की छाँह बैठियै बखानै जग,
वे तौ घनआनँद मो देखन को दोस है ॥४८७॥

अंग अंग छाई है उदेग उरझानि महा,
साँस लैबो आली गिरि हू तेँ गरुवौ लगै।
जोवन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौँ है गुमान हरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रानप्यारे के निहारे विन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार बहवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद विचारै कौन,
विरह-विपाद-जुर जीवो करुवौ लगै ॥४८८॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाला जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि, साथ
तेई कै अनाथ यौँ अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसेँ विधि-अंक टारियत है।

---

[४८७] ऐन = घर। चैन० = चैन से व्याकुल हैँ। गैन = गमन। पै न० = स्पर्श का लेश भी नहीँ पाती। हेरति० = देखने में खो जाती हूँ। आबदार = अबेदार, बनी-ठनी, भरी-पूरी, परिपूर्ण। पाई० = घात समझ में नहीँ आती। रस० = प्रीति का रोष। आपने० = अपनी की हुई छाया में बैठने से संसार प्रशंसा करता है। पर यहाँ तो मुझे देखने में भी आपको दोष लगता है।

[४८८] गरुवौ = भारी। सूल० = काँटे की भाँति शरीर में घुसते हैँ। तूल = रुई। हरुवौ = हलका। करुवौ = कड़ुवा; बुरा।

[४८९] सिराए = शीतल हुए। रस = आनंद; जल। विधि० = ब्रह्मा के अक्षर।

थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै विराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥४८९॥

सवैया

फल होत दियेँ सम कै अधिकै बरनैँ कवि-कोविद यौँ सब ही।
बिपरीति लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह बही।
उत कौँ घनआनँद गौँ है यही, इत की जु सुजान बनी जु सही।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपे हम चित लही ॥४९०॥

नैन कहै सुनि रे मन! कान दै क्यौँ इतने गुन मेटि दयौ है।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तेँ भयौ है।
लोभी तिन्हैँ तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौँ यह न्याव नयौ है ॥४९१॥

कवित्त

सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल है,
दीन के हदै कौँ दैया दुखनि कहा दरौ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक बड़ो,
बापुरे चकोर कौँ जौ त्यागिबोई आदरौ।
मेरे दोष देखौ तौ परेखौ है अलेखौ ए जू,
मीन ढालै निधि कैसेँ बूझियत गादरौ।
चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौँ सकत है बिदरि गएँ बादरौ ॥४९२॥

---

[४९०] सम कै = दान के बराबर या अधिक। परतीति० = विश्वास करनेवाली मति मोह में बह गई, विश्वास करने से मति मोह में पड़ गई। गौँ = घात की बात।

[४९१] हम ही० = मेरे ही कारण तो तू सुंदर प्यारे सुजान का मंदिर बन सका है। लोभी = सुजान को तू ने अपने में ही छिपा रखा है, मुझे कुछ भी नहीँ दिखाता। तू कैसा मदमत्त है।

[४९२] दरौ = दलते हो। आदरौ = स्वीकार करो, मानो। परेखौ = खेद। मीन० = मीन के लिए। निधि = समुद्र। गादरौ = शिथिल। मीन० =

सवैया

कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति तातो कथा रसनाहिं दहै।
अरु जो हिय ही मधि घूँटि,रहौं तो दुखी जिय क्यौं करि ताहि सहै।
घनआनँद जान न कान करैं इत के हित की कित कोऊ कहै।
उत ऊतर-पायँ लगी मिँहदी सु कहाँ लगि धीरज हाथ रहै ॥४९३॥

बिन बूझ असूझ बिरंचि रचे सपने हूँ न लागनि गैल गईं।
जिन बावरी रोग-वियोग-भरी रचि ये हम कौं तम-जोग दईं।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलाषनि लाखनि भाँति रईं।
मुख-माधुरी-पान कौं आतुर पै अँखियाँ दुखियाँ कित भोरी भईं ४९४

कवित्त

गाँसनि गसीले गरुवाई औ गरूर भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तें छोरी हौं।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि बैठि उर भोरी हौं।

छोटी सी मछली के लिए अपार जलराशिवाले समुद्र का शिथिल पड़ना कैसा। चातक = बेचारा चातक तो केवल पुकार करना जानता है, छिन्न-भिन्न हो जानेवाले बादल को वह नेत्रों में कैसे ढके रह सकता है। जो बादल खुल गए हों उनको वह अपनी पुकार से एकत्र करने में कैसे समर्थ हो?

[४९३] तातो = तप्त। हिय० = यदि हृदय में ही उसे पी जाया जाय तो। कित = कितना ही। उत० = वहाँ तो उत्तर के पैरों में मेंहदी लगी है, उत्तर आता ही नहीं। कहाँ० = कहाँ तक धैर्य हाथ में रहे, कहाँ तक धैर्य धारण किया जाय।

[४९४] बिन० = बिना बिचारे। असूझ = सूझ से हीन। बिरंचि = ब्रह्मा। सपने हूँ० = स्वप्न में भी ये लगने के मार्ग पर नहीं गईं, ये लगती ही नहीं, खुली ही रहती हैं। तम-जोग = अंधकार के योग्य, अंधकारमय। रईं = रँगी, युक्त हुईं।

[४९५] गाँस० = गाँस (मनमुटाव) से भली भाँति युक्त। गरुवाई = गुरुता। ढरारे = दयालु; द्रवणशील। उररि = बरबस हृदय में धँसकर।

नेह-निधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ विरह-गहर लै झकोरी हौं।
तरिबौ सुन्यौ हो गुन गहेँ घनआनँद पैं,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं ॥४९५॥

सवैया

बात अनोखी कहा कहियै सुनि बैठे सरै न करें कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहीं बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगेँ हू न छीजत दीबो।
है घनआनँद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो ॥४९६॥

कवित्त

छाए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली साँसनि रुँधे गरै।
मोरन की कूकैँ सुनि उठति हिये मैं हूकैँ,
चूकैँ नहीं चातिक-करेजो कढ़िबो अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरीयौ समीर परसेँ जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तैँ घनआनँद यौं,
बादर अडंबरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥४९७॥

तीर = तट; निकट। गहर = गहराई। झकोरी० = झटका देकर गिरा दी गई हूँ। गुन = डोर। गुननि = डोर; विशेषता।

[४९६] न बैठे० = न तो बैठे काम बनता है और न काम करना ही किसी काम आता है। न काम करने में आराम मिलता है, न न करने में ही। बौरई = पागलपन। छीजत दीबो = दुःख हाथ लगने पर भी उनका दुःख देना कम नहीं हो रहा है, दुःख पर दुःख मिलता है। मरिबो० = बिना मृत्यु के मरना और बिना प्राण के जीना पड़ता है।

[४९७] संग० = संदेश को भी साथ लिए हुए, संदेशों का कोई उत्तर नहीं मिलता। गरै = गला ही। हूकैं = पीड़ाएँ। घूँटि = दम घोंटकर। अडंबर = बादलों में सूर्य-किरणों की ललाई का छाना।

तिन हू तें हरई भई है गुर-जन-आगें,
पुर-जन-पुंज में कहानी सी धौं कौन काज।
तो हित बोहित जानि मोहित विहंग-मन,
आसा-गुन बँध्यौ हेरि नेह को सरितराज।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी बात,
हाहा घनआनँद अमैड़न के सिरताज।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि
एहो निरमोही नेकौ लाज हू तजैं की लाज ॥४९८॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परे बाकी नाहीं न हाँ है।
कै अपने सपने हू न सोचत मो चित ऊखिल ही लौं तहाँ है।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवनिमूरति जान जहाँ है।
हाय दई न बसाय बिसासी सों ठौर रहेन कौं ठौर कहाँ है ॥४९९॥
जान सजीवन-प्रान लखें बिन आतुर आँखिन आवत आधे।
लोग चबाई सबै निरदै अति बान से बैन अयान सों साधे।
को समझै मन की घनआनँद औरई बेदन बौरई नाधे।
पीर-भरचौ जिय धीर धरै नहीं कैसें रहै जल जाल के बाँधे ॥५००॥

---

[४९८] तिन = तृण। हरई = हलकापन। कहानी० = कथा की भाँति केवल कहने-सुनने योग्य। हित = प्रेम। बोहित = जहाज। हित = लिए। विहंग० = मनरूपी पक्षी। सरित० = समुद्र। अमैड़ = मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला। सुहाई = अच्छी बात।

[४९९] पानि = हाथ में। कै० = अपने वश में करके फिर कुछ ध्यान ही नहीं देते। ऊखिल = अपरिचित, अजनबी। न० = वश नहीं चलता। ठौर० = आपके पास रहनेवालों के-लिए दूसरा स्थान कहाँ है।

[५००] आवे० = वे प्राण आधे होकर व्याकुलतापूर्वक आँखों में आ बसते हैं। अयान० = अज्ञान के साथ। बौरई० = पागलपन ने विलक्षण वेदना उत्पन्न कर दी है।

कवित्त

अघट घटाई भरयौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौँ रावरी बड़ाई लौँ निपटिहै।
नीके करि देखौ न परेखौ उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरी पैज हाहा कैसेँ हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन है कै,
अति ही अचंभो* जौ कचाई-तन डटिहै।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ†दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहा धौँ कहा घटिहै॥५०१॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैँ मेरे प्रान संग,
जीवो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिवो देखिवो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैँ होत जो विचार कीजियत है।
रावरे सनेह यौँ अदेह कीनी, लीनी जीति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारियै जू,
ताहि कहौ कैसेँ धौँ विसारि दीजियत है॥५०२॥

---

[५०१] अघट = न घटनेवाली। घटाई = ओछापन, तुच्छता। निपट = अत्यंत। निघरघट = ढीठ, शोख। मो० = मेरा शरीर। बड़ाई = आपकी बड़ाई तक कैसे पहुँच सकता है। परेखो = खेद। पैज = प्रतिज्ञा। कचाई० = कच्चेपन की ओर डटेगा, कचाई दिखाएगा। रस = जल; आनंद। कहा = क्या।

[५०२] जीवो = जीना भ्रम सा ही समझ लिया है। आप ही मेरे जीवन हैँ, मेरा जीना तो भ्रम मात्र है। धरम = शरीर के धर्म। अदेह = शरीर के अध्यास से शून्य, शरीर की अनुभूति से रहित। आनँद = जो आनंद का बादल है वह अचंभे से भिगो रहा है। हारियै = हरण की हो, ले ली हो।

* दीन दासन पै आनि दया हियहु लगौ। †जित तित लागी एक तेरी तान।

सवैया

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब ही विधि है सठ रे भठ-भुंजन।
प्रेम-पिकीन की प्यास भर्‌यौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरो सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥५०३॥

हरि-राधा जहाँ जहाँ राजत हैं वह ठौर जथारुचि रंजन है।
सु सँजोग वियोग महा रस-रूप तिहीं तित ही मन मंजन है।
न मिलै बिछुरै कबहूँ न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम-भंजन जै।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै॥५०४

गोकुल की वर बानिक नैन सदा लखिबोई करैं अनिमेखनि।
मंडित मोद अखंडित रूप भरी मन रोमहि रोम सुदेखनि।
मोहन ही सब के धन जीवन प्रीति रची रस-रीति बिसेखनि।
पान करौ चित चातिक है घनआनँद चाह उमाह असेखनि ॥५०५॥

———

[५०३] सुखमैन = सुख की कामना। भठ = भट्ठी में भूँजना।
[५०४] मंजन = मार्जन, स्नान।
[५०५] असेखनि = परिपूर्ण।

(उपसंहार—कवि-प्रशस्ति)

कवित्त

नेह - मकरंद - भरे कैधौँ अरविंद - वृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के है।
कैधौँ सुवरन के कलस ये सुधा सौँ भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैँ।
कैधौँ अदभुत जलधर 'ब्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैँ।
चोर चित्त-वित्त के कि पैठि बरजोर हियैँ,
कैधौँ विलसत ये कवित्त घन जी के हैँ ॥३॥

प्रगटे सुघन सुवरन स्वाति-जल जेते,
वसे छंद-बंद रीति सुकति अधार है।
सुंदर विमल बहु अरथ-निधान देखौ,
अचिरज नेह-भरे झलकै अपार है।
कहै 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
बरनौँ कहा लौँ एतौ परम सुढार है।
ए जू सुनौ मित्त चित्त गुन मैँ पिरोय इन्हैँ,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार है ॥४॥

---

[३] ही = हृदय। सुवरन = सुवर्ण, सोना; सुंदर अक्षर। रस = जल; आनंद। वित्त० = हृदयरूपी घन के। घन = घनआनंद।

[४] घन = बादल; घनआनंद। बरन = वर्ण, रंग; अक्षर। सुकति = शुक्ति, सीपी; सूक्ति, सुंदर उक्ति। अरथ = धन, द्रव्य; शब्द का तात्पर्य। गुन = डोर; विशेषता। पिरोय = पिरोकर, गुहकर।

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढ़ावै।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत पंड बढ़ै हिय सोच उपावै।
चित्र-विचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै ॥५॥

कोटि बिषै करि ओट महा नहिँ नेह की चोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह-प्रवाह अथाह परे नहिँ आप ही आप बिचच्छन मानै।
पूँछ बिषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥६॥

बिनती कर जोरि कै बात कहौँ जो सुनौ मन-कान दै हेत सौँ जू।
कविता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीँ उहि खेत सौँ जू।
जु पढ़े बिन कथौँ हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैँ करि चेत सौँ जू।
रस-स्वादहि पाय बिवाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौँ जू* ॥७॥

मैँ अति कष्ट सौँ लीने कवित्त ये लाज बड़ाई सुभाय कौँ खोय कै।
सो दुख मेरो न जानै कोऊ लै बखानै लिखाइयै मोहू कौँ गोय कै।
कैसी करौँ अब जाहुँ किते मैँ बिताए हैँ रैनिदिना सब भोय कै।
प्रेम की चोट लगी जिन आँखिन सोई लहै कहा पंडित होय कै॥८॥

---

[५] खर = गदहा। दाख = द्राक्षा, अंगूर, मुनक्का। पंड = नपुंसक। उपावै = उत्पन्न करता है। भेद = रहस्य। दृग० = दीनदृष्टि व्यक्ति।

[६] पूँछ० = साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

[८] गोय० = छिपाकर, भूलकर। भोय = लीन होकर।

* यह चरण हस्तलिखित पुस्तक में नहीं है, संपादक द्वारा बढ़ाया गया है।